अरुणाचल का
खाम्ति समाज और साहित्य

अरूणाचल का

खामुति समाज साहित्य

डॉ. भिक्षु कौण्डिन्य

□ मूल्य : 175.00 □ संस्करण : 2001 □ © लेखक

ISBN 81-7037-034-5

पूर्वोदय प्रकाशन

7/8, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

प्रस्तावना

हिन्दी भाषा में विभिन्न प्रकार का ज्ञानवर्द्धक साहित्य उपलब्ध कराने के लिए भारत सरकार द्वारा पुस्तक प्रकाशन संबंधी अनेक योजनाएं कार्यान्वित की जा रही है।

शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय के तत्वाधान में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय में प्रकाशकों के सहयोग से हिन्दी में पुस्तकों के लेखन, अनुवाद और प्रकाशन की योजना सन् 1961 से चल रही है। अद्यतन ज्ञान-विज्ञान का जन-सामान्य में प्रचार-प्रसार, राष्ट्रीय एकता, धर्मनिरपेक्षता तथा मानवता का उद्बोधन और हिन्दीतर भाषाओं के साहित्य को रोचक तथा लोकप्रिय हिन्दी भाषा में सुलभ कराना इस योजना का मुख्य उद्देश्य है। इन पुस्तकों में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का प्रयोग किया जाता है और योजना में स्वीकृत पुस्तकों को अधिक से अधिक पाठकों को सुलभ कराने के विचार से विक्रय-मूल्य कम रखा जाता है। प्रकाशित पुस्तक में अभिव्यक्ति-विचार लेखक के ही होते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में अरुणाचल प्रदेश के खामति समाज एवं साहित्य-संबंधी जानकारी बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत की गई है। आशा है, हिन्दी जगत में इस पुस्तक का समुचित स्वागत होगा।

शिक्षा तथा संस्कृति मंत्रालय,
भारत सरकार, पश्चिमी खंड नं० 7,
रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली—110022

डा० रणवीर रांग्रा
निदेशक
केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय

प्राक्कथन

प्रस्तुत ग्रन्थ से सम्बन्धित सामग्री संकलन के लिए मैं कई साल तक खाम्ति जन-जाति के गांवों में रहा। अपनी व्यक्तिगत कठिनाइयों के सम्बन्ध में क्या कहूं, जन-जाति, समाज और उनके साहित्य का अध्ययन, अनुवाद एवं सम्पादन का कार्य अतीव दुरुह रहा है। इस श्रमसाध्य कार्य के लिए मैंने सीमान्त प्रदेश अरुणाचल के अगम्य क्षेत्रों का भ्रमण कर वहां के लोगों से सम्पर्क किया, उनके नाज-नखरे उठाये, उनसे अपनत्व जोड़ा। सुदूर स्थानों की लम्बी यात्राओं की थकान, भूख-प्यास सब कुछ सहा। क्षेत्रीय कार्य करते समय सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के कुछ कटु, कुछ तिक्त, कुछ रससिक्त व्यवहार को आत्मसात किया। निरन्तर प्रयत्नशील रहने के पश्चात खाम्ति समाज एवं साहित्य सम्बन्धी अपनी विवेचनात्मक दृष्टि को पुस्तक के रूप में प्रस्तुत करने में सफल हो सका।

खाम्ति और उनके साहित्य पर लिखे गये मेरे लेख तथा निबन्धों का भी आवश्यकतानुसार इस ग्रंथ में निर्देश के लिए व्यवहार किया गया है। लिखने में खाम्ति में संयुक्त स्वर का प्रयोग बहुत मात्रा में होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में मूल खाम्ति शब्दों को देवनागरी में उसी प्रकार लिखा गया है, जिस प्रकार खाम्ति में लिखा जाता है; जैसे: 'मिुङ्' (देश), 'हिुन्' (घर), 'कुिव्' (नमक), 'कुिव्' (होना, रहना) इत्यादि।

अरुणाचल प्रदेश की खाम्ति सम्बन्धी विषय पर कार्य करने में गृह-मन्त्रालय के तत्कालीन संयुक्त सचिव श्री मनोहरलाल कम्पानी तथा डॉ॰ ब्रह्मदेव शर्मा के अमूल्य सुझाव एवं परामर्श प्राप्त हुए। अरुणाचल के प्रदेश के मुख्य सचिव श्री ईश्वरी प्रसाद गुप्त ने अथक परिश्रम से मेरे कार्य में हर प्रकार की सहायता की। जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय में हिमालय और मध्यएशिया विभाग के प्रोफेसर राम राहुल ने इस ग्रन्थ को आकार देने में मेरा निर्देशन किया। इन सभी महानुभावों के अमूल्य सहयोग के लिए मैं अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूं।

मेरे अनेक मित्रों एवं सहयोगियों ने अध्ययन में सतत प्रोत्साहन प्रदान किया तथा समय-समय पर सहायता की। इसके अतिरिक्त खाम्ति गांव के भिक्षुओं, उपासक और उपासिकाओं ने मेरी जिज्ञासाओं का समाधान कर मुझे सहयोग दिया। इन सभी के प्रति आभार प्रकट करना मेरा कर्तव्य है। **भिक्षु कौण्डिन्य**

अनुक्रम

विषय-प्रवेश

समग्र दक्षिण पूर्व एशिया ही खामतियों के वंशज 'ताई' या 'थाई' जातियों का निवास स्थान है। ये लोग पश्चिम में असम को सीमा कर चीन के कुवांगसी प्रदेश और दक्षिण में प्रशान्त महासागर के द्वीप समूह में युन-नान् प्रदेश तक फैले हैं। 'ताई' लोगों का आदि निवास स्थान चीन के दक्षिण-पश्चिम में था। साम्राज्यवादी चीनियों के आक्रमण और अत्याचार से इन लोगों ने अपना राज्य छोड़कर दक्षिण-पश्चिम की ओर प्रव्रजन किया।

'ताई' लोगों को 'श्यान', 'श्वान' अथवा 'शाम' या श्याम' कहा जाता है। पहले ये लोग मंगोलिया के पूरब में 'नान्-श्यान' नामक पहाड़ी क्षेत्र में निवास करते थे। 'त्याईन-श्यान' के निवासियों को 'नान्-श्यान' अथवा 'नान्-किंग' कहा जाता था। ये लोग मंगोलिया से कब 'नान्-किंग' आए, इसे कहा नहीं जा सकता है। किन्तु 'त्याईन-श्यान'/'ताई-श्यान' जाति के सम्बन्ध में पांचवीं शताब्दी से ही लिखित प्रमाण मिलते हैं। 'ताई' लोगों का 'खेह' (चीन) में राजत्व करने का उल्लेख मिलता है। 'मिुङ्वान् में ताई-श्यान लोग पांचवीं शताब्दी के प्रथम चरण में आए थे। ताई लोग रण-कौशल में साहसी थे, चीनियों को इन लोगों ने कई बार परास्त किया था। 'मिुङ् वान' के ताइयों को चीन जीत न सका। उल्लिखित श्यान लोग अपने को 'दाई' या 'ताई' कहकर परिचय देते हैं। यह 'ताई' चीनियों का दिया हुआ नाम जैसा लगता है, कारण वे इन्हें 'श्यान' नहीं कहते हैं। 'श्यान' नाम बर्मियों का दिया हुआ है, क्योंकि ताइयों को 'ताई' न कहकर 'श्यान', अथवा 'शाम' कहते हैं और भारतीय लोग इन्हें 'श्याम' कहते हैं।

कई शताब्दियों तक ताई लोग अव्यवस्थित रूप से रहते रहे। वे आठवीं शताब्दी में दक्षिण युन-नान् के नाम्-माओ अथवा सुवेली उपत्यका में रहते रहे। फिर उन्होंने मिुङ्माओ-लुङ् नाम से एक राज्य स्थापित किया। इस राज्य की राजधानी से-लान थी। सन् 1200 ई० में ताइयों ने मिुङ्माओ-लुङ्-छोड़ा और उसी समय यह जाति प्रशान्त महासागर के द्वीपों से बर्मा के पहाड़ी अंचलों और भारत तक फैली। इनमें से जो शक्तिशाली शाखा थी, वह बर्मा के उत्तरांचल में निवास

करती थी। वह अपने को 'ताई-लुङ्'अपनी बृहत-ताई कहकर परिचय देती है और अन्य ताई जाति को 'ताई-अन' अर्थात् छोटी ताई कहा जाता है।

ताई जातियों के बीच प्रागैतिहासिक आगमन की परम्परागत कोई कहानी नहीं है। बर्मी लोग जब दक्षिण की ओर फैलने लगते हैं, तब ताइयों का चीन के दक्षिण-पश्चिम अंचल में निवास करना निश्चित माना जाता है। इनके प्रथम दल ने प्रायः दो हजार साल पूर्व बर्मा में प्रवेश किया था। तब इन लोगों की जनसंख्या बहुत कम थी और इन लोगों ने दक्षिण एवं पूर्व की ओर प्रव्रजन शुरू किया। ई० पू० 130 में चीन के सम्राट सि-याओ-उती ने युन-नान् के पूर्व और उत्तर के 'येलुङ्' तथा 'येयु' जीत लिया। किन्तु ई० पू० 47 में 'ङाईओ' अथवा 'आओ-लाओ' ने हान् एवं इयाङ्सु नदी को लकड़ी के बेड़े से पार किया। उस समय श्यान-ताई लोग 'आई-लाओ' नाम से परिचित थे। चीन में 'चाङ्' वंश के पतन के बाद 'सालु-इन्' और 'मेकङ्' उपत्यका में तृतीय शताब्दी ईस्वी में बहुत से छोटे-छोटे ताई राज्य विकसित होने लगे थे। उस समय तक चीन साम्राज्य की नींव नहीं पड़ी थी और बाद में ताइयों के साथ चीनियों का प्रबल संघर्ष चलता रहा। ई० सन् 640 में सम्राट् ऊ-ती ने युन-नान के 'मिङ् हुवा-तिङ्' के दस मील दक्षिण-पश्चिम में एक राजधानी बसायी और 'सि-नुलो' नाम के राजकुमार ने एक अलग श्यान राज्य की स्थापना कर, अन्य पांच छोटे राज्यों को मिला लिया। सि-नुलो ने राजवंश की नींव मात्र डाली थी। असल में उसके पौत्र का-लु-फेङ् ने इसे शक्तिशाली बनाया। चीनी इतिहास में इसे भयावह बरबर राजा कहा है। और वे इसका सिक्का मानते थे। इतना तक कि चीनी सम्राट् ने अपनी कन्या का उसके पुत्र से विवाह कर मित्र बनाया था। किन्तु चीनियों के अध्यवसाय के परिणामस्वरूप दसवीं शताब्दी के आरम्भ में उक्त राजवंश के 800 राज-परिवार की हत्या कर वंश को ही समाप्त किया। इसी काल में प्रमुख ताई राज्यों को चीनियों ने अपने अधिकार में कर लिया। चीनियों से लड़ने की कहानी खामति साहित्य में 'चाति' (यह पालि जातक शब्द का रूप है) मिलता है।

खण्ड-विखण्ड कर शक्ति-ह्रास करना ताई जाति का अपना स्वभाव है। जिस काल में ताइयों का असीम प्रताप विस्तारित हुआ था, उस समय भी बहुत से ताई लोग दक्षिण के नदी, उपत्यकाओं में अलग राज्य स्थापित करने के लिए झुण्ड-के-झुण्ड गिरोह के रूप में उतर गये थे। यह बात इतिहास और परम्परा से जानी जाती है। तेरहवीं शताब्दी के शुरू में कुब्लाई खां के द्वारा नान-चाओ राज्य जीतने से पहले ही ताई लोग मूल पितृभूमि से बहुत दूर तक फैल चुके थे।

कुब्लाई खां के ताली जीत लेने के बाद श्यान जाति में बुरी तरह गड़बड़ी पैदा हो जाती है। इसके पहले ही सेनाध्यक्ष 'कुन-साम्-लङ्' ने असम जीता था। शान लोग असम को 'मिङ्-वेसाली-लुङ्' (बृहत् वैशाली देश) कहते हैं। तभी

सैन्य के कुछ अंश असम में रह जाते हैं। पहले आहोम लोग शक्तिशाली थे। किन्तु धर्म (हिन्दू) के प्रभाव से वे धीरे-धीरे वीर्यहीन हुए। इन लोगों ने तीन शताब्दी पूर्व ही अपनी भाषा और साहित्य को मृत बना दिया है। सिर्फ दो-चार 'वाई-लङ्' (पुरोहित) के मुंह में ही भाषा कुछ साल तक जीवित रही। फिर भी ताई-आहोम भाषा में लिखित 'बुरंजी' (इतिहास) साहित्य के बहुमूल्य सम्पत्ति ने असम को भारतवर्ष भर में ऊंचा स्थान दिलाया है। इन बुरंजी ग्रन्थों के अध्ययन से इन्दोचीन के इतिहास में प्रकाश पड़ता है। मंगोलों के प्रतिष्ठित होने के साथ-साथ घुमक्कड़ प्रिय ताई लोग पश्चिम की ओर फैलने लगे और उत्तर-बर्मा के साथ शताब्दियों तक सम्बन्ध बनाते रहे हैं। श्यानों का एक नामी गिरोह दक्षिण की ओर गया और धीरे-धीरे प्रव्रजन कर अन्त में 1750 ई० में 'आयुथिया' (अयोध्या) राज्य की नींव डाली। यही अन्त में, आधुनिक श्याम की भूमि में परिणत हुई।

ताई लोग सम्पूर्ण थेरवादी बौद्ध धर्मावलम्बी हैं। बर्मियों के बौद्ध-धर्म से भी अधिक ताई बौद्ध-धर्म में जड़ोपासना का प्रभाव स्पष्ट है। ऐसे तो ताइयों ने बर्मी लोगों से ही बौद्ध-धर्म ग्रहण किया है। ताइयों में प्रचलित परम्परा और चीनी इतिहास के अनुसार वे लोग बहुत पूर्व से ही बौद्ध धर्मावलम्बी थे। तथा बर्मी लोगों के सम्पर्क में आने से इस धर्म ने कुछ नया रूप अवश्य ही पाया है। यह भी परम्परा है कि महाराज अशोक ने धर्म-प्रचार के लिए देश-देशान्तर में प्रचारक भेजे थे। सोण और उत्तर, दो थेरों ने श्याम में बौद्ध-धर्म का प्रचार किया था। यह भी परम्परा है कि—चिन्दइन नदी तटीय गांव (मनिउवा) में आनेयेथा नामक व्यक्ति ने बौद्ध-धर्म ग्रहण कर अपने क्षेत्र में प्रसिद्धि पायी और उसने एक राज-नगर की भी स्थापना की थी। बौद्ध-विहार, अतिथि-शाला, पुष्प-वाटिका आदि निर्माण करवाया था, इस प्रकार के सुकर्म करते देखकर प्रजा ने ई०सन् 1044 में आनेयेथा को धर्मराज की उपाधि से सम्मानित किया था। यही बाद में 'पगान' का सम्राट् हुआ। इसी समय से ताइयों ने बौद्ध-धर्म ग्रहण कर कुछ ताई लोग 'श्यान-बर्मा' हुए थे। सन् 1600 तक ताई लोग पूर्ण रूप से बौद्ध हो चुके थे। 'मुङ्वान्' के ताइयों से पहले 'हुकंग' के श्यानों ने सन् 700 से 1800 के बीच इतिहास, ज्योतिष और नाना धार्मिक ग्रन्थों की रचना की। तब तक श्यान राजाओं के बौद्ध-धर्म ग्रहण न करने पर भी प्रजाओं में इसके प्रति धर्म-श्रद्धा उत्पन्न हो चुकी थी और बहुतों ने दीक्षा भी ग्रहण किया था। तब से अन्य ताइयों ने भी बौद्ध-धर्म ग्रहण करना आरम्भ किया।

बर्मा और शान राज्य समूह में चीनी और भारतीय दोनों ओर की सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव पड़ा है। उनको चीनी सभ्यता आवश्यक थी, इसलिए कि वे उनके अनुयायी थे। यह सभ्यता व्यापक है। असल में भारतीय साहित्य का प्रभाव पड़ने पर भी बर्मा और शान दोनों जाति ने इतिहास लेखन परम्परा को महत्व

दिया, किन्तु भारत में इतिहास लेखन परम्परा बिलकुल क्षीण है, दुर्भाग्यवश इनका इतिहास साहित्य का अब सामान्य अंश ही बच पाया है। ऐसे तो ताई लोग धार्मिक और व्यवहारिक जीवन में बर्मादेशीय 'पंजिका' को ही मानते हैं।

रूप और रंग में शान लोग श्याम और बर्मियों के साथ एक जैसे हैं। वे लोग हृष्ट-पुष्ट और उनसे कुछ ऊंचे जैसे हैं। आंखें सामान्य रूप से रेखाकृति की हैं, नाक चपटी, किन्तु गढ़ की ओर देखने पर यथेष्ट तीक्ष्ण होते हैं और मुख चौड़ा। ताम्बूल चबाने के अभ्यास से मुख चौड़ा होना स्वाभाविक ही है। इस अभ्यास के फलस्वरूप दांत और मसूड़े काले होते हैं। काले, मोटे-लम्बे बाल, साथ ही चिकने एवं चमकीले होते हैं। बर्मियों से भी सालुइन उपत्यका के शान लोग ऊंचे और हृष्ट-पुष्ट, बलशाली होते हैं। सामान्य तौर से शरीर में गोदना भी गुदवाते हैं। राजा के अंगरक्षक, प्राचीन काल में गले से घुटने तक सारे शरीर में चित्र अंकन करते थे। मुख और हाथ-पैर के स्थान-स्थान पर आज भी गुदवाते हैं।

'लाओ' लोगों को विशेष रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है। सफेद-लाओ, ये लोग पूरब के मेकङ् नदी के तट पर निवास करते हैं। और काले-लाओ, ये लोग पश्चिम की ओर निवास करते हैं। 'सफेद' और 'काले' ये अर्थहीन नाम हैं। संभव है, गोदना गुदवाने के कारण ही यह नाम पड़ा हो। ये लोग 'मोवांग-नान्' तक फैले हैं।

समग्र दक्षिण पूर्व एशिया में फैली हुई ताई जाति एक ही शाखा की होने पर भी समय के प्रभाव में स्थान वाचक नया नाम पाती है। जैसे—थाईलैण्ड में 'थाई' या 'शाम' और उत्तर-पूर्व अंचल में लाओस, सालुइन उपत्यका में 'लु' और 'खुन'। बर्मा और युन-नान् में 'शान' या 'श्वान्'। चीन में 'ताई-माओ' और असम में—आहोम, खामति, खामयाङ्, आईतन, फाके नाम से अपना परिचय देते हैं।

खामति लोग अपना परिचय 'ताई' कहकर देते हैं। इसका अर्थ है 'गिरि-प्रव्रजन' कर आने वाले लोग। पहले ये लोग पहाड़ों में निवास करते थे। ये अपने को 'कुन्-ताई' (कुन्—आदमी, लोग; ताई—ताई लोग) भी कहते हैं। 'कुन्--ताई' का अर्थ है 'ताई' जाति के लोग। खामति भिन्न लोग इन्हें 'खामति' नाम से ही जानते हैं। खामति शब्द का अर्थ निम्न प्रकार से होता है :

1. खामति, खाम-घाटी, तलहटी, उपत्यका और ति-स्थान, अर्थात् उपत्यका में रहने वाले लोग।
2. खामति, खाम-स्वर्ण, और ति-स्थान। अर्थात् ये लोग स्वर्णभूमि के निवासी थे।
3. ति-खाम्-अक्, ति-स्थान, खाम्-स्वर्ण, और अक्-निकलना, उत्पन्न होना। अर्थात् स्वर्ण उत्पन्न होने के स्थान के लोग होने के कारण 'खामति' नाम-करण हुआ है।

खामति लोग अपने को ताई-श्याम-जाति के लोग कहते हैं। असम के अन्य जाति खाम्याङ्, आइतन, फाके (फाकियाल), और तुरुंग लोग भी अपने को 'ताई' या श्याम बौद्ध कहते हैं। तुरुंग लोग अपने को 'ताई-लुङ्' यानी 'बृहत्-ताई जाति' कहते हैं। किन्तु ये लोग 'काचिन' ('इम्फो' या 'सिंगफो') परिवार की भाषा बोलते हैं असम और अरुणाचल में इम्फो, दुवनीया और तुरुंग लोग एक परिवार की भाषा बोलते हैं।

उत्तर-पूर्वी भारत में ताई/श्याम वंश के लोग पांच शाखाओं में विभक्त हैं— आहोम, खामति, खाम्याङ्, आइतन और फाके। ताई-वंशी लोगों में से भारत में प्रवेश करने वाले सर्वप्रथम आहोम लोग हैं। ई० सन् 1228 में सेनापति 'सु-का-फा' (सुकाफा) के नेतृत्व में असम प्रवेश कर छह सौ साल का दीर्घ शासन किया। ई० सन् 1826 से आहोम राज्य अंग्रेजों के अधिकार में चला जाता है।

जब बर्मी राजा आलम्फा (सन् 1752-60) ने खामति राज्य 'मिुङ्-क्वङ्' जीत लिया, संभवतः तभी खामति लोग असम के आहोम राजा राजेश्वरसिंह (सन् 1751-69) से अनुमति प्राप्त कर 'चाउ-ङिलुङ्‌किङ्-खाम्' के नायकत्व में असम प्रवेश करते हैं। वह अपने भांजे चाउ थाउ मिुङ् एवं चाउ आई न्वय की सहायता से आया था। असम प्रवेश कर खामतियों के प्रमुख चाउ-ङिलुङ् किङ्‌खाम् 'टेंगा-पानी' (नामसुम्) नदी तट पर रहने लगा और चाउ आई न्वय सदिया में 'नाम-कुलुन' (कुण्डिल नदी) तट पर रहने लगा। तब यह अंचल 'मिुङ्तिलाउ' नाम से जाना जाता था। चाउ-ङिलुङ्‌किङ्‌खाम् की मृत्यु के बाद उसका पुत्र चाउ मिुङ्-कान्लुङ् ने आहोम राजा के आधिपत्य में, सदिया को अपने शासन में सन् 1793 तक रखा।

आहोम राजा गौरिनाथ सिंह (1780-95) के समय में मोवामरिया विद्रोह से आहोम राज्य की शक्तिक्षीण हो गई थी। इतना कि वे सदिया अंचल को भी अपने अधीन रख पाने में असमर्थ हुए। भटक राजा के बर-सेनापति ने देश के उत्तरी क्षेत्र बेंगमारा (तिनसुकिया) से सइखोवा को अपने अधीन कर लिया। तब सदिया का सूत्र आहोम राज्य से बिछुड़ गया। इसी अवसर पर 'इम्फो'/'सिंगफो' की सहायता से खामतियों ने सदिया के आहोम सदिया-खोवा गोहांई (आहोम भाषा में 'चाउ-वो-ङेन्' कहा जाता है, जिसका अर्थ है 'राज्यपाल') को पदच्युत किया और खामति नेता चाउ मुङान् लुङ्, सन् 1793 में सदिया-खोवा गोहांई बना। आहोम राजा ने खामति सदिया खोवा गोहांई को सइखोवा तक के उत्तरी क्षेत्र में शासन करने की अनुमति दे दी। सन् 1798 में सदिया को पूर्णरूपेण खाम-तियों ने अपने अधीन कर लिया। तब से खामतियों में एकता की भावना जागृत होने लगी। वे मौवागरिया राजा को भी एक बार परास्त करने में सक्षम हुए। खामतियों में ऐक्य और रण-कौशलता होने से अन्य स्थानीय असमिया जाति को

भी बस में रखा था।

राजा कमलेश्वरसिंह (1795-1811) के समय, खामति राजा ने ब्रह्मपुत्र के उत्तरी तट पर 'निबुक' नामक स्थान में आहोम राजा के साथ युद्ध किया, किन्तु इसमें खामति लोग परास्त हुए और उन्हें बन्दी बनाकर जोरहाट में रखा गया। 'तुंगखुङिया बुरंजी' में उल्लेख है कि खामति बुराराजा (वृद्ध राजा) को पकड़कर दिसोई में रखा गया था। राजा और उसके अनुयायियों ने तोकलाई जंगल में अपना गांव बसा लिया।

सर्वप्रथम आहोम राजा से अनुमति प्राप्त कर केवल 200 खामति असम प्रवेश करते हैं। फिर बाद में 400 खामतियों का एक गिरोह, पूर्व के खामतियों से जा मिला। सन् 1835 में मिुङ्लाङ् से भी 230 खामतियों का एक गिरोह आकर अपने मित्रों के साथ रहने लगे। चाउ सिङ्थी के नेतृत्व में एक 300 खामतियों का गिरोह सन् 1850 में आया और इन लोगों ने दिराक नदी के तट पर अपना उपनिवेश बसाया। समय-समय पर बहुत संख्या में खामति लोग असम प्रवेश करते रहे। किन्तु युद्ध-विग्रह में मारे भी बहुत जाते थे। इन लोगों ने उपजाऊ नाम्-सुम (नाम्—पानी; सुम् —खट्टा), नाम्-होक् (जुड़ी-दिहिंग), न-दिहिंग और नामतिलाउ (लोहित) नदी तटीय उपत्यका में गांव बसाकर रहने लगे।

जब खामति बुराराजा को पकड़कर जोरहाट में रखा गया था, तब सदिया में आहोम राजा ने 'बरीर-पुतेक' को सदिया-खोवा गोहांई नियुक्त किया। इधर खामति युवराज चाउ आई न्वय वापस टेंगापानी जाकर कुछ साल के लिए चुप रहा। इसी समय, सन् 1816-17 में बर्मियों ने असम पर आक्रमण किया। वदनचन्द्र के नेतृत्व में बर्मी सेनाओं ने जोरहाट पर अधिकार कर लिया। बर्मी सेनाओं ने आहोम राजा द्वारा बन्दी बनाए हुए सभी खामतियों को मुक्त कर दिया और वापस अपने राज्य में भेज दिया। खामतियों ने जोरहाट छोड़ा, किन्तु वे शान देश न जाकर सदिया चले गए और वहां अपना अधिकार जमा लिया।

सन् 1818 में बर्मी सेना पुनः असम प्रवेश करती है। बर्मी सेनाओं ने खामति सदिया-खोवा गोहांई को पदच्युत किया और बदले में अपने ही आदमी की नियुक्ति की। सन् 1826 में बर्मी अधिकारी को पदच्युत कर अंग्रेज सरकार ने खामति को पुनः सदिया-खोवा गोहांई के पद पर नियुक्त किया। किन्तु खामतियों को विशेष अधिकार नहीं दिया गया। कर आदि की वसूली अंग्रेज अधिकारी ही करने लगे।

सन् 1826 के इयान्दाबु सन्धि के बाद ब्रिटिश सरकार ने असम की सभी जातियों को शासनाधीन किया। इतना कि दफला (निसि) मिस्मी, आदि (आबर), इम्फो (सिंगफो) आदि को भी। किन्तु खामतियों को वश में नहीं ला सकी। अन्त में, मई, 1826 में ब्रिटिश सरकार ने खामति प्रमुख को 'आइन सम्मत शासक'

(लॉ फुल रुलर) घोषित कर दिया। सरकार खामतियों के किसी भी कार्य में हस्त-क्षेप नहीं करती थी। वे कर भी नहीं देते थे, बल्कि खामति ही अन्य लोगों से कर वसूलते थे। शर्त यही थी कि 'अन्य जाति को शासन करने के लिए सदिया में दो सौ सैन्य रखे जाएंगे।' जब 'इयान्दाबु-सन्धि' के बाद अंग्रेज अधिकारी दाविदस्कात असम आया और खामतियों के प्रमुख नेता चाउ सामला नामसुम को सदिया में सदिया-खोवा गोहांई पद पर नियुक्त किया और सदिया-खोवा गोहांई को ब्रिटिश सरकार ने 200 सिपाहियों सहित देख-रेख का भार दिया, तब सदिया में सम्पूर्ण-रूप से खामतियों का अधिकार था। उस समय इम्फो लोगों को दवाने के लिए खामतियों के ब्रिटिश गवर्नर-जनरल दाविदस्कात ने खामति राजा चाउ सामला गोहांई को वहां का प्रमुख बनाया और वहां के खामति भिन्न लोगों से 'जन-मुड़ी-कर' (पोल-टेक्स) वसूल करने का अधिकार दिया।

सभी प्रकार से ब्रिटिश सरकार को मदद कर उनके वश में रहना खामतियों को पसन्द नहीं था। दूसरी ओर ये लोग बरखामति देश के खामतियों से भी राज-नैतिक एवं सामाजिक सम्बन्ध बनाए हुए थे। इस समय आहोम पियली बरफूकन और पियली बरगोहांई (धनजय बरगोहांई) के नेतृत्व में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सन् 1830 में विद्रोह किया तो इम्फो, नागा, खासी, गारो, मटक और खामतियों ने पूर्णरूप से मदद की। एक इयांग-गोमन्दाउ (गदाधरसिह) नाम के व्यक्ति ने खामति बौद्ध भिक्षु के रूप में उत्तरी बर्मा की ओर से इम्फो की सहायता से ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा। इस समय कुछ खामति 'मिुङ्क्वङ्' लौट जाएं या ब्रिटिश सरकार के अधीन रहें, दोधारी में पड़ गए थे।

सन् 1835 में खामति सदिया-खोवा गोहांई, चाउ सामला गोहांई की मृत्यु हुई, तब चाउ लांगफा प्रमुख बना। उस समय 230 खामतियों का एक गिरोह मिुङ-लाङ से आकर अपने सम्बन्धियों से मिला। इसी साल सइखोवा अंचल के लिए मटक और खामतियों के बीच झगड़ा हुआ। ब्रिटिश अधिकारी ने इसे खतर-नाक समझा और खामति सदिया-खोवा गोहांई, चाउ लांगफा को पदच्युत कर गुवाहाटी भेज दिया। तब से सदिया सम्पूर्णरूप से ब्रिटिश शासन के अधिकार में आ जाता है। खामतियों ने अपना अधिकार खो दिया। किन्तु उन्हें अपने खाम-तियों के बीच प्रमुख होकर रहने का सीमित अधिकार दे रखा। इम्फो ने सन् 1835-36 में ब्रिटिश सेना के बीच लूटपाट मचा दी। खामतियों ने ब्रिटिश अधि-कारियों को धन-जन सभी प्रकार से उनकी सहायता की। इससे प्रसन्न होकर ब्रिटिश सरकार ने भूतपूर्व खामति सदिया-खोवा गोहांई, चाउ लांगफा और उसके अनुयायियों को सदिया लौटकर वसवास करने की अनुमति दी। सदिया लौटने पर चाउ लांगफा को पूर्व का अधिकार पुनः प्राप्त नहीं हो सका।

सन् 1834 की और एक उल्लेखनीय घटना है, सइखोवा के मुख्य सेनापति

सदिया-खोवा गोहांई के बीच सीमा विवाद हो गया, तब तत्कालिक सदिया के ब्रिटिश अधिकारी लेफ्टिनेन्ट सार्लतन अंग्रेज ने खामतियों को सद्दखोवा अधिकार न करने के लिए कहा था, किन्तु खामति मानने वाले नहीं थे। बलपूर्वक अधिकार जमा लिया। ब्रिटिश अधिकारी स्वयं वार्ता के लिए गया, किन्तु खामति राजा ने मिलने से इनकार कर दिया। खामति राजा के ऐसे व्यवहार से असन्तुष्ट होकर सार्लतन ने खामतियों के अधिकृत क्षेत्र को शीघ्र ही छोड़ने का आदेश दिया। खामति राजा ने मौखिक उत्तर भेजा—"वह अंग्रेज का गुलाम नहीं है कि वह उसका आदेश मानेगा। मेरे जैसे व्यक्ति का आना और जाना शोभा नहीं देता।"

खामतियों को यह ज्ञात हुआ कि ब्रिटिश सरकार ने 'असम लाइट इन्फेन्ट्री' का मुख्य कार्यालय विश्वनाथ (तेजपुर) से सदिया में स्थापित करने का निश्चय किया है। तब खामतियों ने अपने अधिकृत राज्य खोने के भय से सदिया के ब्रिटिश सैनिकों पर आक्रमण किया। धनुष-बाण, दाव-हथियार, नाना अस्त्र-शस्त्र सहित एक ओर से मार-काट, हत्या कर विप्लव सृष्टि करने लगे। क्रुद्ध खामतियों ने नादान शिशुओं, स्त्रियों की नाहक हत्या कर दी। गांववासियों के घरों में आग सुलगा दी। निरीह जनता को कष्ट दिया। इस विद्रोह ने भयावह रूप धारण किया। इसी विद्रोह के अवसर पर ब्राउन अंग्रेज अधिकारी प्राण लेकर भाग खड़ा हुआ।

सन् 1837 में यह अफवाह फैली कि खामति राजा चाउ लांगफा, इम्फो (सिंगफो) मटक, मिस्मी, खामयाङ् और मुलुक लोगों के साथ मिलकर सदिया पर आक्रमण करने वाले हैं। किंतु ब्रिटिश सरकार को इस षड्यन्त्र का कोई ठोस प्रमाण नहीं मिल सका। उस समय खामतियों के प्रमुख नेता थे—भूतपूर्व सदिया-खोवा गोहांई, चाउ लांगफा, चाउए गोहांई, कप्तान गोहांई (यह सदिया में खामति योद्धाओं के सेनापति थे), चाउ फापुलुङ्-लु (रनुवा गोहांई) और चाउ किंग गोहांई।

तब सन् 1839, 28 जनवरी को दो बजे रात में सदिया पर 600[1] खामतियों ने चार भागों में विभक्त होकर ब्रिटिश सेनाओं के शिविरों पर आक्रमण किया। सैनिक छावनियों में आग लगा दी। अंग्रेज राजनीतिक प्रतिनिधि मेजर आदम ह्वाइट और अन्य 80 लोगों की हत्या कर दी और खामतियों के केवल 21 लोग मारे गए, अंग्रेज सेनाओं ने जल्दी ही इन पर काबू पा लिया तथा इन्हें तीसरी बार वापस खामति देश जाने के लिए विवश किया।

दो छावनियों को छोड़कर सभी अंग्रेज शिविरों को खामतियों ने आग लगाकर भस्म कर दिया। मेजर आदम ह्वाइट को टुकड़े-टुकड़े काटकर अंग्रेज प्रतिनिधि का

---

1. कुछ मतों में खामतियों की संख्या 500 कहा गया है, किन्तु समसामयिक विवरण लिखने वाले जोन एफ. मिकल ने 600 माना है।

मांस भालों में पिरो लिया और 'हेला···हेला' करते हुए जुलूस के साथ जय-ध्वनि करने लगे। अंग्रेज प्रतिनिधि की हत्या के बाद इनके और ब्रिटिश सरकार के बीच भयंकर लड़ाई हुई। तत्कालिक सरकार के विरुद्ध पहाड़ी जातियों के विद्रोह में से यह प्रवलतम विद्रोह माना जाता है। अंग्रेजों के साथ लड़ने-भिड़ने की कहानी आज भी खामति वयोवृद्ध लोग कहा करते हैं।[2] इस विप्लव के प्रमुख नेता थे चाउ फा पुलुङ्-लु गोहांई तथा चाउए गोहांई। पहले तो खामतियों ने इस विद्रोह में पूर्ण सफलता प्राप्त की किन्तु बाद में उन्हें बुरी तरह कुचल दिया गया। चाउए गोहांई एवं कप्तान गोहांई ने दिबांग उपत्यका में भागकर प्राण बचाए और चाउ पुलुङ् लु तथा अन्य खामति गांवों को उजाड़ बना दिया। इन्हें इम्फो, मिस्मी के क्षेत्र में शरण लेनी पड़ी।

चाउ फा पुलुङ् लु गोहांई (रनुवा गोहांई), योग्य पिता चाउ आई न्वय लुङ् किङ् खाम का सुयोग्य पुत्र था। वह वीर, धीर, स्पष्टवादी, स्वतन्त्रता प्रेमी था। उसका सभी पहाड़ी जनजाति आदर करते थे। वह 'चाउ फा क्वन् मिङ्' (जन-प्रेमी राजा) नाम से जाना जाता था। ब्रिटिश सिपाहियों ने उसे पकड़कर सदिया के जेल में रखा। उसका साला चाउ हङ् सिमिङ् के साथ जेल से भागते समय पैर में गोली लग गई, किन्तु वह जंगल में शरणापन्न हुआ। शीघ्र ही फा-क्वन मिङ् अपने निवास स्थान पहुंचा। ब्रिटिश सेना ने उसे पकड़ लिया। रनुवा गोहांई या चाउ फा क्वन मिङ् ने वीरगति से मरने के लिए सोचा और उसने प्रचंडता से सेना के कमाण्डर पर आक्रमण किया। ब्रिटिश सेनाओं ने उसे गोली मार दी, वह स्वतन्त्रता के लिए वीरगति को प्राप्त हुआ। यह सचमुच में ही भारतीय स्वतन्त्रता का वीर सेनानी था। इसकी वीरता की कहानी आज भी खामतियों के प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है।

चाउ सामला नामसुम के उत्तराधिकारी चाउ लांगफा नामसुम, खामति सदिया-खोवा गोहांई हुआ। इसी समय कैप्टेन सार्लेतन अंग्रेज पुनः खामतियों की गतिविधि, अध्ययन के लिए नियुक्त हुआ। खामति राजा चाउ लांगफा नामसुम अंग्रेज अधिकारी के आदेश को हंसी में टाल देता था और हर वक्त ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह खड़ा करना चाहता था। ऐसी डांवांडोल परिस्थिति देखकर खामति राजा के अधिकार से बहुत-सा क्षेत्र छीन लिया और क्रान्तिकारी खामति नेता को गिरफ्तार कर विश्वनाथ (तेजपुर) जेल में बन्द कर दिया गया। जितने भी खामति सिपाही ब्रिटिश सेना में थे, उन्हें पदच्युत किया गया। उनके पास जो अस्त्र-शस्त्र, हथियार थे, वे छीन लिए गये। इन्हें तितर-बितर कर दिया। इतना

1. बहुत से नाम और घटनाओं का विवरण, बरखामति गांव, नारायणपुर निवासी श्री चाउ नाउ नामसुम ने प्रस्तुत लेखक को बतलाया है।

करने पर भी खामति शान्त नहीं हुए। उपायहीन होकर अंग्रेज अधिकारी कैप्टेन हेनी ने अन्य बहुत से सैन्यों को साथ लेकर खामतियों पर आक्रमण किया। क्रोधित हेनी ने बहुत से खामति गांवों में आग लगा दी और अनेकों की निर्मम हत्या कर दी। धान के खेत की फसल को नष्ट कर दिया और विद्रोही खामति नेताओं को पकड़कर कठोरतम दण्ड जारी रखा। इस विद्रोह में 'इम्फो' (सिंगफो) आदि (आबर), मिस्मी आदि पहाड़ी जातियों ने भी गुप्त रूप से खामतियों की सहायता की थी, किन्तु विद्रोह असफल रहा। हेनी की कठोर दमन नीति ने खामति जाति के जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन ला दिया। तब से खामतियों की स्वतन्त्रता की इच्छा सदा के लिए समाप्त हुई। इनकी भावना क्षीण हुई। भविष्यत् निरा-पदार्थे ब्रिटिश सरकार ने खामतियों को चार भागों में विभक्त कर दिया।

खामतियों के लिए सन् 1839 से 1843 के दिन बहुत ही विपत्तिजनक रहे। ब्रिटिश सेनाओं ने खामतियों के गांव जलाकर भस्म कर दिए और पालतू पशुओं को मार दिया। खामतियों के लहलहाते हुए धान खेत को रौंद डाला और जंगल में छुपे हुए खामति नेताओं को पकड़ लिया। अन्त में ब्रिटिश सेनाओं ने रनुवा गोहांई के द्वितीय पुत्र चाउ लिक् को पकड़ लिया। चाउ लिक् भले ही प्राण चले जाएं, किन्तु वह ब्रिटिश सरकार के सम्मुख आत्म-समर्पण करने वाला नहीं था। अन्त में ब्रिटिश सेनाओं ने चाउ लिक् की हत्या कर दी। उसके बाद इम्फो तथा मटकों की सहायता से ब्रिटिश सेनाओं ने चाउ फा क्वान् मिङ् (रनुवा गोहांई) के बड़े पुत्र चाउ किङ् को पकड़ लिया। उसने कुछ परिस्थितियों में आत्मसमर्पण कर दिया। चाउ किङ् और उसके दो सौ अनुयायियों को सदिया से निष्कासित किया और वे ब्रह्मपुत्र के दक्षिण तट पर लखीमपुर जिले में आए तथा उन्हें 'नाम्-चेपु' (डिब्रु) नदी तट पर गांव बसाकर रहने की अनुमति दी गई। धीरे-धीरे इन लोगों ने 'चा-कितिङ्' (चौकीडिङि), और डिब्रुगढ़ से सात मील दूर जाकै में अपना प्रभुत्व जमा लिया। चाउ किङ् के डिब्रुगढ़ आने के बाद अन्य 900 खामतियों ने भी आत्मसमर्पण कर दिया।

इनमें दो खामति नेता थे—चाउ ताङ् गोहांई (सिसि राजा) और चाउ ला गोहांई (भदिया गोहांई) चाउ ताङ् गोहांई को अपने 400 अनुयायियों सहित ब्रह्मपुत्र के उत्तरी तट पर धेमाजी भेज दिया गया। सिसि नदी तट पर रहने के कारण यह बाद में सिसिराजा नाम से जनजात हुआ। यह स्थान वर्तमान धेमाजी से सात मील की दूरी पर, कठालगुरी नाम से जाना जाता है। इसके पास बहुत सोना था। घर में आग लगने से सारा सोना नष्ट हो गया। ब्रिटिश सरकार ने भी बहुत-सा सोना सिसिराजा से ले लिया। वह पुत्रहीन था। चाउ ताङ् गोहांई की मृत्यु के बाद सिसि से कुछ खामति नारायणपुर, डिक्रंग चले गए और कुछ सदिया लौट गये तथा जो वहां थे, वे वहीं के अन्य जाति के लोगों से मिलकर खामतित्व को

खो बैठे। चाउ ताङ् गोहांई सदिया-खोवा गोहांई का चचेरा भाई था।

दूसरी शाखा का नेतृत्व सदिया-खोवा गोहांई का पुत्र चाउ ला गोहांई (भदिया गोहांई) करता था। अन्य पांच सौ अनुयायियों सहित सदिया से नाव में लाकर डिब्रूगढ़ नदी तट पर नारायणपुर के कलाबारी नामक स्थान में छोड़ दिया। कलाबारी में महामारी फैलने से कुछ खामति मारे गये। (मोरी डिक्रंग) तट पर रहने पर इनकी संख्या बढ़ने लगी, तो ब्रिटिश सरकार को भय हुआ, इसलिए खामतियों को अफीम जैसी मादक द्रव्य खिलाकर, हाथी पकड़ने के व्यापार में फंसा दिया। ग्रेओ नामक अंग्रेज की देख-रेख में ये लोग हाथी पकड़ते थे। वर्तमान में यह खामतियों का प्रमुखतम दूसरा स्थान है, इस अंचल में सात खामति गांव हैं। बहुत से गांव यहीं से जाकर अरुणाचल के लोहित अंचल में रहने लगे हैं। डिक्रंग के प्रमुख खामति गोहांई ने शिवसागर में अंग्रेजी स्कूल में शिक्षा पायी और वहीं से उसने आहोम कुंवर परिवार की लड़की लुथुरी आइदेउ से शादी की। बाद में ब्रिटिश सरकार ने खामति गोहांई को तहसीलदार (मोजादार) के पद पर नियुक्त किया। वह परम्परा आज भी अक्षुण्ण है। नारायणपुर, खेराज-खाट का तहसीलदार खामति राज-परिवार का है।

चाउ ए गोहांई एवं कप्तान गोहांई दोनों ब्रिटिश सेना के अनुसरण में आये। अन्त में कप्तान गोहांई आत्मसमर्पण के लिए विवश हुआ। कप्तान गोहांई सदिया-खोवा गोहांई का चचेरा भाई था। इसके नायकत्व में सदिया, सुनपुरा में खामति गांव बसाया। अब यहां केवल स्येंगसाप् एवं सुनपुरा में कुछ ही घर खामति रह गये। बाकी लोहित (अरुणाचल) में गांव बसाकर रहने लगे हैं।

रनुवा गोहांई एवं चाउ ए गोहांई के पुत्रों ने सन् 1843 में ब्रिटिश सरकार को प्रार्थना सन्धि-पत्र भेजा कि "उन्हें पुनः मूल स्थान में निवास करने दिया जाए।" सरकार ने खामतियों को सपरिवार टेंगापानी, कामलांग और दिराक नदी तटीय उपत्यका में निवास करने की अनुमति प्रदान की। सन्धि अनुसार ब्रिटिश सरकार ने खामतियों के समसामयिक खामति नेता चाउ साम लुङ् किङ् खाम और चाउ न्वय लुङ् किङ् खाम को अपने क्षेत्र में अनुशासन करने की भी अनुमति दी। यहीं इन लोगों ने एक भिक्षु के वचन-बद्ध होने से 'च्वङ्खाम्' (च्वङ्—विहार, खाम्—स्वर्ण) का निर्माण किया। वही आज 'चौखाम' नाम से जाना जाता है।

च्वङ्खाम् (चौखाम) का शासनभार चाउ माङ्थि को सौंपा गया था, किन्तु कुछ गृह द्वन्द्व के कारण चाउ माङ्थि 'मुङ्माउ' (बर्मा) चला गया। वहीं इसकी मृत्यु हुई। तब चाउ साम् लुङ्किङ् खाम् खामति क्षेत्र का प्रमुख नियुक्त हुआ, इसे लोग चाउ सा राजा नाम से जानते हैं। ब्रिटिश शासकों ने खामति राजा को पूर्ण अधिकार का दर्जा दिया। सन् 1875 में ब्रिटिश अधिकारी जे० एफ० नीधाम को

रिमा (बर्मा) यात्रा में खामति राजा ने पूर्ण सहयोग दिया। चाउ फा कानान की भारतीय स्वतन्त्रता के समय मृत्यु हुई जो बहुत ही धार्मिक, जनप्रिय खामति प्रमुख रहा। उसके पुत्र श्री चाउ खामुन गोहांई (नामसुम) स्वतन्त्र भारत का सर्वप्रथम नेफा का संसद-सदस्य मनोनीत किया गया और इनका छोटा भाई श्री चाउ चान्द्रेत गोहांई भी अरुणाचल के लिए संसद सदस्य रहा। श्री चाउ खामुन गोहांई लोहित अंचल में खामति, सिंगफो क्षेत्र के लिए सर्व-सम्मति से प्रमुख (राजा) है।

सरकारी जनगणना में लखीमपुर जिले में खामतियों (खाम्याङ् एवं फाकियाल सहित) की संख्या सन् 1872 में केवल 1562 थी और सन् 1961 की जनगणना में 2883 थी।[1] प्रस्तुत अनुसन्धानकर्त्ता ने सन् 1978-79 में अरुणाचल और असम के 42 खामति गांवों के सर्वेक्षण से पता चला है कि खामतियों की गृहसंख्या 995 और जन संख्या 9234 हैं।

वर्तमान खामति लोग मुख्य रूप से अरुणाचल प्रदेश के लोहित जिले में निवास करते हैं। इसके अलावा असम के लखीमपुर एवं डिब्रूगढ़ जिलों में भी इनके गांव हैं। अंग्रेजों द्वारा असम पर अधिकार करने से पहले, खामति लोग मुख्य रूप से सदिया अंचल में निवास करते थे। सन् 1839 में खामति और ब्रिटिश सरकार के बीच लड़ाई होने से ये लोग परास्त हुए तो इन्हें कई भागों में बांटकर तितर-बितर कर दिया, इसका उल्लेख किया जा चुका है। कुछ को डिब्रूंग, नारायणपुर, उत्तर लखीमपुर लाया गया और कुछ बर्मा लौट गए। जो सदिया में थे, वे अरुणाचल प्रदेश के लोहित अंचल में रहने लगे। अरुणाचल और असम में खामतियों के 42 गांव हैं।

खामति लोग नदी, उप-नदियों और जंगलों का आश्रय लेकर गांव बसाते हैं। साधारणतः खामतियों के घर—घास, फूस, बेंत, बांस, लकड़ी आदि से टोपदार मचान-घर बनाते हैं। घर की लम्बाई उत्तर दक्षिण दिशा कर बनाते हैं। घर के दक्षिण की ओर द्वार रखते हैं, मचान पर चढ़ने के लिए सप्त या पंच स्तरीय सीढ़ी बनाते हैं। ये सीढ़ी लकड़ी या बांस की होती है। अतिथियों के सोने के लिए, घर के 'टोप' का मचान खुला रहता है। सम्मानित अतिथि को घर के पूरब दिशा में बैठने का आसन दिया जाता है। घर के पूरब दिशा की ओर पैर करके सोना या बैठना, थूकना और पेशाब-पाखाना करना निषिद्ध है। निम्नांगीय वस्त्र पर्यन्त घर के पूरब दिशा में नहीं रखते हैं। जूते, चप्पल घर के भीतर नहीं ले जाते हैं। घर के पूरब दिशा में बैठकर पठन-पाठन, पूजा-वन्दना करते हैं। धर्म-पोथियां और भगवान बुद्ध की मूर्तियां, चित्र पूरब दिशा में रखे जाते हैं।

खामति घर के दरवाजे स्वयं बन्द होने के ढंग से बनाते हैं। इनके गांवों में

1. "सेन्सॉस ऑफ इंडिया" (आसाम), भाग 3, 1961, पृ० 24।

चोरी नहीं होती है। घर के दरवाजों में ताले नहीं लगाते हैं। घर में कमरे भी नहीं होते हैं। मूल घर में जोड़कर पश्चिम की ओर रसोईघर बनाते हैं। खामति घर को झाड़ने, लीपने, पोतने की आवश्यकता नहीं रहती है। 'हो-ति-फाई' (चूल्हे) को मिट्टी और पानी से कभी-कभी अवश्य ही लीपते हैं। यह 'हो-ति-फाई' चौखट होता है। अन्य जनजातियों की भांति खामति घर के आस-पास गन्दगी नहीं रहती है।

खामतियों के प्रत्येक गांव में बौद्ध-विहार का होना आवश्यक रहता है। पर्वोत्सव एवं पुण्य-तिथि के अवसर पर विहार को सजाया जाता है। विहार खामति गांव का अपरिहार्य धार्मिक अनुष्ठान है। विहारों में असंख्य, पौराणिक पाण्डुलिपियां संगृहीत हैं। स्वयं निर्मित हाथी दांत, लकड़ी आदि की बुद्ध-मूर्तियां भी गांव के विहारों में हैं। पवित्रता की दृष्टि से विहार में फूल के पौधे भी लगाये जाते हैं।

वर्तमान, सभी ओर के खामति लोहित अंचल की उपजाऊ भूमि में गांव बसा कर निवास करने लगे हैं। असम तथा अरुणाचल की जनजातियों में खामतियों में अधिक शिक्षित लोग हैं। हालांकि इनकी संख्या अन्य जनजातियों से बहुत कम है। इन लोगों में एकता और अखण्डता की भावना बौद्ध-धर्म के कारण हुई है। जहां भी ये लोग गांव बसाते हैं, वहां विहार एवं भिक्षु का होना अनिवार्य है। गांव के लड़के विहार में धर्मशिक्षा के साथ-साथ आधुनिक स्कूल की शिक्षा भी प्राप्त करते हैं। भिक्षु इनके समाज के मार्ग-दर्शक होते हैं। चौखाम विहार में 60 अन्तेवासी आज भी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। गांव वाले इन्हें भोजन देते हैं। भारतीय आदिवासियों में खामति लोग बहुत ही उन्नत माने जा सकते हैं। किन्तु इनके बीच अफीम जैसा भयानक मादक-द्रव्य के सेवन की प्रथा ने घर कर लिया है। यह इनकी उन्नति में बाधा डालती है। ●

सामाजिक जीवन, पर्वोत्सव एवं बौद्ध परम्परा की रूपरेखा

कृषि, खान-पान और पहनावा

खामति लोग कृषि-जीवी हैं। इनका प्रमुख व्यवसाय कृषि है। मुख्य रूप से ये लोग धान, सरसों, उड़द की खेती करते हैं। खामति लोग व्यवस्थित ढंग से धान-खेत बोते हैं। ममोङ्, चौखाम, खेरेम, मानकाउ, हम्पङ्, मेमे इत्यादि गांवों के खामति 'नाम-फाई' (नदी में बांध बनाकर सींचन) पद्धति से खेती करते हैं। इनके यहां 'झुम' प्रथा भी है। 'झुम' पद्धति में एक खेत में तीन साल से अधिक सफल नहीं बोते हैं। उस खेत में जंगल बढ़ने दिया जाता है। जंगल बढ़ने पर पूर्व का जमीन मालिक पुनः उसे साफ कर धान, सरसों बोता है। यह कृषि-प्रथा पुरानी है। वर्तमान में यह पद्धति समाप्त होती जा रही है। आजकल सुबह चार बजे से नौ या दस बजे तक हल चलाकर खेती करते हैं। बैल, भैंसा के सहारे हल जोतते हैं। हाथी से भी हेंगा लगाकर जंगल साफ किया जाता है।

खामति लोग पर्याप्त मात्रा में धान-खेत बोते हैं, फिर भी आगामी फसल तैयार होने से पहले ही अन्न समाप्त हो जाता है। जब तक अन्न रहता है, तब तक दावतें और 'प्वय्' (उत्सव) करते हैं। मांगने वालों को भी पर्याप्त मात्रा में अनाज देते हैं।

खामतियों के धान-खेत गांव से तीन-चार मील की दूरी पर होते हैं। युवक-युवतियां सामूहिक रूप से खेत के कार्य में लगे रहते हैं। स्त्री-पुरुष उभय ही खेती के मौसम में अविश्राम लगे रहते हैं। इनका मुख्य खाद्य चावल है। चावल से नाना प्रकार की खाद्य-वस्तुएं तैयार करते हैं। जैसे—खाउ-नाम्पा, खाउ-तेक्, खाउ-लाम, खाउ-पुक आदि।

खामति लोग मांस-मछली के बड़े शौकीन होते हैं। गांव के लोग—स्त्री, पुरुष, युवक, युवतियां मिलकर मछली पकड़ने के लिए जाने की प्रथा आज भी अरुणाचल में प्राणमय है, खामति लोग नदी, उप-नदियों के तट पर इसलिए गांव बसाते हैं, जिससे कि उन्हें मछली आदि आसानी से मिल सके। साधारणतः मछली

फंसाने के औजार बांस, बेंत से स्वयं तैयार करते हैं। खामति स्त्रियां मछली पकड़ने की कला से परिचित होती हैं। अधिक मछली मिलने पर उसे अग्नि-ताप (धुएं) में सुखाकर नाना तरह से रखते हैं। जब अभाव होता है, तब सुखाई हुई मछली से काम चलाते हैं। मछली से नाना खाद्य-रस तैयार करते हैं। जैसे, पानाओ, पासा, पाम्वक, पाफो, पासोम, पाहेङ् आदि।

खामति समाज में अफ़ीमचियों की संख्या भी कुछ मात्रा में है। अंग्रेजों ने इन्हें दबाने के लिए अफ़ीम की आदत डलवाई। अफ़ीम पीने की आदत अरुणाचल तथा असम की प्रायः जनजाति पहाड़ी समाज में है। अफ़ीम के अलावा खामति लोग बीड़ी, पान, चाय आदि का सेवन भी करते हैं। अफ़ीम का नशा भयावह होता है। अगर कोई पीने वाला, पीने से वंचित रहा तो वह बीमार पड़ जाता है।

कुछ मात्रा में खामति लोग 'लाउ' (मद्य) भी पीते हैं। यह 'लाउ' चावल से बनाते हैं। मद्य पीने वाले को धर्म के विरुद्ध माना जाता है। अन्य आदिवासियों की तुलना में ये लोग मद्य का सेवन कम करते हैं। इसलिए कि खामति लोग बौद्ध धर्मावलम्बी हैं। पंचशील में "सुरामेरयमज्ज-पमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि" (मैं सुरा-मेरय आदि मादक द्रव्यों के सेवन तथा प्रमाद के स्थान आदि से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं)।

उत्तर-पूर्वी भारत की जन संस्कृति में स्त्री मात्र को कपड़े बुनने के कार्य में पारंगत होना आवश्यक है। खेत-खलिहान के कार्य से छुट्टी पाने पर खामति स्त्रियां अपने-अपने घर के मचान के नीचे या बगल में करघे पर कपड़े बुनती हैं। खामति समाज में बाजार से कपड़े खरीदकर बहुत कम पहनते हैं। नाना रंग-बिरंग के कपड़े बुनने के कार्य में स्त्रियां पारंगत होती हैं।

खामति स्त्रियां वक्ष से पिंडली के नीचे तक काले रंग की 'सिन' (साड़ी) पहनती हैं और कटि को 'साई-सिन' नामक लाल तथा पीले रंग के फीते से कसकर बांधती हैं। स्त्रियां 'फा-हो' नामक चादर सिर पर बांधती हैं। 'सिन' के ऊपर एक 'लाङ्वात' नामक चादर कटि के नीचे बांधती हैं।

खामति पुरुष के बाल लम्बे होते हैं। सिक्खों की भांति जूड़ा बांधकर सिर पर पगड़ी बांधते हैं। एक अंगोछा अपने कन्धे पर अवश्य ही रखते हैं। जातीय वस्त्र न पहनने वालों को अछूत समझा जाता है। परम्परा अनुसार 'खेउ-यम-चि' (दांतों को रंगने का जातीय रंग) से दांत काले करने की प्रथा तो प्रायः जनजाति समाज में है। नागा लोग सफेद दांत वालों को राक्षस कहते हैं। काले दांत वाले वयोवृद्ध आज भी खामति समाज में हैं। आजकल की युवतियां चोली, ब्लाउज, चूड़ियां आदि बाजारू सामान भी पसन्द करती हैं। खामति पुरुष बर्मी पद्धति से लुंगी पहनते हैं।

खामतियों के कुछ महत्वपूर्ण वस्त्र भी हैं : 'पुचुङ्खिक्' यह पुरुष का निम्नांगीय

वस्त्र है। जो रंगीन होता है। यह खामतियों का उल्लेखनीय वस्त्र है। इसे बुनने का विशेष नियम है। बुनते समय पण्डित एक ओर बैठकर 'वस्त्र-शिल्पकला' की पुस्तक का पाठ करता है और बुनकर स्त्री नीतिपूर्वक बुनती है। 'याङ्फ्वङ्लाङ्' कन्धे से पैर तक का लम्बा वस्त्र। 'कुलुङ्ताङ्' कटि में पहनने का आभूषण। आदि खामतियों के वस्त्र हैं।

विवाह, जन्म और मृत-संस्कार पद्धतियां

अविवाहित व्यक्ति की जनजातीय समाज में कोई स्थिति नहीं होती है और उसको आधा जीव माना जाता है। ऐसा समाज नहीं ही होगा, जो कि विवाह प्रथा से बिलकुल शून्य हो। एक खामति कहावत में कहा भी है :

"आप नाम हौंउ चौंउ येन,
पेन हिन हौंउ चौंउ मान !"

(स्नान किया जाता है, स्वच्छ और आनन्द के लिए और विवाह करते हैं, मन को स्थिर रखने के लिए। यानी विवाह न करने तक पुरुष का मन स्थिर नहीं रहता है)।

खामति समाज में पुरुष अपने सगोत्र से पत्नी प्राप्त नहीं कर सकता है, अर्थात वहिर्विवाह अनिवार्य माना जाता है। जैसे, नामसुम उपाधि वाले नामसुम से विवाह नहीं कर सकते हैं, बल्कि—लुङ्किङ्, मानचे, मानपुङ्, मानपाङ्, इन्लिङ् आदि से कर सकते हैं। यदि किसी ने सगोत्रीय जाति से विवाह किया तो उसे कठोरतम दण्ड देते हैं। इतना ही नहीं उसे समाज-च्युत भी किया जाता है। समाज-च्युत होना महाअपराध समझा जाता है।

खामति समाज में बाल-विवाह प्रथा नहीं है, किन्तु विधवा-विवाह और बहु-विवाह प्रचलित है। बड़े भाई की मृत्यु के बाद भाभी को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर भाई की सन्तान को अपने बच्चे समझकर लालन-पालन करते हैं। खामतियों में बहु-विवाह का भी विशेष स्थान है। अतः, जो अधिक पत्नियों का स्वामी होता है, समाज उसका सम्मान करता है। किन्तु आधुनिक युग में योग्य और बुद्धिमान व्यक्ति सबसे बाद में विवाह करना तथा सबसे कम बच्चे पैदा करता है। जबकि बहु-पत्नी प्रथा में योग्य व्यक्ति अधिक बच्चे पैदा करने वाली पत्नी पसन्द करता था। क्षणिक यौन इच्छा से पीड़ित होने मात्र से किसी पुरुष और स्त्री को जीवन भर के लिए एक बन्धन में बांध देने में क्या तुक है ? किन्तु आदिम पुरुष विवाह को यौन सम्बन्ध के रूप में नहीं, बल्कि एक प्रकार के अधिक सहयोग के रूप में देखते हैं। पुरुष चाहता है कि स्त्री उपयोगी और कामकाजी हो, न कि सुन्दर एवं आकर्षक। हालांकि वह स्त्री के इन गुणों की प्रशंसा करता है। एक खामति कहावत में कहा है :

"फिसी ती आउ साउ हिुन्लेउ,
हौंउ आउ खा हिुन्लाई !"

(दरिद्र/आलसी परिवार की लड़की को घर-वधू करने के बजाय खानदानी घराने में पली हुई दासी पुत्री से विवाह करना अच्छा है। कारण वह काम-काजी और परिश्रमी होती है)।

नारी चरित्र की व्याख्या 'लाका-वात-स्वन-कोन'[1] नामक खामति पोथी में भी है। खामति पुरुष किसी भी जाति से कन्या से शादी कर सकता है। इस सम्बन्ध में एक लोकोक्ति है :

"मित खाउ पेक तुक, माई क: मान ला अक।"

(शस्य का बीज जैसे स्थान/जमीन में गिरने पर भी वह लहलहाता है, और पुरुष भी किसी भी जाति की स्त्री के साथ विवाह कर अपने वंश की वृद्धि कर सकता है)।

खामति समाज नारी की धान-खेत से तुलना करते हैं। इनके समाज में खामति भिन्न जाति की कन्या से विवाह करने में कोई रोक नहीं है। अन्य जनजाति समाज की भांति खामतियों में भी 99 प्रतिशत प्रेम-विवाह ही होते हैं। प्रेम-विवाह में युवक-युवतियों का एक दूसरे पर आकर्षित होने में निर्भर करता है। बौद्ध परम्परा से भी कहीं-कहीं 'लोङ्साउ' अथवा 'हेत-हिुन' (विवाह) करते हैं।

विवाह की तिथि निर्धारित करने के पश्चात लड़की के कुटुम्बियों को रुपये आदि से खरीद कर अपना परिचय देते हैं। लड़की के बदले में 'च्वय्-अन' तथा 'च्वयलुङ्' धन लेने की प्रथा है। यदि वर मनपसन्द का हो तो उससे केवल नियम पालनार्थ कुछ ही रुपये लेते हैं। इस प्रकार लड़की के बदले में रुपये, सामग्रियां आदि लेने और देने की प्रथा असम की प्राय: जनजाति समाज में है। मिसिङ् (मिरि), देउरी, कछारी आदि मैदानी इलाके की जातियों में तो यह अति प्रसिद्ध प्रथा है। अरुणाचल, नागालैण्ड की जनजातियों में लड़की के बदले में 'मेथुन' (भैंस जैसा पहाड़ी जानवर), गाय, भैंस, सुअर, मुर्गे बदले में लिए जाते हैं।

मिसिङ् जनजाति समाज में निर्धन युवक को लड़की पाने के लिए ससुराल की सेवा करनी पड़ती है। खामतियों में भी यह प्रथा रही है। इस प्रथा को 'खिन्-खोई' कहा जाता है। ससुराल की सेवा कर पत्नी प्राप्त करने की प्रथा का उल्लेख 'जातकों' में भी है। 'महाउम्मग्ग' जातक में एक गोलकाल नामक बौने आदमी ने सात वर्ष किसी घर में काम करके भार्या प्राप्त की थी।[2]

जिस लड़की के लिए युवक ससुराल की सेवा करता है, उस लड़की से दूसरे

1. "लोका-वात-स्वन-कोन" की विषयवस्तु, इसी ग्रन्थ के पंचम अध्याय में द्रष्टव्य।
2. 'जातक', षष्ठ-खण्ड, पृ. 379।

युवक प्रेम नहीं कर सकते हैं। यदि किसी ने इसका उल्लंघन किया तो उसे उचित दण्ड दिया जाता है। इस दण्ड से प्राप्त रुपये या वस्तु, लड़की पाने हेतु सेवा करने वाले को प्राप्त होती है। साधारणत: यह दण्ड दुगुना लिया जाता है। दण्डित होने के भय से अन्य युवक उस लड़की से प्रेम नहीं करते हैं। इस प्रकार ससुराल की सेवा करते हुए युवक-युवती का एक साथ रहने से वे एक-दूसरे के प्रति स्नेह की रस्सी में बंध जाते हैं। युवक को ससुराल की सेवा पूरी करने पर बदले में रुपये नहीं दिए जाते हैं। इस प्रकार पत्नी पाने के लिए ससुराल की सेवा करने वालों को कभी-कभी धोखा भी खाना पड़ता है। लड़की सेवक लड़के को नहीं चाहती है, तो वह उसे नालायक कहकर शिकायत करती है। उस समय युवक के लिए परीक्षा की घड़ी उपस्थित होती है।

खामति युवक-युवतियों में प्रेम-वार्ता बचपन से ही चलती है। रात को जब गांव के लोग सो जाते हैं, तब युवक अपनी प्रेयसी के घर में मचान के नीचे, प्रेम का शिकार करने जाते हैं। मचान के नीचे से हाथ डालकर वह युवती के उरोजों का मर्दन कर उसे कामभाव जागृत करते हैं। युवक अपनी प्रेमिका की रक्षा में ही गांव की भी रखवाली करते हैं। मन से चाहने वाली प्रेमिका अपने प्रेमी को भोजन, रुपये, कपड़े आदि भी देती है। प्रत्यक्ष नहीं, बल्कि परोक्ष रूप से देती है। गृहस्थों के सो जाने पर प्रेमी घर के मचान के नीचे आकर आने की सूचना देता है। युवतियों के साथ युवकों का विनोद करना समाज का एक अंग माना जाता है। एक खामति कहावत में कहा भी है :

"मो माचाई हाई अचेन, भाउ मालिन साउ असु।"

('मो'/भाप से भात पकाने का पात्र, यदि कुछ टेढ़ा न हो तो ढक्कन ठीक नहीं बैठता है, और युवतियों को भी यदि युवक विनोदपूर्ण बातें न करें तो वह आसक्त नहीं होती हैं)।

खामतियों में लड़की के बदले में रुपये, सामग्री लेने की प्रथा है। मामा की लड़की से शादी करने का पूर्ण अधिकार दिया जाता है।[1] बड़े भाई की मृत्यु के पश्चात भाभी का मालिक देवर ही होता है। यदि भाभी किसी दूसरे के यहां जाती है, तो उसके बदले में पूर्व का विवाह खर्च ले जाने वाले से अवश्य ही लिया जाता है। वह देने में असमर्थ रहा तो उसे "विधवा स्त्री का पिट्ठू" कहकर उसे निम्न श्रेणी में गिराते हैं, अथवा उसे जाति-च्युत किया जाता है। अन्यथा स्त्री का मालिक उसे जैसे भी चाहे लज्जित कर सकता है। विधवा स्त्री के बदले में नीतिपूर्वक रुपये चुकाने पर भाभी ले जाने वाला दोषी भी अपने भाई-बान्धव में गिना

---

6. 126 जातक, द्वि० खं० 'असिलक्खण जातक' में ममेरी बहन के साथ विवाह करने का वर्णन है।

जाता है। स्त्री से पुरुष का जन्म उत्तम समझा जाता है। कामकाजी स्त्री की कद्र होती है। अच्छे घराने की सुन्दर चरित्रवान युवती के सम्बन्ध में कहा जाता है :

"तोन माई निऐ नुक पान साउ,
साउ हिन निऐ माउ पान् खिन्।"

(अच्छे फल के वृक्ष में चिड़ियों का झुण्ड अधिक पड़ता है, क्योंकि वहां तृप्ति-दायक फल मिलते हैं और जिस घर में सुन्दर, चरित्रवान कन्या हो उस घर में नवयुवकों की भीड़ लगी रहती है)। और सुन्दर मुर्गी के साथ तुलना कर एक मुहावरा है :

"काई मे नी माउ हन तुक् कात,
साउ कुन नी माउ हन तुक ताङ्मान।"

(सुन्दर मुर्गी बाजार में बेची नहीं जाती है और चरित्रवान सुन्दर युवती का भी अपने गांव से दूसरे गांव का युवक मालिक नहीं हो सकता है। अर्थात् अन्य गांव वाले उससे विवाह नहीं कर सकते हैं)।

खामति युवक-युवतियों में प्रेम का सूत्रपात किसी उत्सव या धान-खेत के खलिहानों में होता है। एक-दूसरे की तुलना कर कहने पर भी वे विश्वास करते हैं। 'मो-खाम'/'खाम-पालि' (विरह-गीत) के माध्यम से भी युवक-युवतियों के बीच प्रेम का सूत्रपात होता है। ये विरह-गीत एक-दूसरे को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए तुरन्त बना कर गाये जाते हैं। इन गीतों के प्रभाव में आने से ही तो युवक-युवतियां धधकती हुई प्रेमाग्नि में कूद पड़ते हैं। गांव से कुछ दूर जाकर रात को युवक इन्हीं 'मो-खाम' गीतों को गाकर जाड़ा भगाता है। बिस्तर पर सोई हुई युवती गीत सुनकर ही अपने प्रेमी की वाणी को पहचान लेती है। ये 'मो-खाम' युवक-युवतियों के बीच डाकिये का काम करती है। जो गा नहीं सकता है, वह लड़कियों को रिझा नहीं सकता है और युवतियों को आनन्द भी नहीं दे सकता है।

बौद्ध-परम्परा में गर्भमंगल या प्रसूति के अवसर पर 'अंगुलिमाल सुत्त' का मंत्र के रूप में पाठ किया जाता है। यही परम्परा अरुणाचल प्रदेश के खामति समाज में भी मान्य है। 'अंगुलिमाल-सुत्त' का कुछ अंश निम्न है :

"यतोहं भगिनि! अरियाय जातिया जातो,
नाभिजानामि संचिच्च पाण जीविता वोरोपेता।
तेन सच्चेन सोत्थि ते होतु सोत्थि गब्भस्साति!"

(बहन! जब से मैंने आर्य जाति में जन्म लिया है, तब से मैं जान-बूझकर जीव-हिंसा करने की बात नहीं जानता हूं। उस सत्य-वचन से तुझे कल्याण हो और तेरे गर्भ का भी कल्याण हो)।

सन्तान लड़का हो तो जन्मने के पांच दिन बाद घर से बाहर निकाला जाता है और लड़की हो तो चार दिन के बाद। रविवार के दिन बाहर निकालने पर सुबह

पूर्व दिशा की ओर सूर्य का दर्शन कराया जाता है। बाहर नवजात शिशु के हाथ में दाउ, बन्दूक, ग्रन्थ आदि पकड़वाया जाता है और लड़की को स्त्री के कपड़े, आभूषण स्पर्श कराया जाता है।

'माच्चा' (जन्म-कुण्डली) लिखवाकर बच्चों का नामकरण किया जाता है। ऐसे तो मां-बाप भी बच्चे का नामकरण कर सकते हैं। प्रायः पुरुष नाम के आगे 'चाउ' और स्त्री नाम के आगे 'नाङ्' जोड़ा जाता है। साधारणतः शिशु जन्मने के छह महीने के बाद अन्न-प्राशन का नियम है। शुभ तिथि निर्धारित कर अन्न-प्राशन कराते हैं। या अर्ध-रात्रि के समय सभी के सो जाने के बाद बच्चे की मां शिशु को भात खिलाती है। शिशु के दो या चार या छह महीने के होने पर केश-मुण्डन कराते हैं।

खामतियों में भी लड़के का जन्मना उत्तम माना जाता है। आज भी विवाह के अवसर पर वर-वधू को आशीर्वाद देते हुए कहा जाता है :

"लेइङ् लुक् हौं पिन् पाचाई,
लेइङ् खाई हौ पिन् तो-मे !"

(सन्तान पैदा हो तो पुरुष ही हो और पशु। (भैंस) पड़िया जन्म दे तो वंश में वृद्धि होगी)।

प्रत्येक खामति गांव के किसी निर्णीत स्थान में 'साङ् खेङ्' (श्मशान) रहता है। साधारण तौर पर श्मशान का गांव के पश्चिम दिशा में रहना अच्छा माना जाता है। मृत-संस्कार के सम्बन्ध में खामति भाषा में एक 'लोका-सामुक्थी' (लोक सुमुक्ति/समाधि)[1]नामक पोथी है। इस पोथी में 99 प्रकार की नीतियों का विवरण है। खामति लोग मृतक को श्मशान ले जाते समय रास्ते में भात फेंकते हुए जाते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि प्रतीक्षा में बैठे हुए भूत-प्रेत, अमंगल उसे खाते हैं और यह भी माना जाता है कि जंगली पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़ों के खाने से पुण्य प्राप्त होता है। श्मशान में शव को जलाने से पूर्व चिता में रखकर भिक्षु संघ अनित्य गाथा पालि में पाठ करता है :

"अनिच्चा वत संखारा उप्पदवयधम्मिनो।
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति तेसं वूपसमो सुखो ॥" (तीन बार।)

(सभी संस्कार अनित्य हैं। उत्पन्न होना और नाश होना उसका स्वभाव है। उत्पाद एवं निरोध निरन्तर होता रहता है। इस परिवर्तनशील संस्कार से मुक्त (निर्वाण) होना ही परम सुख है)।

बौद्ध समाज में मृतक को जलाने की प्रथा है किन्तु असमय में मरे हुए मृतक को कब्र में दफनाने की प्रथा भी है। जलाने के बाद मृतक के सम्बन्धी लोग जलकर

1. 'लोका-सामुक्थी' सम्बन्धी परिचय के लिए देखिए इसी ग्रन्थ के पंचम अध्याय में।

भस्म होने से बची हुई हड्डियां बटोरकर एक मिट्टी के घड़े में रखते हैं और उस अस्थि-कलश को विधिपूर्वक गड्ढे में दफनाकर एक काष्ट प्रतीक 'लाक्-फाई' (अग्नि प्रतीक-स्तम्भ) बनाते हैं। उसके बाद चारों ओर से बांस का टट्टर बनाकर सुरक्षित रखते हैं। यदि भिक्षु हो तो ईंट या पत्थर का स्तूप भी बनाते हैं। श्मशान में कपड़ों के चार ध्वज भी लटकाते हैं। मृतक के सम्बन्धी लोगों द्वारा एकचित्त होकर सात दिन तक भिक्षु-संघ को आहार दान, पंचशील ग्रहण, धर्मदेशना श्रवण आदि धर्म सम्बन्धी नाना विधि-विधान प्रचलित हैं। अन्तिम दिन विशेष रूप से भिक्षु-संघ को आमन्त्रित कर मृतक को श्रद्धापूर्वक पिण्ड-दान करने से पूर्व 'मरण स्मृति-पत्र' पाठ करते हैं। इस प्रकार 'मरण स्मृति-पत्र' पाठ करने के बाद 'चाउचेले' (पाठक) के नेतृत्व में सब लोग भिक्षु से मरणशील संसार की नीति के सम्बन्ध में धर्म-देशना श्रवण करते हैं। भिक्षु प्रायः जातक की कथा सुनाते हैं। अन्त में चाउचेले भी वसुन्धरा देवी को साक्षी कर अनित्य संसार सम्बन्धी बात अपनी भाषा में स्वर से गाकर सुनाता है।

बौद्धों में पुनर्जन्म पर अटूट विश्वास है। सारी जातक कथाएँ इसी पर आधारित हैं। खामतियों में ऐसा विश्वास किया जाता है कि—"सात दिन तक मृत-आत्मा इसी पृथ्वी में अज्ञात रूप से विचरण करती है। सात दिन तक वह अशुद्ध रहती है। सात दिन पूर्ण होने पर इस लोक के कर्मफल अनुसार वह पटिसंधि ग्रहण करता है। इसीलिए सात दिन में ही मृत-आत्मा को पिण्ड-दान दिया जाता है। यदि सात दिन बीत गए तो 'हेत-स्वम' (श्राद्ध-कर्म) करने पर भी उससे कोई पुण्य-फल मिलने की आशा नहीं करते हैं!"

यदि मरते हुए किसी ने नहीं देखा तो उसके लिए भी श्राद्ध-कर्म नहीं किया जाता है। इस प्रकार के मृतक आजीवन इस पृथ्वी पर प्रेत बनकर रहते हैं। वह उसके आत्मीय जनों को कष्ट देता है। इसलिए किसी के बीमार पड़ने पर उसके सम्बन्धियों को पास में रहना परम आवश्यक है।

खामति समाज के सर्वमान्य व्यक्ति 'चाउमुन' (भिक्षु) की मृत्यु होने पर 'प्वय-लेङ्' (रथोत्सव) मनाया जाता है। सात दिवसीय श्राद्ध-कर्म कर 'चुङ्' (ताबुद) में मृतक शव को रखकर 'च्वङ् निपान' (निब्बान-विहार) में रखा जाता है। धान, चावल आदि अर्थ संग्रह कर भिक्षु का 'प्वय-लेङ्' मनाते हैं। भिक्षु के 'प्वय-लेङ्' में सभी लोग सहायता करते हैं। इस उत्सव के लिए छह पहिए का बड़ा रथ बनाया जाता है। भिक्षु के 'प्वय-लेङ्' में अधिक-से-अधिक संख्या में लोग जमा होते हैं। यदि किसी ने सात बार 'प्वय-लेङ्' में भाग लिया हो तो उसे निर्वाण के पथ में यम-दूत अधिक प्रश्न नहीं करते हैं और यह भी विश्वास किया जाता है कि आर्यमैत्रेय बुद्ध से अगले जन्म में भेंट हो सकती है।

'प्वय-लेङ्' खींचने में पुरुष और स्त्रियों में प्रतियोगिता होती है। रस्सी

पकड़कर एक ओर स्त्रियां खींचती हैं और दूसरी ओर पुरुष। भविष्य मंगलार्थे स्त्री पक्ष को जीतने दिया जाता है। कभी-कभी लोग रथ के नीचे दबकर मर भी जाते हैं। इस प्रकार मरने वाले को सुगति प्राप्त होने का विश्वास किया जाता है। रथ के ऊपर भिक्षु और श्रामणेर धर्मगाथाओं का उच्चारण करते हैं। इस अवसर पर बड़े-बड़े नगाड़े एवं झांझ बजाए जाते हैं। 'प्वय-लेङ्' खींचने का उत्सव साधारणतः दो या तीन दिन तक रहता है। तीन दिन के बाद ताबुद सहित रथ को जला दिया जाता है। बाद में भिक्षु की अस्थियों का संग्रह कर 'साङ्-थात' (समाधि) अथवा 'क्वङ् मु' (स्तूप) बनाया जाता है। स्तूप में समय-समय पर दीया आदि जलाकर पूजा भी करते हैं।

परम्परागत वार्षिक उत्सव

साङ्-क्येन।

'साङ् क्येन' शब्द 'संक्रान्ति' का अपभ्रंश है। यह नये साल के आगमन का स्वागत उत्सव है। यह उत्सव प्रत्येक साल वैशाख संक्रान्ति के दिन मनाया जाता है। 'साङ् क्येन' उत्सव के पन्द्रह-बीस दिन पूर्व से ही खामति युवक-युवतियां संध्या किसी के घर में जमा होकर 'लिक साङ् क्येन' (साङ् क्येन स्तुति गाथा) मुखाग्र करते हैं। इन गाथाओं को उत्सव के दिन स्वर-से-स्वर मिलाकर गाते हैं। इन गाथाओं की रचना खामति 'चाउ-मो' (कवि) करते हैं। 'साङ् क्येन' स्तुति गाथाओं के कुछ नाम इस प्रकार हैं—लिक स्वन सिया (भिक्षु के प्रति वन्दना), लिक नेन नाउ (चन्द्र-सूर्य वन्दना), लिक स्वङ् ख्वन (नमस्कार पद्धति वन्दना), लिक मोहिङ् (हजार कमल-वन्दना) ; लिक लासि (राशि-नक्षत्र वन्दना), लिक हिङ्-हाङ् हाङ् (साङ् क्येन आगमन वन्दना), लिक हिङ् क्येव (पारिजात पुरुष वन्दना), लिक नाङ् वेन (नाङ् वेन अप्सरा वन्दना), लिक स्वन पुथि खाम (बोधि-वृक्ष वन्दना), लिक लिङ् नेङ् (अरुणोदय वन्दना), लिक स्वन-तेक (धर्मशास्त्र वन्दना), लिक लु सिमि (प्रदीप वन्दना), लिक स्वन मे (मातृ वन्दना) और लिक सुत्वङ् (प्रार्थना)।

उत्सव के एक सप्ताह पूर्व दो या ढाई फुट लम्बे बांस का 'लोङ् कोङ्' बहुत ही कारीगरिक ढंग से बनाते हैं। इसे 'क्यङ् फ्रा' में रखा जाता है। पानी डालने पर यह वृत्ताकार से घूमता है। प्रत्येक खामति गांव के बौद्ध विहार के प्रांगण में एक 'क्वङ् फ्रा' का होना आवश्यक रहता है। उत्सव के दिन विहार से बुद्ध मूर्तियां निकाल कर 'क्वङ् फ्रा' में रखते हैं। गांव की युवतियां फूलमाला से सजाती हैं। पानी डालने के लिए एक 'हाङ् लिन' (नौका) बनाया जाता है। ऐसा माना जाता है कि 'कुदेवता' नये वर्ष में एक बार पृथ्वी में प्रवेश करता है।

इस प्रकार बुद्ध मूर्ति को स्नान कराने से 'कुदेवता' का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

उत्सव के अवसर पर युवक-युवतियां अपने पितृ-मातृ को स्नान करवाते हैं और उनसे भविष्य जीवन मंगलार्थे आशीर्वाद लेते हैं। फिर मित्रों के साथ मिलकर स्नान के बाद पवित्र मन से बौद्ध विहार में जमा होते हैं। भिक्षु से शरण-शील ग्रहण कर परित्राण सुनते हैं। इस अवसर पर युवक-युवतियां मुखाग्र किए हुए 'लिक साङ् क्येन' गीत गाते हैं। वन्दना गीत गा-गाकर भिक्षु को स्नान कराया जाता है।

'क्यङ् फ्रा' में पानी डालते हुए युवक-युवतियां एक-दूसरे को पानी और कीचड़ डालकर आनन्द मनाते हैं और घरों में जाकर उत्सव भोज करते हैं। संध्या समय सब लोग विहार में जमा होकर प्रदीप जलाते हैं। दूसरे दिन पुन: 'स्वन्-फ्रा' (मूर्ति स्नान) करते हैं। वयोवृद्ध अन्न एवं पुष्प दान करते हैं। उत्सव के अन्तिम दिन भिक्षु के द्वारा मूर्ति को सुगन्धित जल से स्नान कराते हैं, तब मूर्ति को विहार में रखा जाता है। इस दिन युवक-युवतियां विशेष रूप से कीचड़ और कालिख से लथ-पथ होते हैं। कीचड़ अथवा कालिख लगाते समय युवक अपनी प्रेमिका के पास तक अवश्य ही जाता है। इस उत्सव में एक-दूसरे को कीचड़ गोबर तथा कालिख लगाने से इनके बीच प्रेम हो जाता है।

तिथि निर्धारित कर विशेष रूप से 'प्वय साङ् क्येन' करते हैं। 'प्वय्' या उत्सव के लिए गांव के प्रत्येक घर से चावल, शाक, सब्जी, रुपये आदि चन्दा लिया जाता है। इस दिन प्रत्येक घर से लोग वहां आते हैं। युवक-युवतियां मिलकर खाना पकाते हैं। वृद्धा माताएँ विहार में चढ़ाने के लिए सामग्री तैयार करती हैं। इस अवसर पर 'प्यापुङ्' (नाटक) भी खेला जाता है। दूसरे दिन सुबह गांव का 'चाउचेले' (पाठक) विहार में आहार्य सामग्री दान करता है। फिर प्राय: छह बजे से आठ बजे तक विहार में 'तिरत्न वन्दना' करते हैं। भिक्षु से शरण-शील ग्रहण कर परित्राण पाठ सुनते हैं। इस विधि को 'खाम-सिन-थम् त्रा' कहते हैं। अन्त में युवक-युवतियां 'मिमो' (कालिख) लगाकर विनोद करते हैं।

'प्वय-साङ् क्येन' के बाद यह उत्सव साल भर के लिए समाप्त होता है। खामतियों के उत्सवों में खाना और अन्य को खिलाना ही प्रमुख होता है। एक स्थान में जमा होकर खाने-खिलाने से इनमें एकता का भाव बहुत ही गहरा रहता है। अल्पसंख्यक खामति होने पर भी इनकी बौद्धसंस्कृति आज भी प्राणमय है।

माई को सुम फाई

माघ पूर्णिमा का 'माई कोसुम फाई' (काष्ट का ढेर बनाकर आग सुलगाना)

उत्सव खामतियों का प्रमुख त्योहार है। बर्मी भाषा में इस उत्सव को 'माई मि फुङ्' (बृहत काष्ट पुंज में आग सुलगाना) कहते हैं। और असमियां में 'माघ-बिहु', 'भोगाली-बिहु' अथवा 'भेजी-बिहु' कहते हैं।

उत्सव के कुछ दिन पूर्व ही विहार के अन्तेवासी बिहार के प्रांगण के खुले मैदान में लकड़ी, बांस, बेंत, घास-फूस आदि से बहुत ही आकर्षक ढंग से 'माई को सुम फाई' बनाते हैं। साधारणतः बांस जितने लम्बे हों उतना ही ऊंचा 'माई को सुम फाई' होता है। नीचे और ऊपर का भाग क्षीण होता है और मध्यांश मोटा होता है।

'माई को सुम फाई' में नाना रंग के कागज एवं पत्तों से फूल बनाकर सजाते हैं और ऊपर 'थि' (गुम्बद) चढ़ते हैं। 'माई को सुम फाई' प्रायः 30-35 फुट ऊंचा होता है। ऊपर के हिस्से का कार्य समाप्त होने के वाद, नीचे कदली बलकलों से बोधि-वृक्ष का एक काल्पनिक आकार-प्रकार बनाते हैं, जिसके नीचे भगवान को बुद्धत्व लाभ हुआ था। इसे 'पालाङ्' कहते हैं।

दिन भर नीति-पूर्वक सजाने के बाद शाम को 'माई को सुम फाई' के नीचे गांव के लोग जमा होते हैं। फिर भिक्षु 'पालाङ्' के नीचे बैठकर धर्म देशना देते हैं। ऐसा माना जाता है कि 'माई को सुम फाई' जलाने पर जाड़ा समाप्त होता है। सारी रात गांव के युवक-बच्चे 'माई को सुम फाई' के पास ढोल आदि वाद्यों को बजाकर आनन्द मनाते हैं। पौ फटने पर इसे जलाया जाता है; यदि नदी पास हो तो लोग नदी में स्नान कर 'माई को सुम फाई' की आग तापते हैं।

इस उत्सव में तिल, उड़द, चावल, आलू, मछली आदि मिलाकर खिचड़ी पकाते हैं। इस आहार को 'खाउ नाम पा' कहते हैं। यह 'माई को सुम फाई' का प्रमुख आहार है। खामतियों के उत्सव-पर्वों में खाद्य वस्तु बनाकर सर्व प्रथम विहार में दान करते हैं। 'माई को सुम फाई' उत्सव में भी 'खाउ नाम पा' पका-कर पहले गांव के विहार में दान करते हैं। उत्सव के दिन सुबह विहार में 'खाउ नाम पा' दान पहुंचाने वाली स्त्रियों की भीड़ रहती है। अपने घर में जो कुछ पकाया जाता है, उसे पत्तों की पोटलियों में बांध कर सभी कुटुम्बों के घर पहुंचाते हैं। इस उत्सव के दिन एक-दूसरे का पकाया हुआ 'खाउ नाम पा' खाते हैं।

अपने घर में खा-पी लेने के बाद, नये-नये वस्त्र पहनकर एक गांव से दूसरे गांव में अपने सम्बन्धियों से मिलने जाते हैं। गांव के वयोवृद्ध लोग धर्म श्रवण के लिए विहार में जाते हैं। गांव का 'चाउचेले' (पाठक) धर्म पोथी पाठ करता है। खामति स्त्रियां पवित्र मन से धर्मशास्त्र का श्रवण करती हैं, जिस प्रकार हिन्दू स्त्रियां पुराणशास्त्रों का पवित्र मन से श्रवण करती हैं।

लिन सि त्वप्वङ्

'लिन सि त्वप्वङ्' उत्सव हर साल फागुन पूर्णिमा में प्रत्येक खामति गांवों के विहारों में मनाया जाता है। जिस साल फागुन पूर्णिमा बुधवार को पड़ती है, उस साल यह उत्सव विशेष रूप से मनाया जाता है। पूर्णिमा के पहले दिन टोकरी, बाल्टी लेकर सभी लोग विहार में एकत्र होते हैं और स्तूप निर्माण के लिए स्थानीय नदी तट से टोकरी, बाल्टी भर-भर के बालू लाते हैं तथा अपनी इच्छा अनुसार छोटे-छोटे असंख्य बालू के स्तूप बनाते हैं। ऐसे तो धर्मस्कन्ध के लिए चौरासी हजार स्तूप बनाने का नियम है। इस साल फागुन पूर्णिमा में चौखाम विहार प्रांगण में चौरासी हजार बालू और पत्थर के स्तूप बनाकर दान किया गया। उन स्तूपों को नाना प्रकार के फूल-पाती, 'चाकु-तान-ख्वन' से सजाते हैं और शाम को सात बजे के बाद मोमबत्ती जलाकर धर्मगाथा गाते हुए वन्दना करते हैं। भिक्षु से तिशरण-पंचशील याचना कर परित्राण पाठ सुनते हैं। परित्राण पाठ के बाद गांव का 'चाउचेले' (पाठक) वसुन्धरा देवी को साक्षी कर इस 'लिन सि-त्वप्वङ्' में स्तूप बनाकर दान करने के पुण्य प्रभाव से लोक-मंगल की कामना करता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि "फागुन पूर्णिमा में इस प्रकार स्तूप बनाकर दान करने पर अगले जन्म में सुफल मिल सकता है।" सभी लोग 'निक्पान सुत्वङ्' (निर्वाण की कामना) करते हैं। त्रिरत्न वन्दना के बाद भिक्षु को चीवर, पच्चय आदि दान करते हैं। इस उत्सव को 'लु-क्वङ् मु'/'प्वय-क्वङ्मु' भी कहा जाता है।

इस 'लिन सि त्वप्वङ्' उत्सव का पारम्परिक सम्बन्ध महाराज धर्माशोक से है। धर्माशोक ने धर्म स्कन्धों के पूजन हेतु 'चाम्पुतिक्' (जम्बुद्वीप) में चौरासी हजार धर्म-स्तूपों का निर्माण कराया था।[1] उसी के स्मरण में आज भी खामति लोग इस पर्व को बड़े उत्साह के साथ मनाते हैं। बालू के स्तूप तो अस्थायी एवं क्षणिक होते हैं, किन्तु यह परम्परा 23 सौ वर्ष पुराने इतिहास का साक्षी देता है।

खाउ वा, पोत वा

'खाउ वा' (खाउ—प्रवेश, आरम्भ; वा—वस्सा) का अर्थ है 'वस्सावास' (वर्षावास) का आरम्भ और 'पोत वा' (पोत—समाप्ति; वा—वस्सा) का अर्थ है

1. राजा ने पूछा—"बुद्ध के दिए गए उपदेश कितने हैं ?" मोग्गलिपुत्ततिस्स थेर ने उत्तर दिया, "धर्म के चौरासी हजार स्कन्ध हैं" (चुतुरासीतिधम्मक्खन्धा. महावंसो, गाथा 78)। सुनकर राजा ने कहा—"मैं प्रत्येक के लिए विहार बनवाकर सब की पूजा करूंगा" (पूजेमि तेहं पच्चेकं विहारेना, महावंसो, गाथा 78)। तदनन्तर राजा ने छियानवे करोड़ देकर, जम्बुद्वीप के चौरासी हजार नगरों में वहां वहां के राजा से विहार बनवाने आरंभ किए और स्वयं भी अशोकाराम बनवाना आरंभ किया (महावंसो, गाथा 79-80)।

'वस्सावास की समाप्ति'। इसे 'अक-वा' भी कहा जाता है। वस्सावास की अवधि को 'नेउवा' कहा जाता है और वस्सावास के मध्य को 'काङ् वा'। 'वा' शब्द पालि 'वस्सा' का संक्षेप है। पालि विनय पिटक, महावग्ग के 'वस्सूपनयिक-खन्ध' में भिक्षुओं के वस्सावास सम्बन्धी ऐतिहासिक विवरण प्राप्त होता है। यहां उसका परिचय देना आवश्यक नहीं है। खामतियों के यहां पारम्परिक वास्सावास कैसे होता है? उसका परिचय इस परिच्छेद में दिया जाएगा।

आषाढ़-पूर्णिमा से आश्विन पूर्णिमा तक की अवधि को वस्सावास कहा जाता है। वस्सावास के दो-चार दिन पहले ही गांव के सभी लोग विहार का परिवेण साफ करते हैं। कहीं टूटा-फूटा हो तो उसे ठीक करते हैं। गांव के विहार में यदि भिक्षु या श्रामणेर न हो तो किसी दूसरे गांव से तीन महीना वस्सावास के लिए निमन्त्रण कर लाते हैं। श्रामणेर सभी धार्मिक कार्य संचालन करने में पारंगत नहीं होता है, इसीलिए भिक्षु का होना आवश्यक माना जाता है।

श्रद्धालु वयोवृद्ध उपासक लोग गांव से कुछ दूर जंगल के पास नदी तट पर वस्सावास में उपोसथ के लिए छोटी-छोटी कुटियां बनाते हैं। और वहीं उपोसथ के दिन ध्यान-भावना करते हैं। वस्सावास के बीच खामति गांवों में विवाह तथा अन्य मनोरंजक उत्सवादि करना मना है। इस बीच भिक्षु या श्रामणेर चीवर त्यागकर गृहस्थ भी नहीं हो सकता है। वयोवृद्ध (वृद्धाएं) धार्मिक लोग वस्सा-वास के तीन महीने विहार परिवेण में रहकर अष्टांगशील का पालन कर उपोसथ व्रत करते हैं। गृहस्थों के लिए अष्टमी का दिन उपोसथ दिवस है। वे अष्टमी, पूर्णिमा और अमावस्या को, एक महीने में चार 'साताङ्' (तिथियों) में अष्टांग-शील ग्रहण कर उपोसथ-व्रत करते हैं। उपोसथ के दिन अष्टांगशील धारियों को विहार परिवेण की कुटियों में रहना होता है। इन कुटियों को 'चलप' कहते हैं। स्त्री और पुरुष के 'चलप' अलग-अलग होते हैं। चौखाम गांव के विहार परिवेण में गृहस्थों के उपोसथ व्रत करने के तीन बड़े-बड़े 'चलप' आश्रम हैं। जब चलप खाली रहते हैं, तब दूर से आए हुए नागा, मिस्मी, नेपाली आदि, अतिथि इन्हीं 'चलपों' में रहते हैं। सभी 'चलप' आश्रम लकड़ी की बल्लियों पर मचान बांधकर निर्माण किए गए हैं। स्त्रियों के 'चलप' को बांस के टट्टर से चारों ओर से घेरा गया है और पुरुष 'चलप' खुले हैं।

उपोसथ के दिन भिक्षु से अष्टांगशील ग्रहण कर सभी लोग दिन भर धर्म-पोथी पाठ कर सुनते हैं। भिक्षु से भी धर्म-देशना श्रवण करते हैं। पूरे वस्सावास के तीन महीने में इन्हें 12 उपोसथ व्रतों का पालन करना होता है। विहार के भिक्षु या श्रामणेरों को इस बीच व्यस्त रहना होता है। उन्हें 'त्रा'/'ताला' (धर्मदेशना) मुखाग्र कर धर्म सभा में प्रवचन देना होता है। मुखाग्र न हो तो विजनी का आड़ लेकर 'त्रा' पाठ करते हैं। ये 'त्रा' खामति भाषा में होते हैं। 'त्रा' की कथावस्तु

धार्मिक होती है। इनकी रचना 'चाउमो' (कवि) करते हैं। विज्ञ भिक्षु अभिधम्म देशना भी करते हैं, किन्तु लोग 'जातक' कथा सुनना पसन्द करते हैं।

चौखाम गांव में वस्सावास के तीन महीने 45 स्त्रियां और 32 पुरुष अष्टमी, पूर्णिमा एवं अमावस्या तिथियों में, अष्टांगशील ग्रहण कर विहार परिवेण की 'चलप' (आश्रमों) में रहते हैं। ये अष्टांगशील धारी विकाल भोजन से विरत रहते हैं। उनके लिए दोपहर का भोजन अपने-अपने घर से स्त्रियां/लड़कियां 'फेन' नामक पात्र में डालकर बड़े आदर के साथ 'फेन' को सिर में उठाकर विहार परि-वेण 'चलप' आश्रमों में लाती हैं। भोजन करने से पहले अष्टांगशील धारी लोग त्रिरत्न की पूजा कर वसुन्धरी देवी को जल चढ़ाकर, मैत्री भावना करते हैं। फिर भोजन कर लेने के बाद विहार में धर्मचर्चा करते हैं। 'चाउचेले' (पाठक) खामति भाषा में धर्मपोथी पाठ करता है। शाम को भिक्षु से पुनः अष्टांगशील ग्रहण कर रात को चलप/आश्रमों में रहते हैं। सुबह विहार में त्रिरत्न पूजा के बाद अष्टांगशील परित्याग कर भिक्षु से पंचशील ग्रहण कर अपने-अपने घर चले जाते हैं।

वस्सावास के बीच की प्रमुख-प्रमुख—खाउ-वा, चाली, मेपी, पोत-वा आदि तिथियों में बड़ी संख्या में लोग विहार में आते हैं। लोग विहार में खाद्यनीय, भोजनीय वस्तुएं दान करते हैं। विहार में 'पाङ्ना' के ऊंचे आसन पर भिक्षु, श्रामणेर बैठते हैं। दसशील/अष्टांगशील उपोसथशील धारी पुरुष पहली पंक्ति में बैठते हैं, दूसरी पंक्ति में या बगल में पंचशील ग्रहण करने वाले पुरुष बैठते हैं। तीसरी पंक्ति या बीच में अष्टांगशीलधारी वृद्धाएं बैठती हैं। उसके बाद विवा-हिता स्त्रियां बैठती हैं। फिर अविवाहिता युवतियां अन्तिम पंक्ति में बैठती हैं। पंचशील ग्रहण के बाद प्रायः लोग चले जाते हैं। केवल उपोसथशील पालन करने वाले विहार में रह जाते हैं। वे भिक्षु, श्रामणेरों से धर्म श्रवण करते हैं। लोग त्रिरत्न पूजा के लिए अपने साथ फूल, अक्षत, मोमबत्ती और धूप लाते हैं।

उपोसथ के दिन खामति लोग खेत में हल जोतने, फात्रड़ा चलाने, कोदाल खोदने आदि काम नहीं करते हैं, कारण जमीन खोदने पर जमीन के नीचे रहने वाले प्राणी की हत्या हो जाती है, इसीलिए उस दिन प्राणी हिंसा से विरत रहते हैं। गांव की युवतियां वस्सावास के बीच हर रोज़ शाम को विहार में फूल दान करती हैं। वे खामति भाषा में 'सुिखे-फ्रा' के साथ-साथ आजकल पालि में वन्दना, गाथा आदि का भी अभ्यास करती हैं। वस्सावास के तीन महीने सभी के लिए अत्यधिक उपयोगी हैं। तीन महीना वस्सावास के बीच के सभी पूर्णिमा एवं अमावस्याओं का धार्मिक महत्व है।

वस्सावास के बीच 'चालि' (मधु-पूर्णिमा) एवं 'मेपि' के उपोसथ व्रत अति पवित्र माने जाते हैं। 'चालि' पर्व में विशेष कर धान, चावल, कन्द-मूल-फल और

मधु दान करते हैं। यह परम्परा भगवान बुद्ध के समय से चली आ रही मानते हैं—जब तथागत बुद्ध संघ में गड़बड़ी के कारण पारिलेय्य वन में चले गए थे, तब उन्हें वन्य पशु-पक्षियों ने मधु, कच्चे फल दान किये थे। इसी के स्मरण में आज भी खामति लोग इस दान को बहुत ही महत्व देते हैं। विहार के भिक्षु इस 'चालि' व्रत में प्राप्त धान, चावल आदि बेचकर विहार का खर्च चलाते हैं। वस्सावास के बीच भिक्षु तथा श्रामणेरों को पर्याप्त मात्रा में खाद्य-भोज्य वस्तुएं प्राप्त होती हैं।

'चालि' के बाद अमावस्या में 'मेपि' उपोसथ पर्व का भी खामति समाज में महत्व है। इसी समय भगवान बुद्ध ने वैशाली में 'रतन-सुत्त' का उपदेश दिया था। जिसके प्रभाव से लोग संकट से मुक्त हुए थे। कहा जाता है कि इस दिन नदी का पानी 'नाम-न्वङ् सेङ्' बनकर जाता है, इसलिए अरुणोदय से पूर्व नदी में स्नान करने पर शरीर से व्याधियां दूर हो जाती हैं। ऐसा भी माना जाता है कि 'नाम-न्वङ् सेङ्' के छिड़कने पर मृत प्राणी भी जीवित होता है। 'मेपि' के अवसर पर विहार के अन्तेवासी 'पुई' नामक जंगली पौधे से 'फङ्' बनाते हैं। प्रायः 'फङ्' घर के आकार में होते हैं। इन्हें नाना प्रकार के रंगीन कागजों से सजाते हैं। सुबह नहाने जाते समय, दीया-बाती, धूप जला कर रोग व्याधि को भगाने के लिए नदी में प्रवाहित कर देते हैं। फिर स्नान कर अपने शरीर से अमंगल दूर भगाते हैं।

वस्सावास की समाप्ति को 'अक् वा' अथवा 'पोत वा' कहा जाता है। इस समय सभी गांव के लोग एक-दूसरे से मिलने के लिए धर्म-गाथा गाते हुए युवक-युवतियां, स्त्री-बच्चे सभी दल-बल के साथ दूसरे गांव में मिलने जाते हैं। इसे 'पान्चवङ्' कहा जाता है। दूसरे गांव पहुंचकर गांव के विहार की तीन बार प्रदक्षिणा कर फूल-अक्षत से पूजा करते हैं। तब विहार प्रांगण में बैठकर विहार के भिक्षु को यथाशक्ति दान देते हैं। सुख-समृद्धि, दीर्घ-जीवन की मंगलकामना कर भिक्षु से आशीर्वाद लेते हैं। भिक्षु पालि गाथा उच्चारण कर आशीर्वाद देते हैं :

> "अभिवादनसीलिस्स निच्चं वद्धापचायिनो,
> चत्तारो धम्म वड्ढन्ति आयुवण्णो सुखं बलं।"

> (जो अभिवादनशील है जो सदा वृद्धों की सेवा करने वाला है, उसकी चार बातें बढ़ती हैं—आयु, वर्ण, सुख और बल)।

वस्सावास की समाप्ति के बाद कठिन चीवर दान का भी खामति समाज में महत्व है। ऐसी मान्यता है कि "सिद्धार्थ के जन्म के एक सप्ताह बाद महामाया देवी की मृत्यु हो गई और वह तावतिंसदेवलोक में देवता हुई। उन्हें ज्ञात हुआ कि सिद्धार्थ प्रव्रजित होने वाले हैं, तो महामाया देवी ने सारी रात परिश्रम कर सूत, कताई, बुनाई, रंगाई, सिलाई आदि का सम्पूर्ण कार्य, एक ही रात में चीवर तैयार कर दूसरे दिन सुबह देवदूत के द्वारा बोधिसत्व के लिए चीवर भेजा था।' इसीलिए

आज भी खामति स्त्रियां एक ही दिन में चीवर का कपड़ा बुनकर—रंगाई, सिलाई आदि कर कठिन चीवर तैयार कर दान करती हैं। कठिन चीवर दान पर्व को अति पवित्र मानते हैं। कठिन चीवर तैयार करने वाली स्त्रियों को अष्टांगशील का पालन करना होता है। इस समय स्त्रियां 'खाभ तो काथिङ्' नामक धर्मगाथा गाती हैं। कठिन चीवर से सम्बन्धित 'काथिनानिसाङ् सा' नामक धर्म पोथी का भी पाठ किया जाता है। धर्म पोथी पाठ के आधार पर बुनकर स्त्रियां करघे को चलाती हैं। इस प्रकार एक ही दिन में चीवर तैयार कर भिक्षु को कठिन चीवर दान देने की प्रथा को खामति समाज में अति पवित्र माना जाता है। इस पर्व को 'प्वय-काथिङ्' कहा जाता है। पवारणा के बाद, कठिन चीवर प्राप्त कर भिक्षु जहां कहीं भी भ्रमण के लिए जा सकते हैं।

वस्सावास की समाप्ति पर 'यापुङ्'/'प्याचात' (धर्म नाटक), विहार के प्रांगण में प्रदर्शित किया जाता है। संभव रहा तो 'तुन-तातेसा' (कल्परुक्ख) भी बनाकर दान करते हैं। प्रस्तुत शोधकर्ता को कई एक वस्सावास का पारम्परिक कार्य संचालन का सम्पूर्ण भार खामित गांवों के विहारों में करना पड़ा है।

अन्यान्य धार्मिक पर्वोत्सव

खामसाङ्

'खामसाङ्' (प्रव्रज्या) उत्सव खामतियों का प्रमुख धर्म उत्सव है, इस उत्सव का सम्बन्ध महाराज अशोक के छोटे भाई तिष्य कुमार से है। इसका वृत्तान्त 'सिलि थाम्मासोका सासाना ताङ् थाम' (श्री धर्माशोक का अनुशासन) नामक खामति भाषा की पोथी में निम्न प्रकार से है:

'चाउ तिक्सा कुङ् मा (श्री तिष्य कुमार) महाराज अशोक के छोटे भाई थे। वह एक बार मृगया के लिए गंगा नदी के तट पर जा पहुंचे। गंगा के दोआबे में मृगों का झुण्ड आनन्द-विनोद कर रहा था। मृग झुण्ड को देखकर तिष्य कुमार ने भिक्षु संघ की निन्दा की कि—"मेरे भाई का भिक्षु संघ भी इसी प्रकार आनन्द में निश्चिन्त रहता है।" मृगया से लौटने के बाद एक श्रद्धावान मन्त्री ने महाराज अशोक से उनके भाई की शिकायत की।

महाराज अशोक ने अपने भाई को समझाने के लिए तिष्य कुमार को एक सप्ताह तक राजसिंहासन पर बैठकर देश में सुशासन करने को कहा और यह भी कहा कि—"एक सप्ताह के बाद उसे मृत्यु दण्ड भी दिया जाएगा।" महाराज ने तिष्य कुमार को राज-काज सौंप दिया और राजा स्वयं उसकी गतिविधि देखते रहे। तिष्य कुमार को क्या राज्य-सुख मिलता, वह तो मृत्यु-दण्ड पाने के शोक में दिन गिनते ही रह गया। कुमार दुर्बल हो गया। उसे चिन्ता ही बनी रहती थी।

खाना, पीना, सोना सब कुछ छूट गया। इस प्रकार सप्ताह बीत गया।

महाराज अशोक जब सप्ताह पूर्ण हुआ, तब तिष्य के पास आए और भाई की स्थिति से परिचित हुए। तिष्य कुमार ने सारी बातें बतलाईं—सप्ताह भर में क्या बीती! तब महाराज अशोक ने कहा—"तुमने भिक्षुओं की मृग से तुलना की थी और उनका मजाक उड़ाया था। वे तो हमेशा मरण स्मृति—अनित्य, दु:ख और अनात्म की भावना करते रहते हैं और तुमने एक सप्ताह में ही मृत्युदण्ड से घबरा कर खाना, पीना, सोना तक छोड़ दिया और दुर्बल हो गए! वे भिक्षु कैसे महान हैं? और तुम···!"

महाराज की बातें सुनकर तिष्य कुमार बहुत ही प्रभावित हुआ और उसी समय महाराज से भिक्षु होने की आज्ञा मांगी। महाराज चाहते भी यही थे। महाराज की आज्ञा हुई कि तिष्य कुमार को सभी प्रकार के राजकीय पोशाक पहना कर आदर दिया जाए। देशवासियों ने बड़े ही धूमधाम के साथ तिष्य कुमार का सम्मान किया। सौ प्रकार के खाद्य पदार्थों से कुमार का सत्कार किया गया। इसे खामति भाषा में 'पाक मिआचा हो खाम' कहा जाता है। लोगों ने एक सप्ताह तक कुमार को बुला-बुलाकर भोजन कराया। फिर भिक्षुसंघ ने उसे प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा दी।

इसी कथा के चलते आज भी अरुणाचल के थेरवादी (खामति, सिङ् फो) समाज में यह रिवाज है कि भिक्षु या श्रामणेर दीक्षा लेने से पहले, दो या तीन दिन तक 'साङ् आल्वङ्' (श्रामणेर बोधिसत्व) बनाकर सारे गांव में निमन्त्रण कर भोजन कराते हैं। विहार से 'साङ् आल्वङ्' को ले जाने के लिए गांव की स्त्रियों का झुण्ड आता है। इस प्रकार दीक्षित होने से पूर्व भोजन कराने की प्रथा खामति समाज में अति लोकप्रिय है।

'खामसाङ्' उत्सव के अवसर पर धर्मदायक घर के आंगन में 'सिङ्-मानताप' निर्माण करता है। मण्डप के चारों कोने में धन-कुंभ, जमीन के नीचे गाड़कर रखने की प्रथा है। ये धन-कुंभा बांस के चोंगे होते हैं। ऊपर एक छिद्र रहता है। उसमें उत्सव में आए हुए लोग यथा-शक्ति धन दान गुप्त रूप से करते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि जब तथागत बुद्ध पहली बार अपने गांव गए थे, तब यशोधरा ने बुद्ध से राहुल को पितृ-धन मांगने के लिए भेजा था। बुद्ध ने राहुल को 'बिहार में जाने पर मिल सकता है,' कहकर ले गए और उसे प्रव्रज्या दे दी। कहा जाता है कि सिद्धार्थ ने अपने राजभवन में इस प्रकार धन-कुंभ रखा था। इन धन-कुंभों को 'मो उन ङ नखाम' कहा जाता है। लोग इसलिए इस प्रकार के धन-कुंभ में दान देकर अगले जन्म के पुण्य का संचय करते हैं।

'मानताप' या मण्डप को लकड़ी की बल्लियों पर मचान बांधकर बनाते हैं। मण्डप में भिक्षु-संघ, बुद्ध-मूर्तियां, धर्म-पोथियां तथा अन्य दातव्य वस्तुएं रखी

जाती हैं। प्रव्रज्या प्रत्याशि 'साङ् आल्वङ्' को इसी मण्डप-गृह में रखते हैं। जन-साधारण के बैठने के लिए भी मण्डप होता है। ये मण्डप बांस, खरपतवार आदि से निर्मित होता है।

प्रव्रज्या प्रार्थी ग्यारह से सत्रह साल के बीच के होते हैं। कुछ साल पूर्व से ही इन्हें 'साङ् कापी' (कप्पियकारक) बनकर विहार के भिक्षु की सेवा करनी होती है। इस अवसर पर भिक्षु 'साङ् कापी' को बौद्ध धर्म की शिक्षा देते हैं। प्रव्रज्या दो प्रकार के होते हैं: 1. पाङ्ना खाम और 2. साङ् आल्वङ् खाम । 'पाङ्ना खाम' के लिए बहुत ही सरल नियम है। विहार में बुद्ध-मूर्ति के सम्मुख त्रिशरण एवं दसशील, विनय विधि से होता है। किन्तु 'साङ् आल्वङ् खाम' बड़े धूमधाम के साथ मनाया जाता है।

सुबह-शाम लोगों की भीड़ दातव्य वस्तुएं लेकर धर्मगाथा गाते हुए गांव के बीचों बीच घूमते हैं। शाम को 'साङ्आल्वङ्', दान की वस्तुएं पुनः 'चाउ आलु ताका' (धर्मदायक), के घर में पहुंचाते हैं। उत्सव समाप्त होने के बाद सभी दातव्य सामग्रियां भिक्षु संघ को सौंप देते हैं। संघ विनय के अनुसार सभी कार्यों का सम्पादन करते हैं। प्रथ दिन प्रव्रज्या प्रार्थी को सुबह स्नान करवाने के बाद 'नुङ् सेङ् सेप' नामक वस्त्र पहनाए जाते हैं। फिर उन्हें ढोल-वाद्य बजाते हुए आमन्त्रित घरों में भोजन के लिए ले जाया जाता है। घर पहुंचने पर फूल-अक्षत से पूजा करते हैं। युवतियां 'साङ्-आल्वङों' के पैर धो देती हैं और अपने आंचल से पैरों को पोंछती हैं। फिर घर के पूरब की ओर सजाए हुए आसन पर बिठाकर भोजन कराया जाता है। बिहार में रहते समय इन्हें पालिगाथा, वन्दना आदि रटाया जाता है। वे भोजन कर घर छोड़ने से पूर्व पालि में मंगलगाथा पाठ कर आशीर्वाद देते हैं।

'साङ्आल्वङ्' एक हाथ में रूमाल लिए हुए धीरे-धीरे चलते हैं। सभी 'साङ्-आल्वङ्' पंक्तिबद्ध होकर चलते हैं। आगे-पीछे लोगों की भीड़ होती है। वाद्यों की ध्वनि से गगन गूंज उठता है। 'साङ्आल्वङ्' के अंगरक्षक वस्त्र का एक कोना पकड़े हुए, छाता पकड़ कर साथ चलते हैं। अंगरक्षक उन्हें क्षण भर भी नहीं छोड़ सकते हैं। वे अकेले हों तो स्वर्ग की अप्सराएं उन्हें उड़ा ले जाएंगी। क्योंकि ये 'साङ् आल्वङ्' (बोधिसत्वों) बने हैं। एक ओर पंखा झलने वाले रहते हैं। गांव के जितने घर में कार्य-क्रम होता है, उसे समाप्त कर वे पुनः विहार में लौट जाते हैं। वहां उन्हें सजाए हुए स्थान में रखा जाता है और राजसी नियम से उनकी देख-रेख की जाती है। दूसरे दिन 'साङ् आल्वङ' को विशिष्ट राज-पोशाक पहनवाया जाता है। कार्यक्रम उक्त प्रकार से ही चलता है। तीसरे दिन 'साङ् आल्वङ्' को 'नुङ् खेङ् वाङ्' (चक्रवर्ती वस्त्र परिधान) बनाते हैं। विशेष राज-पोशाक पह-नाने से इनका महत्व अधिक हो जाता है। 'साङ् आल्वङों' के आने से पूर्व गांव

वाले सड़क को साफ करते हैं। गांव की गलियों के कूड़े-करवट फेंके जाते हैं।

दोपहर के बाद बांस से निर्मित 'चाङ्' (मचान) में बिठाकर गांव में घुमाते हैं। इस प्रकार जुलूस के साथ गांव में घुमाने की विधि को 'या-साङ् आल्वङ्' (या—प्रदर्शन, साङ्—श्रामणेर, आल्वङ्—बोधिसत्व अवतार) कहते हैं। दूर गांव से युवक-युवतियां भी इस धर्म-उत्सव में अंश ग्रहण कर पुण्य कमाने आते हैं। बांस से सजाए गए 'चाङ्' पर 'साङ् आल्वङों को बिठाकर लोग उन्हें कन्धे पर लेकर घुमाते हैं। एक 'चाङ्' पर एक ही 'साङ्-आल्वङ्' को बिठाते हैं। साधारणतः चार व्यक्ति ही उस 'चांङ्' को उठा सकते हैं, किन्तु गांव भर के लोग उसे कन्धे पर उठा कर पुण्यांश लेना चाहते हैं। पुण्य कमाने के लिए हर कोई इच्छुक होते हैं। इस अवसर पर युवक-युवतियां धर्मगाथाएं गाते हैं। धर्मगाथा गाने के लिए युवक-युवतियों के बीच प्रतिस्पर्धा चलती है। इस अवसर पर नाना धार्मिक उपमा देकर गाथा गाने की प्रथा है। प्रत्येक गाथा के अन्त में 'हेला······हेला ······!' ध्वनि कर आनन्द मनाते हैं। गांव वाले घर के पास धर्म जुलूस के आने पर श्रद्धा से रुपये आदि दान करते हैं। वह दान विहार के अन्तेवासियों में बांटा जाता है।

उत्सव के अन्तिम दिन प्रव्रज्या प्रार्थी 'साङ् आल्वङों' को पालि बौद्ध परम्परा से नाम रख देते हैं। मूल खामति नाम छूट जाता है। तब से ये साक्यपुत्तीया कहलाते हैं। भिक्षुसंघ विनय के अनुसार पालि में चीवर एवं प्रव्रज्या याचना करवाकर त्रिशरण एवं दसशील[1] देकर नाटकीय ढंग से 'साङ् खाम' (श्रामणेर) बनाते हैं। प्रव्रज्या के बाद जनसमूह के बीच नवदीक्षित श्रामणेर मार्ग व्यय के लिए पिण्डपात्र लेकर भिक्षा मांगते हैं। नये श्रामणेर पालि में 'भवतु सब्ब मंगलं······' गा कर आशीर्वाद देते हैं।

प्रव्रज्या के दूसरे दिन नव प्रव्रजित श्रामणेरों से धर्मदेशना सुनने के लिए बड़ी संख्या में गांव के लोग विहार में जमा होते हैं। श्रामणेर याद किए हुए करणीय-मेत्ता सुत्त, रतनसुत्त, महामंगलसुत्त पालि में पाठ कर सुनाते हैं। अन्त में खामति भाषा में 'त्रा' (देशना) भी पाठ किया जाता है। इस विधि को 'खाम सिन थ्वमन्ना (शील ग्रहण और धर्म श्रवण) कहा जाता है।

वस्सावास के तीन महीने (आषाढ़ी पूर्णिमा से आश्विनी पूर्णिमा तक) ही श्रामणेरों को चीवर लेकर दसशील का पालन कर रहना आवश्यक माना जाता है। बाकी नौ महीने गृही वस्त्र पहनते हैं। सुबह गांव वालों का दान दिया हुआ भात खाते हैं और रात को गांव में 'पुलिङ्' (धर्मपिता) के घर खाते हैं। स्थानीय

---

1. प्रव्रज्या याचना, त्रिशरण दसशील ग्रहण विधि के लिए देखिए प्रस्तुत लेखक की पुस्तक "अरुणाचल के बौद्ध विहारों में वन्दना और चर्चा विधि", चौखाम, अरुणाचल प्रदेश, 1977, पृ० 19-24।

गांव का लड़का हो तो अपने ही घर में रात का भोजन करता है। श्रामणेर किसी के घर का काम नहीं करता है। उससे काम करवाने पर घर वालों को पुण्यफल नहीं मिलता है। श्रामणेर रात को गृही के घर सो नहीं सकता है। उसे नियमित रूप से विहार में सोना होता है। सुबह-शाम विहार में वन्दना के बाद भिक्षु से शील ग्रहण करना होता है।

धर्मशास्त्र का अध्ययन करते हुए जब श्रामणेर बीस साल का होता है, तब उसे फिर उपसम्पदा दी जाती है। उपसम्पदा को खामति में 'खाम-चाउमुन' या 'खाम-चाउके' कहते हैं। संघ बर्मी लिपि के 'लिकखाम' (कम्मवाचा) को पाठकर उपसम्पदा देते हैं। नये भिक्षु को खामति में 'चाउके' कहते हैं। और भिक्षु को 'चाउ-मुन' कहते हैं। 'मुन' शब्द 'मुनि' से बना है और 'चाउ' (आदरणीय) उपसर्ग है। उपसम्पन्न होना श्रेष्ठ समझा जाता है। भिक्षु होकर मरने वाला निर्वाणगामी होता है। उपसम्पन्न होने पर भिक्खु पातिमोक्ख के 227 नियमों का पालन करना होता है।

तुन पातेसा

'तुन पातेसा' (तुन—वृक्ष, पातेसा—प्रदेश) खामतियों का प्रमुख एवं धार्मिक दानोत्सव है। पालि में इसके लिए 'कप्परुक्ख' अथवा 'कप्पतरु' शब्द आता है। यह काल्पनिक दिव्य, इच्छापूर्ति का वृक्ष होता है। बौद्ध परम्परा है कि जब भगवान बुद्ध तावतिंस देवलोक में अभिधर्म देशना आते थे तब इसी वृक्ष से वे भोजन ग्रहण करते थे। जो इच्छा हो वही इस वृक्ष में प्राप्त हो सकती है, किन्तु याचक को धार्मिक एवं निष्ठावान होना होता है। अन्यथा वह इस काल्पनिक वृक्ष से आहार प्राप्त नहीं कर सकता है। इसीलिए भविष्य जन्म में इस वृक्ष से इच्छा पूर्ति हेतु खामति लोग 'तुन पातेसा' दान देते हैं।

यह 'तुन पातेसा' बांस, बेंत, लकड़ी से नाना कागज एवं पत्तों के फूल से सजा कर शाखायुक्त सुन्दर वृक्ष बनाते हैं। 'तुन पातेसा' की चोटी पर एक लकड़ी का सुन्दर हंस बनाकर रखा जाता है। इस वृक्ष की शाखाओं पर इच्छा पूर्ति के लिए रूमाल, रुपये (नोट), तौलियां, पुस्तकें, आदि न जाने क्या-क्या लटकाते हैं। इस प्रकार दातव्य वस्तुओं से सजाकर, उसे कन्धे पर उठाकर गांव की गलियों में घुमाते हैं। श्रद्धावान लोग पुण्यार्जन के लिए और भी वस्तुएं 'तुन पातेसा' की शाखाओं में लटका देते हैं। लोग धर्मगाथा गा-गा कर 'तुन पातेसा' को कन्धे में लिए फिरते हैं। 'तुन पातेसा' की डालियां दातव्य वस्तुओं के भार से झुक जाती हैं। हर कोई बौद्ध उपासक/उपासिकाएं इसे कन्धे पर भार वहन कर पुण्यार्जन करता है। भीड़ के कारण गलियों में धूल उड़ जाती है। जुलूस के द्वारा इस प्रकार घुमाने की विधि को 'या तुन पातेसा' कहा जाता है। ढोल आदि वाद्यों से गगन गूंज उठता है।

इस प्रकार जितने दिन का कार्यक्रम रहता है, उतने दिन तक घुमाने के बाद 'तुन पातेसा' को वसुन्धरी देवी को साक्षी कर भिक्षु संघ को दान करते हैं। दान में प्राप्त वस्तुएं संघ के बीच बांट लेते हैं। 'तुन पातेसा' दान उत्सव के लिए कोई निर्धारित तिथि नहीं होती है। तीन महीना वस्सावास के बाद 'पवारणा' उत्सव पर या वैशाखी पूर्णिमा में अथवा किसी बड़े दान उत्सव में 'तुन पातेसा' बनाकर दान करते हैं।

लु फ्रा

'लु फ्रा' (लु—दान, फ्रा—बुद्ध मूर्ति) उत्सव खामतियों का अति पवित्र धार्मिक उत्सव है। 'लु फ्रा' उत्सव के लिए कोई निश्चित समय नहीं होता है। तीन महीना 'वस्सावास' (आषाढ़ी पूर्णिमा से आश्विनी पूर्णिमा) को छोड़कर अन्य किसी भी समय में मूर्ति दानोत्सव करते हैं। प्रायः पूर्णिमा तथा अमावस्या को ही पवित्र तिथि मानते हैं।

'लु फ्रा' उत्सव दो प्रकार के होते हैं, 1. व्यक्तिगत तथा 2. सामूहिक। व्यक्तिगत उत्सव एक ही परिवार के लोग अपने कल्याण के लिए मूर्ति दान करते हैं। व्यक्तिगत रूप से करने पर भी गांव के सभी लोग इसमें सहायता करते हैं और सामूहिक 'लु फ्रा' उत्सव में तो सारे इलाके के लोग जमा होकर भाग लेते हैं। सभी लोग दातव्य वस्तुएं लेकर उत्सव में आते हैं।

घर के प्रमुख वयोवृद्ध की मृत्यु होने पर भी सात दिन का श्राद्ध समाप्त कर मूर्ति दान करते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस प्रकार मूर्ति दान करने पर मृतक को सुगति प्राप्त होती है। यदि कोई दाता समर्थ हो तो एक ही साथ तीन प्रकार का दान, 1. लु फ्रा (बुद्ध-मूर्ति दान), 2. लु त्रा (धर्म-पोथी दान) और 3. लु साङ्खा (प्रव्रज्या अथवा उपसम्पदा) करना अति उत्तम मानते हैं। यदि किसी गांव में एक ही साथ त्रिरत्न दानोत्सव का आयोजन किया जाता है तो लोग बड़ी संख्या में जमा होते हैं। किसी भी धार्मिक कार्य में स्त्रियां ही अधिक अग्रसर होती हैं।

व्यक्तिगत 'लु फ्रा' उत्सव के अवसर पर, दायक के घर के आंगन में 'सिङ्मानताप' (धर्म मण्डप) निर्माण करते हैं और यदि सामूहिक उत्सव हो तो विहार के प्रांगण अथवा किसी खुले मैदन में 'सिङ् मानताप' बनाते हैं। 'सिङ् मानताप' के चारों ओर फूल पाती से सजाया जाता है। मूर्ति, धर्म पोथी तथा अन्य दातव्य वस्तुएं 'सङ् मानताप' में रखी जाती हैं। आर्य भिक्षु संघ को भी 'सिङ् मानताप' में बिठाते हैं।

नियमानुसार बुद्ध मूर्ति को बांस से निर्मित 'चाङ्' (मचान) में रखकर गांव की गलियों में घुमाते हैं। इस प्रकार जुलूस के साथ गांव में घुमाने की विधि

को 'या फ्रा' (या—प्रदर्शन, फ्रा—बुद्ध) कहते हैं। दूर गांवों से युवक-युवतियां इस 'लु फ्रा' उत्सव में भाग लेने आते हैं। सभी लोग धर्म-गाथा गाते हुए बुद्ध मूर्ति को कन्धे में भार वहन करते हैं। धर्म-गाथा गाने के लिए लोगों के बीच प्रतियोगिता जैसी होती है। इस प्रकार 'या फ्रा' कर गांव की गलियों में घुमाने पर गांव से व्याधियां दूर होती हैं। श्रद्धासम्पन्न लोग तो अपने घर में जुलूस को निमंत्रण करते हैं। शक्ति अनुसार दान भी करते हैं। इस अवसर पर दान की हुई वस्तुएं भिक्षु संघ अपने व्यवहार के लिए आपस में बांट लेते हैं।

'या फ्रा' करने के बाद बुद्ध मूर्ति को 'सिङ् मानताप' में रखा जाता है। फिर विज्ञ भिक्षु मूर्ति के नीचे या पीठ में छेद कर अष्टधातु रखते हैं। दूसरे दिन सूर्योदय से पूर्व भिक्षु संघ 'सिङ् मानताप' में एकत्र होते हैं और त्रिरत्न वन्दना, परित्राण पाठ कर पटिच्चसमुप्पाद को अनुलोम पटिलोम पाठ करते हैं और धम्मपद की 'अनेकजाति संसारं···।'[1] गाथा पाठ करते हैं। इस प्रकार पाठ करने की विधि को 'आनिक्चा ताङ्' कहा जाता है। 'आनिक्चा ताङ्' करने के बाद बुद्ध मूर्ति को पवित्र तथा गुणसम्पन्न समझा जाता है। फिर शाम को धर्म-गाथा गाते हुए लोग मूर्ति सहित सभी दातव्य वस्तुएं विहार में लाकर भिक्षु संघ को सौंप देते हैं। भिक्षु मूर्ति को 'पाङ्ना' (विहार में मूर्ति रखने का स्थान) में सजा कर रखते हैं। इस अवसर पर व्यक्तिगत रूप से मूर्ति दान करने वाले उपासक को 'फ्रा ताका' (फ्रा—बुद्ध, ताका—दायक) की उपाधि देते हैं। बाद में वह 'फ्राताका' के नाम से ही जाना जाता है।

इस प्रकार उत्सव में दान की हुई असंख्य बुद्ध मूर्तियां खामति गांव के विहारों में रखी जाती हैं। 'ङाचाङ्' (हाथी दांत), 'सेङ् नाउ' (संगमरमर) लकड़ी, सीसे, पीतल आदि की मूर्तियां विहारों में मिलती हैं। संगमरमर की मूर्तियां बर्मी शैली की होती हैं, कारण खामतियों का बर्मा के साथ धार्मिक सम्पर्क बहुत पहले से रहा है। बर्मी धर्म मिशन इनके बीच सहायक के रूप में कार्य करता रहा है। लकड़ी एवं हाथी दांत की मूर्तियां स्वयं खामति शिल्पी बनाते हैं। ये खामति शैली की होती हैं।

विहार की मूर्तियों का टूटना-फूटना अमंगल समझा जाता है। विहारों में अधिक मूर्तियां जमा होने पर विहार प्रांगण में 'क्वङ्मु' (चैत्य) निर्माण कर पुरानी मूर्तियों को उसमें रख देते हैं। प्रायः पुराने खामति गांव के विहार प्रांगण में चैत्य नजर आते हैं। आवश्यक नहीं है कि चैत्य ईंट एवं पत्थर का ही हो—मिट्टी का भी चैत्य बनाते हैं। फटी-पुरानी धर्म-पोथी तथा पुरानी बुद्ध मूर्तियां चैत्यों में दफ़ना देते हैं। लकड़ी की मूर्तियां तथा धर्म-पोथी तो नष्ट हो जाती हैं, किन्तु

1. वही पृ० 25।

पत्थर एवं धातु की मूर्तियां तो आज भी पुराने विहारों की खुदाई करने पर मिल सकती हैं। चौखाम विहार के श्री शीलवंश महाथेर ने एक बड़ा स्तूप निर्माण कर सारी पुरानी धर्म-पोथी तथा मूर्तियों को स्तूप के गर्भ में रख दिया है। मानलुङ् विहार में भी बहुत-सी मूर्तियां जमा हुई हैं, उन्हें भी स्तूप बनाकर रखने की योजना बन रही है।

लु मोहिङ्

'लु मोहिङ्' (हजार कमल दान) उत्सव का वर्णन 'लिक चाउ साङ् मोले' एवं 'लिक चाउ साङ् मेतले' नामक दो पोथियों में है। इन पोथियों के विषय वस्तु के आधार पर 'मोहिङ्' उत्सव पर प्रकाश डाला जाएगा।

"श्रीलंका के सिद्ध चाउसाङ् मोले को एक श्रद्धावान उपासक ने एक कमल का फूल दान किया था। उस फूल को रखने के लिए चाउसाङ् मोले को कहीं उपयुक्त स्थान न मिला, तो वह पवित्र स्थान में अर्चना के लिए देवपुरी पहुंचे और उसे चैत्य-चूड़ामणि में चढ़ा दिया। खामतियों में ऐसा विश्वास किया जाता है कि 'साङ् मोले' ने जम्बुद्वीप लौटकर वहां के उपासकों से कमल दान के महत्व पर प्रकाश डाला तो लोगों ने बड़े ही धूम-धाम से इस हजार कमल दान उत्सव में योगदान दिया।" इसीलिए अरुणाचल के बौद्धों में यह उत्सव आज भी मनाया जाता है। इस उत्सव पर बड़ी संख्या में लोग जमा होते हैं और दान कर पुण्य कमाते हैं। 'लु मोहिङ्' उत्सव के अवसर पर पद्म-सरोवर खोदकर बड़े समारोह के साथ भिक्षु-संघ को दान देने की प्रथा है। इस प्रकार का सरोवर लाथाओ गांव के विहार-परिवेश में है। इस सरोवर में एक हजार पद्म-पुष्प लगाए गए हैं।

'लु मोहिङ्' उत्सव के अवसर पर 'चाउ वेसान्त्रा' (वेसन्तर जातक) का खामति भाषा में आद्योपान्त पाठ किया जाता है। लोग ध्यान से कथा को सुनते हैं। सम्पूर्ण वेसन्तर जातक को एक ही दिन में पढ़कर समाप्त करने का नियम है।

जन-विश्वास

तन्त्र-मन्त्र

खामति लोग बौद्ध धर्मावलम्बी होने पर भी तन्त्र-मन्त्रों में विश्वास करते हैं। जादूमन्त्र, टोने-टोटके सम्बन्धी साहित्य भी खामति भाषा में उपलब्ध होता है। मन्त्र को 'मानतान' कहते हैं। यह 'मन्त्र-तन्त्र' का अपभ्रंश है। मन्त्र सम्बन्धी साहित्य गृहस्थों के यहां प्राप्त होते हैं। विहार में मन्त्र सम्बन्धी पोथियां नहीं रखते हैं। गांव के भिक्षु पालि गाथाओं को भी मन्त्र के रूप में व्यवहार करते हैं। उनमें

प्रमुख हैं—अंगुलिमाल सुत्त, मोरपरित्त[1] आदि। सिवली महाथेर पर बहुत ही विश्वास करते हैं। सिवली महाथेर का सचित्र ताबीज बनाकर अपने पास रखते हैं। 'त्रिरत्न' का उच्चारण कर भी मन्त्र के रूप में प्रयोग करते हैं। 'नाङ् सुलासाती' (सरस्वती) सम्बन्धी मन्त्र से 'मोहनी मन्त्र' करते हैं। जैसे, अपसन्द स्त्री को पसन्द करना आदि। कभी-कभी तन्त्र-मन्त्र की भी पूजा करते हैं। यह पूजा अपने घर में करते हैं।

'चाउ-मो' (कवि) बनने के लिए 'नाङ् सुलासाती' (सरस्वती) की पूजा करते हैं। सरस्वती पूजा सम्बन्धी विशेष विधियां हैं। स्त्री के सभी प्रकार के स्वच्छ वस्त्राभूषण पूजा की वेदी में रखे जाते हैं और बहुत प्रकार का भोजन कटोरी में परोस कर वेदी में रखा जाता है। वन्दना, प्रार्थना के बाद प्रार्थी को सभी भोजन खा लेना होता है, उसमें से कणभर भी फेंका नहीं जाता है। लोटे के जल को बारी-बारी से पीना होता है। इस प्रकार कवि होने के लिए सात दिन तक पूजा की जाती है। इस बीच प्रार्थी के मन में जो भाव या विचार आए, उसे लिख लेते हैं। लिखा हुआ पढ़कर गा सकते हैं किन्तु यत्र-तत्र बोलना और गाना निषिद्ध है। यदि प्रव्रजित प्रार्थी हो तो बुद्धमूर्ति के सम्मुख विहार में पूजा करता है और उपासक हो तो वेदी का निर्माण कर सरस्वती की पूजा करते हैं।

खामतियों में मन्त्र-वाण मारने वाला/वाली डाइन 'प्विुस्विु' पर अत्यधिक विश्वास किया जाता है। डाइन या 'प्विुस्विु' समझे जाने वाले को घृणित दृष्टि से देखा जाता है। वैसे लोगों को गांव में रहने नहीं देते हैं। ये डाइन मन्त्र-शक्ति से अपने रूप को बदलकर रात्रि में घूमते हैं और मौका मिलने पर किसी आदमी पर अपने मन्त्र-शक्ति का प्रयोग करते हैं। रात में डाइन कुत्ता, बिल्ली, सुअर या अन्य किसी जन्तु का रूप धारण कर गांव में विचरण करते हैं। यदि कोई गांव में बीमार पड़ता है तो लोग डाइन समझे जाने वाले/वाली व्यक्ति पर शंका करते हैं। यह डाइन प्रथा एक प्रकार का अन्धविश्वास है। किन्तु सभी आदिम जाति समाज में यह मान्यता है। ये लोग जंगलों में रहते हैं, भयावह वन्य-जन्तुओं से नहीं डरते, किन्तु डाइन से बहुत डरते हैं। किसका मन्त्र श्रेष्ठ है? कौन किसे पराजित कर सकता है? इस सम्बन्ध में एक मन्त्र का उदाहरण देना भी आवश्यक है:

"फा···ऊङ्!
मानतान हाउ ऐ, मानतान लुङ्!
मानतान कालुङ् पाउ नाका!
मानतान सिक्या चाउ उला!
मानतान उला चाउ खुन ङु!

1. वही पृ० 25-44।

मानतान हाउ तुपे हिन हाम !
मानतान फि यम पे स्वङ् फिङ् !
मानतान स्वङ् फि मतक कसाली !
मानतान लुसि लिम काला !
मानतान कुलिया आन चेत !
मानतान चाङ्फेत माउ फानथ्वय !
मानतान आउङो मो आउ पिलु !
आलु थाम्माता पिनमा याउले !
आलु थाम्माता पिनमा याउला !"

भावार्थ : "फा···ओम् !
हमारा मन्त्र बड़ा मन्त्र है !
गरुड़ द्वारा नाग पर मारने का मन्त्र !
इन्द्र का मन्त्र नागराजा को पराजित करता हूं !
यह मन्त्र उन्हीं लोगों का है !
हुलो बन्दर का मन्त्र बिज्जू (कबर-बिज्जू) को जीतता है !
दुर्बल भूत का मन्त्र अफ़ीम और मद्य को जीतता है !
अफ़ीम एवं मद्य का मन्त्र मटक कछारी को जीतता है !
मछुए का मन्त्र बंगाली को पराजित करता है !
मन्त्रों में उत्तम मुसलमानों का मन्त्र है !
मिथ्यावादी लोग झूठे मन्त्र करते हैं !
मूर्ख लोग भाभी को पाने का मन्त्र करते हैं !
यह हमारा नियम हो गया है !
यही हमारा रिवाज है !"

खामतियों में 'मान चाङ्मा' नामक मंगल-अमंगल मन्त्र गणना व्यवहार में लाया जाता है। 'मान चाङ्मा' की मन्त्र-पट्टियां बांस से बनाई जाती हैं। साधारणतः ये पट्टियां आठ इंच लम्बी और एक इंच चौड़ी होती हैं। पट्टियों के एक ओर मन्त्र लिखा रहता है। उन मन्त्र-पट्टियों को पढ़ने पर मंगल-अमंगल का पता लग सकता है। बहुत सारी मन्त्र-पट्टियां एक साथ थैली में मिलाकर रखी जाती हैं। उन्हें बिना देखे ही बीच में से एक पट्टी खींचकर पढ़ते हैं। जो उस पट्टी में लिखा रहता है, उसे ही सत्य माना जाता है।

'मान चाङ् मा' मन्त्र की पट्टी बनाने के लिए बांस को श्मशान से प्राप्त करना होता है। अर्थात् अर्थी का बांस। मृतक व्यक्ति की मृत्यु मंगलवार या शनिवार होनी चाहिए। बांस तरुण मृतक की अर्थी से प्राप्त हो तो अच्छा समझा जाता है। वृद्ध मृतक के श्मशान से नहीं लिया जाता है। स्त्री-पुरुष उभय की अर्थियों

से बांस व्यावहृत होता है। इस प्रकार के 'मान चाङ् मा' मन्त्र-गणना का प्रयोग खामतियों में आज भी होता है। गांवों में 'मान चाङ् मा' मन्त्र-गणना की पट्टियां पुराने लोग रखते हैं। कुछ मन्त्र-गणना पट्टियों के मन्त्र निम्न प्रकार हैं:

1. "तिनला तिन पान खा नाप !"
   (पैर भी ऐसे हैं, जो तलवार खोजते हैं।)—अशुभलक्षण।
2. "पा-काप खिुन लामथान माउ फान,
   तान आउ साउ पामी को नाई !"
   (मछली ताल वृक्ष पर चढ़ सकती है और निर्धन युवक भी संपन्न घर की लड़की पा सकता है।)—शुभलक्षण।
3. "या चाङ् पाई ताक नाम नाईपा क्रिम,
   तेम हाप नाईपा काङ् तिम हिन !"
   (पानी भरने में पारंगत वृद्धा, 'क्रिम' मछली मिलने पर पूरा भार होता है और 'काङ्' मछली मिलने पर घर पूर्ण होता है।)—शुभलक्षण।

हङ् खन

खामतियों में किसी के बीमार अथवा भयभीत होने पर 'हङ्खन' (हङ्—बुलाना; खन—आत्मा) विधि करते हैं। इसे 'खान्तोक' (आत्मा का भय से अलग होना) भी कहा जाता है। आत्मा बुलाने की पुस्तिका को 'पाप् हङ्खन' कहा जाता है। इसे विधिपूर्वक पाठ कर भटकी हुई आत्मा को बुलाया जाता है। उसका हिन्दी भावार्थ निम्न प्रकार है :

"यह प्राचीन काल की विधियां हैं। उसे मैं फिर कहता हूं। 'पुसिङ्फा' हमारे पूर्वज इसे मानते थे, 'या होला' ने इस विधि को अक्षुण्ण रखा है। उसी विधि को आज भी लोग मनाते हैं। यह 'हङ्खन' विधि छोटे-बड़े सभी के लिए आवश्यक है। उसे मैं करने जा रहा हूं। हमारे भांजे की आत्मा भटक गई है। वह दिन ब दिन दुर्बल होता जा रहा है। उसी को बुलाने के लिए मैं कदली, ईख आदि लाया हूं !"

"चूल्हे के त्रिकोण—पर-पितामह, आप चूल्हे के प्रमुख हैं। 'हाई-खाउ' (भात पकाने का पात्र), 'मोई' (लौकी का कलछुल), मछली, भात, पानी, कदली, ईख आदि सब कुछ प्रस्तुत हैं। उसी के साथ 'काङ्' (धनुष), 'लो' (निरनी करने का औजार), कुठार, कुदाल, हंसुआ, भाला, मछली फंसाने का औजार 'खुिक' (बांस से निर्मित 'जाकै'), ये सामग्रियां आपको दे रहा हूं। इन्हें लेकर आप भांजे की आत्मा को खोज लावें। जितनी दूर होने पर भी आप जाएं। कोने-कोप्चों को भी टटोलें। आत्मा के लाने पर वह बच्चा अपनी मां के साथ सकुशल रह सकता है। वह जीवन भर के लिए रोग-व्याधि से मुक्त हो !"

"हे त्रिकोण के पितामह ! आप अचल होकर जलती हुई आग की धधकती ज्वाला में राजा बने बैठे हैं। अब आप दूर देशों में जाकर खोई हुई आत्मा को खोज लाएं। शीघ्र ही आप जाएं ! यह आपके लिए हंसुआ और दाव (हथियार) हैं। आत्मा यदि कहीं विकट स्थान में पड़ी हो तो इन दोनों के सहारे खोजिए ! कहीं वन में घास के बीच हो तो हंसुए से वन को साफ कर उसे खोजें। जैसे भी हो साथ लेते आवें ! बिल में हो, गड्ढे में हो तो कुठार, कुदाल से काट, खोदकर ढूंढिएगा ! यदि पानी में हो तो इस 'जाकै' से खोजिए ! आप उसे मत छोड़िए ! इन्हें आप ले जाएं। अचानक न जाने दुर्भाग्य से आत्मा निकल गई है ! उसे आप पकड़ लाएं। दुर्गम से दुर्गम स्थान में रहने पर भी आप उसे न छोड़ें ! गड्ढे आदि अगम्य स्थान में रहने पर भी उसे संभाल कर घर लाएं ! चाहे पूरब हो या पश्चिम उत्तर हो या दक्षिण, दूर हो या पास हो ! 'फाताङ्फातो' (सागर की टापू) में होने पर वहां भी जाएं ! वाहन न मिलने पर तैर कर चले जाएं ! बहुत दूर है, ऐसा मत सोचिएगा ! आलस्य न करें। आत्मा का सन्धान करें ! यह बच्चा वृद्ध अवस्था तक जीवित रहें !"

"यदि बच्चे की आत्मा रास्ते में कहीं अटक गई हो तो आप इसी 'लो' से घास छीलकर खोज निकालें ! यदि वहां न मिली तो अन्यत्र सभी जगह ढूंढें ! जिसके लाने से बच्चा स्वस्थ हो जायेगा ! यह आत्मा खोजने का कार्य आपको सौंपा गया है।"

"आप खेत, खलिहान, नदी, नाले, गड्ढे, बिल तालाबों में खोजिए ! मिलने पर उसे पकड़कर रोगी के पास ला दीजिए। आत्मा के निकल जाने से यह बहुत परेशान है। इन स्थानों में न मिलने पर भूत, प्रेत, असुर, राक्षस, देवी-देवताओं के पास ढूंढ़ने जाएं। उस समय आवश्यकता पड़ने पर इस 'कार-फाई' (एक प्रकार का धनुष) और भाले को साथ लेकर आप जाएं। आत्मा नाना गुप्त स्थ.नों में रहती है। आपके मांगने पर नहीं दिया तो, उन्हें आप भाले से मार डालिए ! उन पर आक्रमण कीजिए ! वह आत्मा चुराने वाला डर के मारे उसे छोड़ कर भाग जाएगा, तब आप आत्मा को पकड़कर साथ लेते आइएगा !"

"यदि देवी-देवता के देश में न मिले तो आप और किसी दूसरे देश में जाएं ! कु-देवताओं का एक बाजार लगता है, वहां वे एक दूसरे की आत्मा का क्रय-विक्रय करते हैं, उस बाजार में आप जाएं ! यदि वे आत्मा को देना न चाहें तो इस छड़ी से उसे मारें ! यदि न दें तो बच्चों के खिलौने से उसे फुसलाकर आत्मा को प्राप्त करें !"

"यदि इन स्थानों में भी पता न लग पाया तो आप श्मशान में जाएं और वहां आत्मा की खोज करें और ऐसा प्रबन्ध करें कि स्वस्थ होकर रोगी की भटकी हुई आत्मा मछली, भात, पानी आदि खा सके ! फिर कदली, ईख—पहले की स्वा-

दिष्ट वस्तुएं भोजन कर पाए ! हे सिर में निवास करने वाली 30 प्रकार की आत्मा ! तुम अपने मालिक के पास रहो ! हे आतों और शरीर में निवास करने वाली 90 प्रकार की आत्मा ! तुम अपने मालिक के पास जीवन भर रहो ! आज से कभी छोड़कर दूर देश में न जाना ! इन भाई, बहन, बन्धु आदि के साथ मिल-जुल कर रहो ! हे जूड़ा (खोपा) में रहने वाली आत्मा ! तुम आकर अपना स्थान ग्रहण करो । सिर, पैर, आंख, कान, आदि शरीर के आत्माओ, तुम आओ ! इसी प्राणी के साथ रहो !"

"तुम्हारे रहने से मनुष्य को रोग व्याधि नहीं सताएंगे ! हे मनुष्य के 120 प्रकार की आत्माएं ! तुम इसी के साथ अनवरत रहो ! तुम्हारे रहने से इस प्राणी के सम्बन्धी—मां-बाप, भाई-बहन, इष्ट-मित्र सभी सुखी रहेंगे !"

अन्त में आत्मा को बुलाने वाला पाठक तीन बार 'चि···चुक्···!' कहकर यह मन्त्र जप समाप्त करता है ! ऐसी धारणा है कि यह 'हङ्खन' विधि का मन्त्र जप करने पर भटकी हुई आत्मा पुनः आती है ।

पाङ्सि मिुङ्

'पाङ्सि मिुङ्' पूजा खामति लोग अति प्राचीन काल से करते आ रहे हैं। धान फसल अच्छा होने और गांव में महामारी, अकाल एवं कुदेवता के प्रकोप इत्यादि से रक्षा पाने हेतु खामति लोग इसका पालन करते हैं । यह पूजा दो प्रकार की होती है—एक सामूहिक तथा दूसरी व्यक्तिगत किसी एक घर की । जो सामूहिक होती है उसे सभी गांव के लोग मिलकर किसी निर्धारित तिथि पर 'पाङ्सि मिुङ्' की पूजा करते हैं और जो व्यक्तिगत होती है, वह अपने खेत के आस-पास, पेड़ के नीचे किया जाता है। सामूहिक पूजा के लिए रुपये, चावल इत्यादि आवश्यक वस्तुओं का चन्दा उठाते हैं ।

वर्तमान पूजा स्थल पर कोई बलि आदि तो नहीं चढ़ाई जाती है, किन्तु देवता को प्रसन्न करने के लिए मांस, मछली आदि का चढ़ावा अवश्य ही लगाते हैं । हंस, मुर्गे, सुअर, हरिण आदि का मांस चढ़ाने का रिवाज है। इस पूजा में स्त्रियां अंश ग्रहण नहीं कर सकती हैं। पुरुष, बच्चे बड़े तादाद में जमा होते हैं। देवता को चढ़ावा देकर सभी लोग प्रसादी खाते हैं ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस भोज के अवसर पर यदि कौवे, दिखाई नहीं पड़े तो पूजा को असफल समझा जाता है और कौवों की संख्या अधिक दिखाई पड़ी तो पूजा सफल होने का दावा करते हैं और गांव के लोग अति प्रसन्न होते हैं ।

साधारणतः धान खेत की कटनी होने पर 'पाङ्सि मिुङ्' पूजा करते हैं । यदि किसी ग्रामीण ने इस पूजा में साथ नहीं दिया तो गांव में अनहोनी घटना, महामारी से लोगों की मृत्यु हो सकती है । 'पाङ्सि मिुङ्' के लिए साधारणतः गांव से कुछ

दूर खेत के पास, जंगल के बीच एक छोटी-सी झोपड़ी का निर्माण करते हैं। झोपड़ी के भीतर कुछ भी नहीं रहता है। चौखाम गांव का 'पाङ्सि मिुङ्' देवता का मन्दिर गांव से पश्चिम की ओर तेएङ् नदी तट पर, धान खेत के पास, जंगल के बीच है। खेरेम गांव का भी पश्चिम दिशा की ओर है।

इस 'पाङ्सि मिुङ्' देवता की पूजा प्रायः दो या तीन साल के भीतर करनी होती है। तीन साल से अधिक पीछे ले जा नहीं सकते हैं। अपने व्यक्तिगत गृह-मंगल के लिए भी कभी-कभी लोग 'पाङ्सि मिुङ्' पूजा करते हैं। गांव में हैजा, महामारी आदि का प्रकोप होने पर भी लोग एकत्रित होकर यह पूजा करते हैं। और जंगली जानवरों से रक्षा पाने के लिए भी 'पाङ्सि मिुङ्' पूजा करते हैं।

'पाङ्सि मिुङ्' पूजा करते समय खामति लोग पहले पशु बलि चढ़ाते थे, किन्तु वर्तमान उसके स्थान पर केवल पशु का चित्र या मूर्ति बनाकर नियम का पालन मात्र करते हैं। 'पाङ्सि मिुङ्' प्रथा केवल अरुणाचल के खामति गांवों में ही है, किन्तु डिब्रूगढ़ (असम) के खामति गांवों में यह प्रथा अब नहीं है। कुछ साल पूर्व तक बरखामति गांव के 'देव पुखुरी' के तट पर यह पूजा बड़े धूम-धाम से भैंसों की बलि चढ़ाकर होती थी।

मैं चौखाम गांव के 'पाङ्सि मिुङ्' पूजा मन्दिर में गया था, वहां अभी कुछ दिन पूर्व पूजा किया गया था। मन्दिर के भीतर नाना प्रकार के पशुओं के चित्र कागज से बनाकर भीत पर चिपकाए हुए थे। इससे प्रमाणित होता है कि खामति लोग पहले पशु बलि चढ़ाकर पूजा करते थे। खामति लोग बौद्ध मतावलम्बी हैं, किन्तु 'पाङ्सि मिुङ्' प्रथा धर्म परम्परा के अन्तर्गत नहीं आता है। इसमें भिक्षु या श्रामणेर अंश ग्रहण नहीं कर सकते हैं।

खामति बौद्ध परम्परा की रूपरेखा

खामतियों ने कब बौद्ध धर्म ग्रहण किया? इसका लिखित वृत्तान्त नहीं है। खामति भाषा की 'फा चाम्पु माङ् क्येम' नामक पोथी में उल्लेख है कि "भगवान बुद्ध ने अपने शिष्य 'चाम्पु' (जम्बु) भिक्षु को खामति (ताई) लोगों के बीच धर्म-देशना के लिए भेजा था। बाद में भगवान बुद्ध भी उनके यहां गए थे।[1] तभी से ये लोग बौद्ध हुए, ऐसा मानते हैं।" भगवान बुद्ध सम्बन्धी अनेक अलौकिक कथाएं इनके समाज में प्रचलित हैं। 'चाउ सिथात' (श्री सिद्धार्थ) नाम से एक बुद्ध की जीवन चरित पोथी भी खामति भाषा में उपलब्ध होती है। यशोधरा के पूर्व जन्म की कथाओं के आधार पर 'नाङ् यासो' नामक पोथी भी मिलती है।

1. 'फा चाम्पु माङ् क्येम' के सम्बन्ध में देखिए इसी ग्रन्थ के पंचम अध्याय में नाटक का विवरण।

भगवान बुद्ध के लिए खामति साहित्य में दो नाम प्रयुक्त होते हैं : (1) 'चाउ ता हे लुङ्'—चाउ--आदरणीय; ता—घाट; हे—नाव; लुङ्--बड़ा। अर्थात् "भव सागर को पार कर घाट पर ले जाने वाले।" और (2) 'वाङ् साम मिुङ्'—वाङ्-अधिपति; साम-—तीन; मिुङ्--देश। अर्थात् "तीन लोक के अधिपति, त्रिलोक-गुरु।"

खामति लोग बौद्ध धर्म को दो भागों में बांटते हैं: 1. 'तो नि' (थेरवाद) और 2. 'प्वय् क्यङ्' (महायान)। ये लोग अपने को 'तो नि' कहते हैं। खामतियों का बौद्ध धर्म बर्मा देशीय थेरवाद है। खामति लोग पालि को मूल बुद्ध वचन मानते हैं और तिपिटक को बुद्ध का उपदेश। खामति भाषा में पिटक साहित्य का अनुवाद हुआ है, किन्तु वह पूर्ण नहीं है। सारा साहित्य टीका एवं अनुटीकाओं की कथाओं पर आधारित है। साहित्य में त्रिशरण एवं पंचशील इन दो विषयों पर ही महत्व दिया गया है। ग्रन्थों के नाम तो पालि में ही होते हैं। जो सहज बोधगम्य हैं। ये सम्पूर्ण तिपिटक के अनुवाद नहीं हैं। हां, जातक कथाएं अवश्य ही कुछ मात्रा में हैं। अभिधम्म की विषय वस्तु को भी कहानी का रूप दिया गया है। उपासकों को विनय सम्बन्धी पोथी पढ़ना मना है। खामति बौद्ध धर्म परम्परा ने दूसरे आदिम जाति के लोगों को प्रभावित नहीं किया है, क्योंकि ये लोग अपने को अलग समझते रहे हैं।

भिक्षु के अभाव में डिब्रूगढ़ के खामतियों ने तो महापुरुष शंकरदेव के वैष्णव मत में भाजुली के आउनिआटी एवं दक्षिणपाट छत्र (मठ) में शरण भी ली थी। खामति राजा मनिराम गोहांई ने इस समय छत्राधिकार (मठाधिकार) को हाथी-दांत की चटाई भी भेंट स्वरूप दी थी और छत्राधिकार ने इसके विनिमय में शंकर-देव द्वारा रचित 'भागवत पुराण' (खण्ड 10) और राम सरस्वती द्वारा रचित 'महाभारत उद्योग पर्व' (जो सांची बलकल में लिखे गए हैं) दिया। ये ग्रन्थ आज भी खेराजखाट मौजादार के घर में सुरक्षित हैं। दीक्षा लेने के कुछ दिन बाद ही सदिया से भिक्षु आ पहुंचे तो ये पुनः बौद्ध धर्म को मानने लगे। बगिनदी (उत्तर लखीमपुर) एवं कठालगुड़ी (धेमाजी) के खामति अब सम्पूर्ण रूप से महापुरुष शंकरदेव के वैष्णव मत को ही मानते हैं, क्योंकि इनके यहां भिक्षु नहीं पहुंच पाए। वर्तमान अरुणाचल और असम में जितने भी खामति लोग हैं, वे सभी बौद्ध हैं। बुद्ध मूर्ति पर अत्यधिक विश्वास रखते हैं। इनके गांवों में समय-समय पर 'लु-फ्रा' (बुद्ध मूर्ति दान) उत्सव बड़े ही धूम-धाम से मनाया जाता है। इन दान उत्सवों के सम्बन्ध में उल्लेख कर चुके हैं।

खामतियों के प्रत्येक गांव में विहार का होना आवश्यक रहता है। विहार को 'च्वङ्' अथवा 'क्यङ्' कहते हैं और असमिया में 'बापु-साङ्' कहा जाता है। प्रायः खामति गांवों के विहार लकड़ी की बल्लियों पर मचान बांधकर बनाए जाते

हैं। विहार की छतें टीन की होती हैं। "जितने दूर तक विहार की छाया पहुंचती है, उतनी भूमि विहार की सीमा मानी जाती है।" विहार प्रायः गांव की पूर्व दिशा में बनाते हैं। कारण पूरब दिशा को पवित्र समझा जाता है। विहार में 'तान-ख्वन' ध्वज आदि लटका कर रखा जाता है। विहारों में जातक कथाओं के आधार पर चित्र भी नजर आते हैं, जिन्हें खामति चित्रकार बनाते हैं। चित्रों में जातीय शैली की झलक परिलक्षित होती है।

खामति गांवों में जितने भी धार्मिक उत्सव या सामाजिक पर्व होते हैं, वे सभी विहारों को केन्द्र कर मनाते हैं। भिक्षु ही धार्मिक-कार्य-संचालन का प्रमुख होता है। धार्मिक शिक्षा के लिए लोग अपने बच्चों को भिक्षु को सौंप देते हैं। भिक्षु की देख-रेख में बच्चे शिक्षा ग्रहण करते हैं। कुछ साल पहले तक तो खामति अक्षर एवं पालि के कुछ सूत्रों तक ही शिक्षा सीमित थी, किन्तु आजकल विहार के बच्चों को स्कूल की शिक्षा भी प्राप्त करनी होती है। भिक्षु विनय अनुसार 'पातिमोक्ख' के नियमों का पालन करते हैं। धर्म शिक्षा के लिए उत्साही भिक्षु बर्मा, श्रीलंका, थाईलैण्ड आदि थेरवादी देशों में जाते हैं। नालन्दा से भी कुछ भिक्षुओं ने पालि की ऊँची शिक्षा पाई है। भिक्षु यदि चीवर छोड़कर गृही बनता है, तो उसे 'लु-थाङ्' कहते हैं और श्रामणेर के गृही बनने पर 'मङ् याङ्' कहते हैं।

श्रामणेर के लिए केवल वस्सावास (वर्षावास) के तीन महीने ही चीवर के साथ दसशील का पालन कर रहना होता है। बाकी नौ महीने गृही वस्त्र पहनकर रहते हैं। श्रामणेर रात को भोजन के लिए 'पुलिङ्' (धर्मपिता) के घर जाते हैं। यह प्रथा इसलिए बनाई गई थी कि पहले चीवर आदि प्राप्त नहीं होते थे। बाहरी संसार से इनका सम्बन्ध नहीं था। केवल 'पात-काई' के पैदल रास्ते बर्मा से चीवर लाते थे। कभी-कभी आने वाले पहुंच भी नहीं पाते थे!

खामति भिक्षु चीवर का पारूपण किसी निमन्त्रण पर जाते समय ही करते हैं। अन्यथा यों ही एकांश में चीवर को लपेटे रहते हैं। पारूपण बर्मी पद्धति से करते हैं। जब कभी भिक्षु मंगल परित्राण पाठ के लिए खामति उपासक के घर जाते हैं, तब सर्वप्रथम घर का प्रमुख उपासक सीढ़ी पर बैठकर भिक्षु का पैर धो देते हैं और अपनी पगड़ी उतार कर पैरों को पोंछते हैं, तब वन्दना कर आसन पर बिठाते हैं।

बौद्धों के चार प्रमुख तीर्थ स्थान—लुम्बीनि, बोधगया, सारनाथ और कुसिनगर को खामति लोग बहुत आदर करते हैं। समय-समय पर वयोवृद्ध अष्टांगशील पालन करने वाले पुरुष-स्त्री तीर्थ स्थानों के दर्शन के लिए जाते हैं।

खामति स्त्रियां कभी भी भिक्षु के आगे नहीं चलती हैं। ऐसा माना जाता है कि भिक्षु ने पीछे से स्त्री का अंग देख लिया तो उन्हें पाप लगने का डर रहता है। कारण स्त्री को देखकर कहीं भिक्षु के मन में बुरी धारणा न बन जाए। इसलिए

कहीं रास्ते में भिक्षु देखने पर रास्ते से हट जाती हैं। या तो किसी जगह आड़ लेकर या तो उसी स्थान में बैठकर वन्दना कर भिक्षु को आगे बढ़ने का आग्रह करती हैं। वृद्धा हो तो वन्दना करती हैं और युवती अथवा प्रौढ़ा हो तो आड़ लेना ही अच्छा समझती हैं।

यदि पुरुष किसी वाहन से यात्रा कर रहे हों और भिक्षु पैदल चलता हो तो तुरन्त वाहन से उतरकर भिक्षु की वन्दना करते हैं और भिक्षु को वाहन में चढ़ने का आग्रह करते हैं। भिक्षु न जाना चाहे तो आज्ञा मांगकर आगे बढ़ते हैं। उपासक लोगों के लिए किसी धार्मिक स्थान (विहार, स्तूप, बोधि-वृक्ष आदि) में एकांश वस्त्र पहन कर ही जाने का नियम है। टोपी, पगड़ी, जूते आदि पहन कर कभी भी धार्मिक स्थानों में प्रवेश नहीं करते हैं। सिर पर टोपी पहना हो तो उसे उतार लेते हैं और पगड़ी हो तो उसे उतार कर दाहिने कन्धे को खोलकर बाएं कंधे की ओर शरीर पर डाल लेते हैं। जैसा कि भिक्षु एकांश पहनते हैं। लुंगी यदि छोटे आकार में पीछे से मोड़ कर पहनी हो तो उसे खोलकर लम्बा करते हैं। धार्मिक स्थानों में किसी प्रकार के हथियार, बन्दूक आदि लेकर प्रवेश नहीं करते हैं। धार्मिक स्थानों में पैर को ढंक कर बैठने का विशेष नियम है। धार्मिक स्थान से होकर गुजरने पर छाता खोलकर जा रहा हो तो उसे मोड़ लेते हैं। पैरगाड़ी या साइ-किल से जाता हो तो भी उतर कर आदर प्रदर्शित कर आगे बढ़ने का नियम है।

खामति उपासक-उपासिका भिक्षु की छाया को कभी भी पैर से लांघते नहीं हैं। भिक्षु की छाया से विपरीत होकर आगे बढते हैं। असुविधा होने पर उसी स्थान में बैठकर भिक्षु को आगे बढ़ने देते हैं। भिक्षु की छाया पैर पर पड़ना अपुण्य माना जाता है। खामति लोग पीले वस्त्र का बहुत ही आदर करते हैं। कोई उपासक-उपासिका कभी भी पीला वस्त्र व्यवहार में नहीं लाते हैं। पीत वस्त्र को अति पवित्र समझा जाता है। इतना तक कि अपने रहने के घर को पीले रंग की लकड़ी (कटहल आदि की लकड़ी) से निर्माण नहीं करते हैं। कठिन चीवर को प्रायः कटहल की लकड़ी से काषाय तैयार कर पीला करते हैं। इसलिए पीली लकड़ी का आदर करते हैं। जो अष्टांगशीलधारी लोग हैं, वही चीवर तैयार कर सकते हैं। युवतियां एवं नवविवाहिता स्त्रियां भिक्षु के चीवर से बहुत दूर रहती हैं। ऐसा समझा जाता है कि यदि भिक्षु का चीवर भूल से स्त्री के शरीर से लग गया तो प्रसव के समय स्त्री को बहुत ही कष्ट हो सकता है। इसी भय से भिक्षु के चीवर से हवा भी लगने नहीं देती हैं।

भिक्षु के शरीर में चीवर न हो तो उपासक-उपासिका, उसे वन्दना करने से हिचकते हैं। इसलिए भिक्षु अपने चीवर को हर समय लिए रहते हैं। केवल स्नान करते समय उतार कर रखते हैं, वह भी स्नान करने के स्थान से केवल तीन हाथ की दूरी पर रखते हैं।

बुद्ध मूर्ति, धर्म पोथी, भिक्षु, स्तूप एवं बोधि वृक्ष खामतियों के अर्चनीय हैं। तीन महीना वस्सावास के समय ये लोग इन्हीं की पूजा करते हैं। भिक्षु से धर्म-देशना श्रवण करते हैं।

भिक्षु मृत्यु के बाद निर्वाणगामी होता है और धार्मिक उपासक मृत्यु के बाद देवलोक में उत्पन्न होता है, फिर देवलोक से च्युत होकर किसी धार्मिक कुल में जन्म ग्रहण कर बाद में प्रव्रजित होकर निर्वाण प्राप्त कर सकता है। ऐसी खामति बौद्ध-धर्म परम्परा की मान्यता है।[1]

'तुङ् स्वम्' (पिण्डाचार) की व्यवस्था अरुणाचल के खामति गांवों में है। सुबह विहार के भिक्षु, श्रामणेर, अन्तेवासी चार बजे उठकर नित्यकर्म के बाद बुद्ध वन्दना करते हैं। पांच बजे विहार में 'यामङ्' (बड़ा घण्टा) बजाया जाता है। ज्यों ही 'यामङ्' की ध्वनि होती है, त्यों ही भिक्षु, श्रामणेर 'पत्त-चीवर' लेकर प्रस्तुत होते हैं। प्रायः पिण्डाचार के समय चीवर का पारूपण बर्मी पद्धति से करते हैं। भिक्षापात्र बर्मा और लंका देशीय हैं। कुछ तो आलमुनियम के छोटे घड़ों को काटकर बनाए जाते हैं।

दो अन्तेवासी एक बांस की टोकरी में एक बांस डालकर, दोनों ओर भार वहन करते हैं और एक छोटी घंटी बजाते हुए आगे बढ़ते हैं। भिक्षु, श्रामणेर उप-सम्पदा एवं प्रव्रज्या आयु अनुसार पंक्तिबद्ध होकर गांव में प्रवेश करते हैं। 'यामङ्' की ध्वनि सुनते ही गांव की स्त्रियां भात की पोटली प्रस्तुत करती हैं। जब छोटी घंटी की ध्वनि सुनाई पड़ती है, तब स्त्रियां घर के फाटक पर आकर खड़ी हो जाती है। पहले अन्तेवासी की टोकरी में व्यंजन आदि रख देती हैं, फिर भिक्षु को वन्दना कर पिण्डपात ग्रहण करने का संकेत करती हैं। पिण्डाचारी मौन रहकर अपने पात्र का ढक्कन खोल देते हैं। स्त्रियां पात्र में आहार दान करती हैं। आहार दान से पूर्व पानी से हाथ धोती हैं, हाथ धोने के लिए स्वच्छ जल पात्र में साथ लाती हैं। पिण्डाचारी भिक्षु, श्रामणेरों को मुट्ठी भर आहार दान करती हैं। आहार दान के बाद बैठकर वन्दना करती हैं।

आहार दान के लिए स्त्रियां बाईं ओर खड़ी होती हैं, इसलिए कि भिक्षा पात्र भिक्षु के बांए हाथ में रहता है। यदि सूर्य किरण से भिक्षु की छाया पड़ती हो तो पूरब की ओर स्त्रियां खड़ी होकर आहार दान करती हैं। इसलिए कि पश्चिम की ओर खड़ी होने पर भिक्षु की छाया स्त्री शरीर के निम्नांग पर पड़ती है। भिक्षु की छाया कुचला जाना अमंगलकारी माना जाता है। जब भिक्षु पिण्डाचार के लिए जाते हैं, तब गांव के अष्टांगशीलधारी उपासक और उपासिकाएं 'सुत्वङ्'

1. खामतियों की परम्परागत धार्मिक मान्यता संबंधी विवरण के लिए देखिए, प्रस्तुत ग्रंथ के पंचम अध्याय में 'सचित्र पुङ्चेन' पोथी की विषय वस्तु ·

(प्रार्थना) करते हैं। इसकी ध्वनि पिण्डाचारी संघ के कर्णगोचर होने पर अधिक शुभ होने का विश्वास किया जाता है। जब भिक्षु पिण्डाचार के लिए जाते हैं, तब कोई किसी प्रकार की आवाज नहीं करते हैं। मौन होकर पिण्डाचार करते हैं। जब वे विहार में लौट आते हैं, तब नियमपूर्वक पिण्डपात्र को बुद्ध मूर्ति के सम्मुख रखकर तीन बार वन्दना करते हैं और विहार की बुद्ध मूर्ति को एक पात्र में स्तूपाकार बनाकर पिण्डाचार से प्राप्त व्यंजन आदि से सजाकर बुद्ध पूजा करते हैं। फिर विहार के प्रमुख भिक्षु को भोजन दान करते हैं, तब सभी लोग साथ बैठकर आहार ग्रहण करते हैं। जो आहार बचता है, उसे दोपहर के लिए अपने-अपने पात्रों में रखते हैं।

पिण्डाचार के समय छाता, चप्पल, लाठी आदि धारण नहीं कर सकते हैं। धूप हो या वर्षा छाता ले नहीं सकते। नंगे पैर चलना होता है। ऐसा समझा जाता है कि इस प्रकार पिण्डाचार कर भिक्षु के गांव में प्रवेश करने पर गांव के कुदेवता भाग जाते हैं और गांव में रोग, व्याधि, अमंगल आ नहीं सकता है। भिक्षु के पिण्डाचार के लिए सुबह जाने पर स्त्रियां पुण्य कमाने के लिए अरुणोदय से पूर्व उठकर भोजन तैयार करती हैं और अपने खेत के कार्य में समय पर जाने के लिए समर्थ होती हैं। पिण्डाचारी भिक्षु का खामति समाज आदर करती हैं। पिण्ड दान में प्रमुख रूप से भात ही दान करते हैं। वन्य शाक-सब्जी के अलावा मांस-मछली भी दान करते हैं।

प्रातः पिण्डाचार से एक प्रकार का व्यायाम होता है, मन भी प्रसन्न होता है। चौखाम विहार में पांच आवासिक भिक्षु हैं। बत्तीस श्रामणेर और अट्ठारह 'साङ् कापी' (अन्तेवासी) हैं। सभी का धार्मिक जीवन अत्यधिक उत्कृष्ट है। इस विहार के प्रमुख श्री शीलवंश महाथेर हैं। अरुणाचल में यही थेरवादी बौद्धों का प्रमुख केन्द्र है। चौखाम गांव खामतियों का धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन का केन्द्र बिन्दु है।

जब भिक्षु की उपसम्पदा होती है, तब चतुनिस्सय में 'पिण्डायलोप-भोजन निस्साय पबज्जा' कहा जाता है। वह इसी चौखाम गांव में जीवित रूप में है। भगवान बुद्ध स्वयं पिण्डाचार करते थे। गांव-गांव, निगम-निगम, जनपद-जनपद, नगर-नगर जाकर लोगों को उपदेश देते थे। उन्होंने अपने शिष्यों को "बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय···" चारिका करने का आदेश दिया है। उसी का कुछ रूप अरुणाचल के बौद्ध गांवों में है।

जिन गांवों के भिक्षु पिण्डाचार नहीं करते हैं, वहां विहारों में रहने वाले भिक्षु श्रामणेरों को प्रत्येक घर से एक-एक पोटली भात तथा एक कटोरी सब्जी सुबह ही स्त्रियां विहार में पहुंचा देती हैं। घर में भोजन पकने पर सबसे पहले विहार में एक पोटली दान करने की प्रथा है। आजकल कुछ विहारों में बारी-बारी से

आहार दान करते हैं। सुबह और दोपहर दोनों बार भिक्षु भात ही खाते हैं। कभी-कभी नाश्ता के लिए 'खाउनाम्पा' (यागु), 'खाउतेक' (लावा) आदि भी दान करते हैं। विहार परिवेश में निम्न घरों का होना आवश्यक रहता है :

च्वङ्/क्यङ् : विहार।
कुक्ति : भिक्षु के रहने के लिए कुटी।
सिङ्किन् स्वम् : भोजन गृह। इसे 'हाप-स्वम्' या 'मे-स्वम्' भी कहा जाता है।
लिईङ् : वच्चकुटी (शौचालय)।
क्वङ्मु : स्तूप, पुरानी धर्म पोथी, बुद्ध मूर्ति अथवा अस्थि धातुओं को रखने के लिए स्तूप। ये अस्थायी और स्थायी दो प्रकार के होते हैं।
तुन-पुथि : बोधि वृक्ष, प्रमुख गांवों में बोधगया से पीपल का पौधा लाकर रोपण किया जाता है।
सिङ्आपुक् : सीमा घर (संघकम्र गृह)।
चलप् : गृहस्थों का वस्सावास में अष्टमी, अमावस्या एवं पूर्णिमा में अष्टांगशील लेकर उपोसथ करने का आश्रम-गृह। ये दो प्रकार के होते हैं : 1. 'चलप-पाचाय' (पुरुषों का आश्रम) और 2. 'चलप-पियिङ्' (स्त्रियों का आश्रम)।
क्यङ्फ्रा : 'साङ्क्येन' (वैशाख संक्रान्ति) उत्सव के समय बुद्ध-मूर्ति को स्नान कराने का छोटा विहार।
चोमो : उत्सव के अवसर पर भोजन पकाने का घर। जो सामूहिक होता है।

विहारों में व्यावहृत धार्मिक वस्तुएं निम्न प्रकार हैं :

तङ्मोई : लाठी, यह बांस या लकड़ी की होती है। यह लाल, पीले, सफेद, हरे, काले आदि नाना रंगों में होती हैं। 'तङ् मोई' में लोहे का अंकुश भी लगाने का नियम है। 'अट्ठपरिक्खार/अष्टपरिष्कार' —(तिचीवर यानी भिक्षुओं के तीन वस्त्र 'अन्तर वासक', निम्नांगीय वस्त्र; 'उत्तरासंग', 'संघाटी', भिक्षा-पात्र, छुरा, सुई, कमर बन्धनी और परिश्रवण या जल छानने की थैली)। के साथ तङ्मोई अवश्य ही रहती है। प्रव्रज्या के समय 'तङ्-मोई' देना अति आवश्यक रहता है।
वि : विजनी, पंखा; यह गोलाकार की होती है। यह भी लाल, पीले, हरे, काले आदि नाना रंगों में होती हैं। इसे बांस से बनाया जाता है। भिक्षु/श्रामणेर धर्म-देशना के समय 'वि' को सम्मुख

रखकर या उसके आड़ में छुपकर परित्राण पाठ कर 'त्रा' उच्चारण करते हैं। श्रीलंका मे इसे 'वटापत' कहा जाता है।

यङ् ले/त्नङ् ले : फूलदान। फूलदान में पानी भरकर उसमें फूल सजाकर रखा जाता है। प्रतिदिन सुबह शाम यङ् ले में स्वच्छ जल डाला जाता है। सुबह शाम वन्दना करते समय 'इमेहि पुप्फेहि, इमं उदकं···' कहकर बुद्ध पूजा करते हैं। हर धार्मिक गृहस्थ, उपासक/उपासिकाओं के पास 'यङ् ले' रहते हैं।

पान्-मक्या : फूल का पात्र। यह लकड़ी या बांस से बनाया जाता है। यह भी नाना रंगों में होते हैं।

तरन्-स्वन् : धर्म-ध्वज। यह बांस और सूत से बनाया जाता है। इसे खामति स्त्रियां बुनती हैं। 'तान-छवन' में नाना प्रकार के देव भवन या बौद्ध तीर्थ स्थानों के चित्र होते हैं। धार्मिक उत्सवों में इन्हें विहार में दान किया जाता है। विहार के सम्मुख लम्बे-लम्बे बांस में बांध कर लटकाया जाता है। विहार के भीतर भी 'तान्-छवन' लटकाने का नियम है।

फा-कप् : भिक्षुओं का बैठने का आसन। यह गोलाकार लाल एवं सफेद रंगों के होते हैं। इसे रुई/पुवाल डालकर बनाया जाता है।

मो-सिविक् : भिक्षा-पात्र। यह काले रंग का होता है। खामतियों के प्रत्येक सामाजिक कार्यों में इसकी आवश्यकता रहती है। पहले तो बर्मा, श्रीलंका से प्राप्त किया जाता था, परन्तु आजकल आल-मुनियम के घड़े को काटकर बनाते हैं। प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा के अवसर पर यह भी 'अट्ठपरिक्खारों' में आता है।

पिलिक्खाला : अट्ठपरिक्खार। परिक्खार में तङ् मोई, तिचीवर, साईनुक् काम्पात (कटि बन्धनी), सुई, धागा, उस्तरा आदि होते हैं। खामतियों के प्रत्येक सामाजिक या धार्मिक कार्यों में 'पिलि-क्खाला' की आवश्यकता रहती है। 'पिलिक्खाला' विहार के भिक्षु के पास रहते हैं। उपासक लोग 'पुक्चो' यानी फूल पांती, अक्षत से याचना कर भिक्षु से प्राप्त करते हैं।

पान्-सिमि-हम : धूपदानी। यह लकड़ी या बांस से बनाते हैं। धूपदानी में बालू रखकर धूप की तिल्लियां गाड़ते हैं। इसे विहार में बुद्ध मूर्ति के सम्मुख रखा जाता है।

पान्-सिमि : दीपदानी। इसमें मोम बत्ती जलाकर बुद्ध पूजा करते हैं।

चाउ याहान्ता : 'पाङ् ना' में याहान्ता/अरहन्तों की मूर्तियां भी रहती हैं। इसे 'चाउ याहान' भी कहा जाता है। भगवान बुद्ध के समय जो

प्रमुख अस्सी अग्रश्रावक अरहत् भिक्षु थे। उन्हीं के आधार पर निर्माण कर विहार में दान कर पूजा करने का नियम है। अरहन्तों की मूर्तियां हाथ जोड़े हुए या पीछे की ओर पैर कर बैठे हुए होती हैं। साधारणतः इन मूर्तियों को बुद्ध मूर्ति के सम्मुख या पीछे की ओर रखने का नियम है। श्रद्धावान खामति उपासक या उपासिकाएं चाउ याहान्तों की मूर्तियां बनाकर दान करते हैं। ऐसा माना जाता है कि इस प्रकार अरहन्तों की मूर्ति बनाकर दान कर, अगले जन्म में अरहत् होने की कामना करते हैं।

नाङ् वासुङ् ताली : वसुन्धरा देवी। अरुणाचल के खामति गांवों के प्रत्येक विहारों में वसुन्धरा देवी की मूर्तियां रहती हैं। यह भारतीय परम्परा की प्राचीन वसुन्धरा देवी है। वसुन्धरा देवी की मूर्ति लकड़ी से बनाई जाती है। ये मूर्तियां प्रायः पूर्णांग मुद्रा में खड़ी होती हैं। विहार में बुद्ध मूर्ति के पास रखी जाती हैं। नाना रंगों में होती हैं। बालों की चोटी लम्बी होती है। वह आगे की ओर लटकी हुई रहती है। देवी दोनों हाथों से चोटी को निचोड़े हुए रहती है। देवी को नाना रंगों से सजाते हैं। नीचे की साड़ी काली होती है, जैसे कि खामति स्त्रियां पहनती हैं। हर सामाजिक या धार्मिक कार्यों में वसुन्धरा देवी को साक्षी करने का नियम है। वसुन्धरा देवी से सम्बन्धित नानान 'त्रा' एवं धर्म-देशनाएं खामति भाषा में मिलती हैं। एक कथा इस प्रकार आती है :

"जब भगवान बुद्ध ने कठोर साधना के बाद बुद्धत्व प्राप्ति की, तब मार ने आकर उनसे पूछा कि "हे गौतम ! तुमने बुद्धत्व प्राप्ति की है, इसकी साक्षी कौन है ?" तो भगवान ने धरती की ओर अंगुली दिखाते हुए कहा—"यह पृथ्वी साक्षी है !" इतने में पृथ्वी के नीचे से वहां वसुन्धरा देवी निकल आई और देवी ने मार से कहा—"मैं साक्षी देती हूं कि गौतम ने बुद्धत्व की प्राप्ति की है !" मार देवी के साथ तर्क में फंस गया। इतने में देवी ने अपनी बेणी को निचोड़ा तो उससे निकले हुए जल स्रोत से मार की सारी सेनाएं बह गईं। इस प्रकार वसुन्धरा देवी के द्वारा भगवान बुद्ध को साक्षी देने के कारण को लेकर आज भी बौद्ध लोग वसुन्धरा देवी को मानते हैं। इसे 'वासुङ्-तालो' भी कहा जाता है। बर्मा की परम्परा में भी इस देवी का

अत्याधिक माहात्म्य है। पालि में वसुन्धरा देवी को साक्षी करने की विधि है—"वसुन्धरा देवाभूमि साक्खिं होतु" (वसुन्धरा सहित देवभूमि साक्षी हों)।

तुन पातेसा : कप्परुक्ख/कल्पवृक्ष। यह काल्पनिक इच्छा पूर्ति सम्बन्धी वृक्ष भी गांव के विहारों में रखते हैं। इसे यों तो बांस से निर्माण करते हैं। चौखाम विहार में लोहे के तार से निर्मित कल्पवृक्ष भी हैं। तीन महीना वर्षावास के बीच या प्रमुख-प्रमुख धार्मिक तिथियों, जैसे, चाली, मैंपि, अक्वा आदि में 'तुन पातेसा' बना कर दान करते हैं। इच्छानुसार लोग इसमें दातव्य वस्तुएं लटकाते हैं। 'तुन पातेसा' का विवरण इसी अध्याय में किया जा चुका है।

चाउ किङ् नाला : किन्नर देवता। अरुणाचल के सालुङ्तो गांव के विहार में किन्नर देवता की दो फुट ऊंची मूर्ति मुझे देखने में आई है। यह लकड़ी से निर्मित है, इसे काले, पीले एवं लाल रंगों से रंगा गया है। यह नृत्याकृति की मूर्ति अति आकर्षक है। इसे विहार के बाहर रक्षक देवता के रूप में विहार की दीवाल पर रखी गई है।

बौद्ध परम्परा में 'परित्त पाठ' का बहुत बड़ा महत्व है। 'परित्त' या परित्राण का अर्थ है रक्षा। यह उन मांगलिक और कल्याणकारी उपदेशों का पाठ है, जिनके विषय में एक दीर्घकालीन परम्परा से यह विश्वास किया जाता है कि उनके पाठ से विघ्न-बाधाएं दूर होती हैं। ये कल्याणकारी वचन बहुत ही मधुर शिक्षाओं से परिपूर्ण हैं। गृहस्थों के मांगलिक कार्यों के अवसर पर या श्राद्ध इत्यादि के समय तथा रोगादि बाधाओं की शान्ति के निमित्त भिक्षु-संघ को निमन्त्रण कर परित्राण पाठ कराया जाता है।

परित्राण पाठ कराने वाले गृहस्थ अपने घर में पूरब दिशा की ओर वेदी जैसा एक ऊंचा स्थान बनाकर उस पर फूल-पाति, अक्षत और पताकाओं से सजा कर एक मण्डप तैयार करते हैं। मण्डप में एक जल का कलश रखा जाता है। चारों ओर धूप-गन्ध भी जला दी जाती है। नियत समय पर भिक्षु संघ को बड़े सम्मान के साथ लाते हैं। घर में प्रवेश करने से पहले गृहपति भिक्षुओं का पैर धो देता है और उनके पैरों को अंगोछे से पोंछ कर सजाये हुए वेदी के ऊंचे आसन पर पंक्ति-बद्ध रूप से बिठाते हैं। उपासक/उपासिकाएं भिक्षु संघ के सम्मुख निचले आसन में यथास्थान बैठते हैं। तब गांव का प्रमुख 'चाउ-चेले' (पाठक), त्रिरत्न पूजा, वन्दना एवं शील ग्रहण के बाद संघ से परित्राण याचना करता है। उपासक-उपासिकाएं

अंजलिबद्ध रहते हैं। इसके बाद वेदी कलश के कनख में तिबराया हुआ एक लम्बा धागा बांध दिया जाता है। धागा मण्डप में पंक्तिबद्ध बैठे हुए भिक्षुओं के सामने से गुजरता है, जिसे सभी भिक्षु अपने दाहिने हाथ से पकड़ते हैं। धागे को मण्डप से निकालकर गृहस्थ के घर के चारों ओर घुमा दिया जाता है। इस तरह मानो घर ही एक सूत्र में सम्मिलित हो जाता है।

फिर 'समन्ता चकवालेसु···' से परित्त पाठ आरंभ होता है। भिक्षु एक स्वर से पालि गाथाओं का उच्चारण करते हैं। इन गाथाओं में बुद्ध, धर्म, संघ, शील, समाधि, प्रज्ञा आदि के गुण और गौरव कहे जाते हैं। मंगलसुत्त, रतनसुत्त, करणीय मेत्तसुत्त आदि विशेष-विशेष सुत्तों का पाठ करते हैं अन्त में 'सुत्तानुमोदन गाथा'— एतेन सच्चवज्जेव होतु ते जय मंगल" (इस सत्य वचन से तुम्हारा मंगल हो) कहकर आशीर्वाद देते हैं।

जब मंगल पाठ समाप्त होता है, तब विज्ञ भिक्षु उपासक-उपासिकाओं को बौद्ध धर्म सम्बन्धी उपदेश देता है। मानों सुत्तों में कहे गये सत्य की दुहाई देकर आशीर्वाद दिया जाता है। फिर कलश का मुंह खोलकर इसके पानी से आशीर्वचन का उच्चारण करते हुए पत्तों से जल भी छिड़का जाता है। कुछ तो उसे पीकर माथे पर थोप लेते हैं। कच्चे धागे से दाहिनी कलाई पर रक्षा-बन्धन बांधने का नियम भी है। बांधते समय निम्न गाथा का उच्चारण कर आशीर्वाद दिया जाता है:

"सब्बीतियो विवज्जन्तु, सब्ब रोगो विनस्सतु।
भाते भवतन्तरायो, सुखी दीघायुको भव॥
अभिवादन सीलिस्स निच्चं वुड्ढापचायिनो।
चत्तारो धम्म वड्ढन्ति आयु वण्णो सुखं बलं।"

(तुम्हारे सभी विघ्न नष्ट हो जाएं, सभी रोग नष्ट हों, तुम्हें किसी प्रकार की बाधा न हो, सुखी और दीर्घायु रहो! हमेशा वृद्धों की सेवा करने वालों और प्रणाम करने वालों की आयु, रूप, सुख और बल इन चारों सम्पदाओं की वृद्धि होती है)।

खामति भाषा में तिपिटक

तिपिटक का विभाजन

खामति भाषा में तिपिटक को 'पिताकात्-सुङ्पुङ्' कहा जाता है। थेरवाद बौद्ध परम्परा अनुसार बुद्ध-वचन का वर्गीकरण 84,000 धर्म स्कन्धों (चतुरासीति धम्मक्खन्धसहस्सानी) के रूप में है। खामतियों में भी यही परम्परा मान्य है-- 'पेत्-मुन् सि-हिङ् थाम्मा त्रा' (चौरासी हजार धर्म उपदेश)। किन्तु यह बौद्धों की विश्लेषण प्रियता का ही एक उदाहरण मात्र है। प्रयोग में यह अक्सर नहीं आता है। साधारणतः तिपिटक और उसके उप-विभागों के रूप में बुद्ध-वचनों की अध्ययन परम्परा रही है। खामति भाषा में बुद्ध-वचन के परिचय तथा शास्त्रों की सूची के लिए 'हो-थाम' (धर्म-शीर्षक), 'लिक् पुप्पा हो-थाम' (आदि धर्म-शीर्षक पोथी) और 'लिक् हो-थाम्-त्वक्चुम्' (सचित्र धर्म-शीर्षक पोथी) नाम से तीन पोथियां मिलती हैं। इन पोथियों में 'चाउखुन्-हुङ्' और 'पुलेप्-लिङ्' द्वारा 'फाताङ्-फातो' नामक द्वीप से धर्म-शास्त्रों को संग्रह कर लाने की कहानी है। 'हो-थाम्' में 2,011 (दो हजार ग्यारह) खण्ड पोथी संग्रह करने का उल्लेख मिलता है।

पालि पिटक साहित्य तीन भागों में विभक्त है—विनय-पिटक, सुत्त-पिटक और अभिधम्म-पिटक। विनय-पिटक अपने आप में एक परिपूर्ण ग्रन्थ है, किन्तु उसकी विषय वस्तु तीन भागों में विभक्त है, सुत्त-विभंग, खन्धक और परिवार। सुत्त-विभंग के दो विभाग हैं, पाराजिका और पाचित्तिया। इसी प्रकार खन्धक के भी दो भाग हैं, महावग्ग और चुल्लवग्ग। सुत्त-पिटक पांच निकायों या शास्त्रों में विभाजित है, जिनके नाम हैं--दीघ-निकाय, मज्झिम-निकाय, संयुत्त-निकाय, अंगुत्तर-निकाय और खुद्दक-निकाय। और खुद्दक-निकाय में पन्द्रह ग्रन्थ हैं--- खुद्दकपाठ, धम्मपद, उदान, इतिवुत्तक, सुत्तनिपात, विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेर-गाथा, थेरीगाथा, जातक, निद्देस, पटिसम्भिदामग्ग, उपदान, बुद्धवंस और चरियापिटक। अभिधम्म-पिटक में सात बड़े-बड़े ग्रन्थ हैं, जिनके नाम हैं—धम्म-

संगणि, विभंग, धातुकथा, पुग्गलप-नति, कथावत्थु, यमक और पट्ठान।

खामति 'पिताकात्-सुङ्पुङ्' (तिपिटक-शास्त्र) में विनय के पांच खण्ड और अभिधम्म के सात खण्डों का विभाजन तो पालि पिटक के जैसे ही हुआ है, किन्तु 'सुक्-सुङ्क्येम्' या सुत्त-पिटक का विभाजन केवल तीन ही ग्रन्थों के नाम से समाप्त किया गया है। वे हैं—सुकसिलाखान्, सुक्माहावा और सुक्पाथेया/सुक्-पातिवा। यह विभाजन अपूर्ण है। इसे पालि दीघ-निकाय के सीलक्खन्ध-वग्ग, महावग्ग और पाटिक-वग्ग के आधार पर किया गया है। दीघ-निकाय के तीन वग्गों के आधार पर विभाजन होने पर भी पालि दीघ-निकाय के विषय-वस्तु से कोई मेल नहीं है। यह केवल नाम मात्र के लिए समानता है। इसका विवरण हम आगे करेंगे।

विनेङाक्येम् (विनय पांच खण्ड)

विनय पिटक को खामति भाषा में 'विने' या 'थाम्मासात्-चाउमुन्' (भिक्षु धर्म-शास्त्र) कहा जाता है। विनय पिटक बौद्ध संघ का संविधान है, धार्मिक दृष्टि से उसका बड़ा महत्व है। स्थविरवाद बौद्ध धर्म की परम्परा ने 'विनय-पिटक' को अपनी धर्म-साधना में ऊंचा स्थान दिया है। वास्तव में भिक्षु-संघ ने अत्यन्त प्राचीन काल से उसे 'सुत्त-पिटक' से भी अधिक ऊंचा स्थान दिया है, क्योंकि उसे ही उन्होंने बुद्ध-शासन की आयु माना है। उनका विश्वास रहा है कि जब तक विनय-पिटक अपने मौलिक, विशुद्ध रूप में रहेगी, तब तक बुद्ध शासन भी जीवित रहेगा और विनय सम्बन्धी नियमों के अभ्यास के लुप्त हो जाने पर बुद्ध-शासन भी लुप्त हो जायेगा। "विनयो धम्मस्स आयु विनयट्ठिते सासनट्ठितं होति!"

'विनय' बौद्ध-संघ की व्यवस्था, भिक्षु एवं श्रामणेरों के नित्य-नैमित्तिक कृत्य, प्रव्रज्या, उपसम्पदा नियम, देशना नियम, वर्षावास के नियम, पिण्डपात, चीवर, पथ्य-औषधादि सम्बन्धी नियम, संघ के संचालन सम्बन्धी नियम, संघभेद होने पर संघ-सामग्री (संघ की एकता) सम्पादित करने के नियम आदि विनय समूह 'विनय' में विवृत किए गए हैं। इन सभी नियमों का प्रज्ञापन भगवान बुद्ध के द्वारा ही हुआ, ऐसी बौद्ध संघ की सामान्यतः मान्यता है। विशेषतः सिंहल और श्याम के भिक्षु-संघ में अभी तक यह विश्वास दृढ़ है और वे विनय, सुत्त, अभिधम्म, यह क्रम महत्व की दृष्टि से तिपिटक का करते हैं। विनय सम्बन्धी मामलों में बर्मी भिक्षु-संघ पर सिंहली प्रभाव ग्यारहवीं शताब्दी से ही रहा है। न केवल स्थविर-वाद बौद्ध धर्म की परम्परा में ही बल्कि अन्य बौद्ध सम्प्रदायों में भी विनय की महिमा सुरक्षित है, फिर चाहे उनके विनयपिटक का स्वरूप स्थविरवादी बौद्धों के विनय पिटक से भले ही कुछ थोड़ा विभिन्न हो। चीन और जापान में 'रिश्शू' नामक बौद्ध सम्प्रदाय है, जिसका शाब्दिक अर्थ ही है 'विनय-सम्प्रदाय।' यह

सम्प्रदाय 'धम्मगुत्तिक' विनय को ही अपना मुख्य आधार मानता है। इस प्रकार विनय की प्रतिष्ठा सम्पूर्ण बौद्ध सम्प्रदायों में समान रूप से पायी जाती है। स्थविरवाद बौद्ध धर्म परम्परा में विनय सम्बन्धी शिक्षापदों की संख्या 227 है। यही शिक्षापद खामति 'विने' (विनय) परम्परा को मान्य है। इन्हीं 227 शिक्षापदों या विनय सम्बन्धी नियमों का संक्षिप्त वर्णन करेंगे।

चार पाराजिका धम्मा

'पाराजिका धम्मा' का अर्थ है वे वस्तुएं जो भिक्षु को पराजय दिलाती हैं, अर्थात् जिस उद्देश्य के लिए उसने घर से बेघर होकर प्रव्रज्या ली है, उसमें उसे सफल नहीं होने देतीं। इस प्रकार की वस्तुएं चार हैं: 1. स्त्री-मैथुन, 2. चोरी या न दी हुई वस्तु को लेना, 3. मृत्यु या आत्महत्या की प्रशंसा करना, ताकि कोई दूसरा आदमी आत्महत्या करने के लिए उद्यत हो जाय और 4. लाभ या सरकार की इच्छा से अपने अन्दर ज्ञान और दर्शन की प्राप्ति दिखाना जबकि वास्तव में ऐसी प्राप्ति नहीं हुई है। ये चार वस्तुएं भिक्षु को उसके श्रामण्य के उद्देश्य की प्राप्ति नहीं होने देतीं। वे उसे पराजित कर डालती हैं। इसीलिए वे 'पाराजिका-धम्मा' कहलाती हैं। इनमें से किसी एक का भी अपराधी होने पर भिक्षु बुद्ध का शिष्य नहीं रहता। वह अपने उद्देश्य से पतित हो जाता है। वह संघ से बहिष्कृत कर दिया जाता है। उसके लिए किसी प्रायश्चित्त का विधान नहीं है।

तेरह संघादिसेसा धम्मा

'संघादिसेसा-धम्मा' उक्त पाराजिका धम्मों से कुछ कम गम्भीर अपराध माने जाते हैं। इनका नाम 'संघादिसेस' इसलिए है कि इनके दंड-स्वरूप अपराधी भिक्षु को छह दिन के लिए अस्थायी रूप से संघ को छोड़ देना पड़ता है और प्रायश्चित्त-स्वरूप वह अकेला रहकर तपस्या (मानत्त) करता है। बाद में शुद्ध होकर वह संघ में प्रवेश करता है। 'संघादिसेस' कोटि में आने वाले तेरह अपराध हैं, जो इस प्रकार है: 1. जान-बूझकर वीर्य-नाश करना। अज्ञात रूप से स्वप्नदोष में वीर्य-स्खलन हो जाना इसके अन्तर्गत अपराध नहीं माना जाता। 2. काम-वासना से स्त्री-स्पर्श, 3. काम-वासना से स्त्री से वार्तालाप, 4. अपनी प्रशंसा द्वारा किसी स्त्री को अपनी ओर बुरे उद्देश्य से आकर्षित करना, 5. विवाह सम्बन्ध निश्चित करवाना या प्रेमियों का संगम करवाना, 6. बिना संघ की अनुमति लिये अपने लिए विहार बनवाने लग जाना, 7. बिना संघ की अनुमति के निश्चित मात्रा से बड़े नाप के विहार बनवाने लग जाना, जिनके चारों ओर खुली जगह भी न हो, 8. क्रोध के कारण निराधार ही किसी भिक्षु को 'पाराजिका' का अपराधी ठहराना, 9. पाराजिका अपराध से मिलते-जुलते किसी अन्य अपराध को पाराजिका

अपराध बतलाकर किसी साथी भिक्षु को उसका अपराधी ठहराना, 10. बार-बार चेतावनी दिए जाने पर भी संघ में फूट डालने का प्रयत्न करना, 11. फूट डालने वालों की सहायता करना, 12. बिना किसी गृहस्थ की अनुमति के उसके घर के भीतर घुस जाना और 13. बार-बार चेतावनी दिए जाने पर भी संघ या साथी भिक्षुओं के आदेश को न सुनना।

दो अनियता धम्मा

'अनियत' का अर्थ है अनिश्चित। जिन अपराधों का स्वरूप अनिश्चित हो और साक्ष्य प्राप्त होने पर ही जिन्हें एक विशेष श्रेणी के अपराधों में रक्खा जा सके, तत्सम्बन्धी नियमों को 'अनियता धम्मा' कहते हैं। इनका सम्बन्ध दो प्रकार के अपराधों से है, 1. यदि कोई भिक्षु किसी एकान्त स्थान पर बैठा हुआ स्त्री से बातें कर रहा है और कोई श्रद्धावती उपासिका आकर उसे 'पाराजिका', 'संघादिसेस' या 'पाचित्तिया' अपराध का दोषी ठहराती है और वह स्वीकार कर लेता है, तो वह उसी अपराध के अनुसार दंड का भागी है; 2. यदि वह एकान्त स्थान में न बैठकर किसी खुली हुई जगह में बैठकर ही स्त्री से सम्भाषण कर रहा है। किन्तु उसके शब्दों में कुछ अनौचित्य है और कोई श्रद्धावती उपासिका उसी प्रकार आकर उसे 'संघादिसेस' या 'पाचित्तिय' अपराध का दोषी ठहराती है और वह उसे स्वीकार कर लेता है, तो वह उसी अपराध के अनुसार दंड का भागी होता है।

तीस निस्सग्गिया पाचित्तिया धम्मा

"निस्सग्गिया पाचित्तिया धम्मा" वे अपराध हैं, जिनके लिए स्वीकरण के साथ-साथ प्रायश्चित्त करना पड़ता है और जिस वस्तु के सम्बन्ध में अपराध किया जाता है, यह वस्तु भी भिक्षु से छीन ली जाती है। इस श्रेणी के अपराधों में प्रायः सभी वस्त्र-सम्बन्धी और केवल दो भिक्षा-पात्र सम्बन्धी हैं। वस्त्र सम्बन्धी तृष्णा भिक्षु को किन-किन रूपों में आ सकती है, इसी को देखकर इन नियमों का विधान किया गया है। उदाहरणतः यदि कोई भिक्षु अपने पास अतिरिक्त वस्त्र रखता है, या किसी गृहस्थ से बेठीक समय पर वस्त्र मांगता है, या अपनी इच्छानुसार किसी अच्छे वस्त्र को प्राप्त करने के लिए अपने किसी उपासक गृहस्थ को इशारा देता है, या रेशम या मुलायम ऊन के गद्दों आदि को काम में लेता है, तो वह इस अपराध के अन्तर्गत अपराधी होता है। इसी प्रकार अतिरिक्त भिक्षा-पात्र रखने पर या बिना आवश्यक कारण उसे किसी दूसरे से बदल लेने पर वह इस अपराध के अन्तर्गत अपराधी होता है। इन वस्त्र और भिक्षा-पात्र सम्बन्धी नियमों का उद्देश्य, जिनके सबके ब्यौरेवार विवरण देने की हमें आवश्यकता नहीं, केवल यही है कि भिक्षु इन वस्तुओं के प्रयोग में संयत और सावधान रहें, वे अल्पेच्छ

हों और यथा-प्राप्त सामग्री से ही अपना गुजारा कर लें। व्यक्ति के ऊपर संघ की प्रतिष्ठा भी इन नियमों के द्वारा की गई है। जो वस्तु संघ को दान दी गई है, उसे कोई एक भिक्षु व्यक्तिगत रूप से अपनी बनाकर नहीं रख सकता। ऐसा करने पर वह अपराधी ठहरता है, उसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है और वह वस्तु संघ को लौटा देनी पड़ती है।

92 पाचित्तिया धम्मा

92 अपराधों की एक सूची ऐसी है, जिन्हें करने पर प्रायश्चित्त करने के बाद अप-राध-मुक्त कर दिया जाता है, इन सब अपराधों का विवरण यहां अनावश्यक होगा, संघ-शासन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हुए भी यहां तो इनका संक्षिप्त निर्देश ही हो सकता है। अधिकतर नियम ऐसे हैं जो उस समय के देश-काल आदि से सम्बन्ध रखते हैं, किन्तु ऐसे भी कम नहीं हैं, जिनका उपयोग सब काल और देश के लिए हैं। भिक्षु के लिए एक बार भोजन करना, भिक्षुणी को उपदेश देते समय सावधान और जागरूक रहना, भिक्षु-पद के गौरव की रक्षा करना, आदि बातें ऐसी हैं जिनका उल्लंघन करने पर भिक्षुकों को प्रायश्चित्त कर आगे के लिए संयम रक्षा का संकल्प लेना होता है। झूठ बोलना, गाली देना, चुगली करना, नशीली चीजों का प्रयोग करना, आदि अपराधों के करने पर भी प्रायश्चित्त करने के बाद आगे के लिए वैसा न करने के लिए कृत-संकल्प होना पड़ता है।

चार पटिदेसनिया धम्मा

'पटिदेसनिया धम्मा' का अर्थ है वे वस्तुएं जिनके लिए प्रतिदेशना (क्षमा-याचना) आवश्यक हो। किसी अज्ञात भिक्षुणी द्वारा भोजन प्राप्ति, भोजन के समय किसी भिक्षुणी को भिक्षुओं के प्रति आदेश देती हुई देखकर भी उसे न रोकना, बिना पूर्व निमंत्रण के अपने स्थान पर किसी गृहस्थ के हाथ से भोजन ग्रहण करना तथा उपद्रव-ग्रस्त वन में किसी गृहस्थ को वहीं बुलवाकर उसके हाथ से भोजन की प्राप्ति, इन चारों अपराधों के लिए क्षमा-याचना करनी पड़ती है।

75 सेखिया धम्मा

'सेखिया धम्मा' या शैक्ष्य धर्म वे हैं जिनका सम्बन्ध बाहरी शिष्टाचार, वस्त्र पह-नने के ढंग और भोजन आदि करने के नियमों से है। भिक्षु को किस प्रकार ठीक वस्त्र पहनकर भिक्षा-चर्या के लिए जाना चाहिए, किस प्रकार शरीर और वस्त्रों के उचित समेटन और फैलाव के साथ उसे बरतना चाहिए, किस प्रकार उसे शांत रहना चाहिए, जोर से हंसना आदि नहीं चाहिए, इन्हीं सब बातों का विस्तृत विवरण किया गया है। और इनके तोड़ने पर फिर शिक्षा का विधान किया गया

है। इन नियमों में से अधिकतर तत्कालीन शिष्टाचार से संबंध रखते हैं, जो खामति बौद्ध समाज में आज भी जीवित अवस्था में है।

सात अधिकरण समथा धम्मा

संघ में विवाद होने पर उसकी शान्ति के उपाय के रूप में सात नियमों का विधान किया गया है। वे सात नियम हैं, 1. सम्मुख विनय, 2. स्मृति विनय, 3. अ-मूढ़ विनय, 4. प्रतिज्ञात करण, 5. यद्भूयसिक, 6. तत्पापीयसिक और 7. तिणवत्थारक।

खामति भाषा में विनय पिटक को 'बिने-ङाक्येम्' (विनय पांच-खण्ड) या 'थाम्मासात् चाउमुन' (भिक्षु धर्म शास्त्र) कहा जाता है। वे निम्न प्रकार हैं :

1. विने पालाचिका (विनय पाराजिका)।
2. विने पाचिक (विनय पाचित्तिया)।
3. विने माहावा (विनय महावग्ग)।
4. विने चोलावा (विनय चुल्लवग्ग)।
5. विने पालिवा (विनय परिवार)।

और पालि विनय-पिटक निम्नलिखित भ गों में विभक्त है :

1. पाराजिका,
2. पाचित्तिया,
3. महावग्ग,
4. चुल्लवग्ग,
5. परिवार।

खामति भाषा के 'विने ङाक्येम्' (विनय पांच खण्ड) ग्रन्थों के नाम में साम्य होने पर भी सम्पूर्ण विषयों का विवेचन इन ग्रन्थों में पालि विनय पिटक जैसा नहीं हुआ है। खामति 'विनेङोक्येम्' की रचना अट्ठकथा एवं टीकाओं की कथा-वस्तु के आधार पर हुई है। खामतियों में 'विने' का अध्ययन, पठन, लेखन, केवल भिक्षु श्रामणेर ही करते हैं। उपासकों को इस विषय की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक नहीं है। यदि किसी उपासक ने 'विने' सम्बन्धी पोथी का पाठ किया तो वयोवृद्ध भिक्षु उसे मना करते हैं। भिक्षु नियम को जानकर भिक्षु को दोषी ठहराने पर उन्हें पाप लगने का डर रहता है। इसलिए 'विने' सम्बन्धी विषय से अज्ञात रहना ही उचित समझते हैं। उल्लिखित 'विने-ङाक्येम्' ग्रन्थों के अलावा और भी विनय सम्बन्धी पाण्डुलिपियां खामति भाषा में मिलती हैं। उनके नाम निम्न प्रकार हैं :

1. विने साङ्क्योव (विनय संग्रह), 2. विने पाकिङ्नाका (विनय पाकिण्णक) 3. विने मुलासिक्खा (विनय मूलसिक्खा), 4. विने पातिमुक् (विनय पातिमोक्ख)

5. विने येकाथालुङ्, 6. विने कुलुकाम्फी (विनय गुरु-गम्भीर), 7. विने कुलु यात्सा, 8. विने कुलुपात (विनय गुरु पद), 9. विने कुलुस्रोत, 10. बिने कुलु-वाक्की (विनय गुरु वाक्य), 11. विने कुलु वेला, 12. केहि विने (गृही विनय), 13. विने क्येम्प्वङ् (विनय संकलन), 14. पिनचाविने (पंच विनय)।

सुक्-सुङ्क्येम् (सुत्त तीन खण्ड)

खामति धर्म साहित्य परम्परा में 'सुक्-सुङ्क्येम्' (सुत्त तीन खण्ड या सुत्त-पिटक) 'पिताकात्-सुङ् पुङ्' (तिपिटक) का दूसरा पिटक है। इसके केवल तीन विभाग हैं: 1. सुक् सिलाखान, 2. सुक् माहावा और 3. सुक् पाथेंया/पातिवा। इन्हीं तीन खण्डों को 'सुक्सुङ्क्येम्' (सुत्त तीन खण्ड) कहा जाता है। यह विभाजन पालि दीघ-निकाय के तीन वग्ग—1. सीलक्खन्ध-वग्ग, 2. महावग्ग और 3. पाटिक-वग्ग के आधार पर हुआ है। यह विभाजन सर्वथा अपूर्ण एवं अवैज्ञानिक ढंग से हुआ है। यह केवल कामचलाऊ विभाजनमात्र है। खामति 'सुक्-सुङ्क्येम' का विभाजन पालि दीघ-निकाय के तीन वग्गों के आधार पर होने पर भी, विषय-वस्तु में कोई साम्य नहीं है। पालि का सुत्त पिटक जैसा कि पहले दिखाया जा चुका है, पांच निकायों में विभक्त है, 1. दीघ-निकाय, 2. मज्झिम-निकाय, 3. संयुत्त-निकाय, 4. अंगुत्तर-निकाय और 5. खुद्दक-निकाय। इनमें से प्रथम चार निकाय संग्रह-शैली की दृष्टि से समान हैं। पांचवां निकाय छोटे-छोटे (जिनमें कुछ बड़े भी हैं) स्वतंत्र ग्रन्थों का संग्रह है। विषय तो सबका बुद्ध-वचनों का प्रकाशन ही है। केवल सुत्तों के आकारों या विषय के विन्यास में कहीं कुछ अन्तर है। खामति धर्म परम्परा का 'सुक्-सुङ्क्येम्' में 'पुङ्' (कहानी/आख्यान) की मात्रा अधिक है। आगे हम तीनों पोथियों की कुछ कहानियां प्रस्तुत कर रहे हैं।

सुक्-सिलाखान

'सुक्-सिलाखान' पोथी में 'ओसाथाम हिताकुङ्मा' (औधहित कुमार) की कथा इस प्रकार आती है, 'किसी राज्य में एक निर्धन दम्पति रहते थे। ये रोज कमाते थे और खाते थे। उस निर्धन दम्पति के दो बच्चे थे। पुत्र का नाम हिताकुङ्मा और पुत्री का नाम नाङ्चान्ता था। एक दिन दोनों दम्पति आहार अन्वेषण के लिए जंगल में गए हुए थे। जंगल से उन्हें एक दैत्य उठा ले गया और उन्हें दैत्य-लोक ले जाकर दैत्यराज को दे दिया। दैत्यराज ने उनसे धर्म-कथा श्रवण किया। धर्म-कथा श्रवण कर पापी दैत्यराज अपने सिंहासन से गिरकर बेहोश हो गया। डर के मारे उस दम्पति को पुनः उसी जंगल में छोड़ दिया। उस दैत्यराज का नाम था 'वासा-वारो'। वासावारो ने उस दम्पति को जाते हुए तीन मन्त्र-शक्ति दिये:

1. यदि मन्त्र का जप कर जंगल साफ होने के लिए कहा जाए, तो सुन्दर धान

से लहलहाता खेत बन जाता था।

2. वृष्टि होने के लिए कहा जाए तो, तुरन्त होता था। और
3. वन में जाकर जीव-जन्तु मरने के लिए कहा जाए तो पशु-पक्षी मर जाते थे।

इस मन्त्र-शक्ति से उस निर्धन आदमी ने वन साफ किया और सारा वनांचल धान खेत से लहलहाने लगा। अन्न का उत्पादन पर्याप्त हुआ तो आस-पास के गांव के लोग आकर उसी गांव में निवास करने लगे। बाद में उस राज्य के राजा ने उसे उपराज बनाया, वह उपराज अपने कर्तब्य में व्यस्त रहता था। किन्तु उसका लड़का हिताकुङ्मा बहुत ही धार्मिक प्रवृत्ति का था। हिताकुङ्मा के पिता वन्य-पशुओं को मन्त्र-शक्ति का प्रयोग कर मारता था। हिताकुङ्मा को उसके पिता का यह कार्य अच्छा नहीं लगा। वह अपना राज्य छोड़कर किसी दूर स्थान में ध्यान-भावना के लिए चला गया। तीन साल बाद हिताकुङ्मा के माता-पिता की मृत्यु हो गई। उत्तराधिकारी की खोज में ब्राह्मण और अमात्त हिताकुङ्मा के सन्धान में गए। उसे अरण्य के बीच तपस्या करते हुए पाया और देश में ले जाकर राजा बनाया। हिताकुङ्मा की नाङ्चान्ता बहन भी बहुत गुणवती थी।

हिताकुङ्मा के माता-पिता मरकर नरक गामी हुए। इन्हीं दोनों के पुण्य-प्रभाव से पुनः वे देवलोक को गए। आज भी खामति लोग किसी की मृत्यु होने पर इस ग्रन्थ को विहार में दान करते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है, कि यदि कोई नरक-गामी हुआ हो तो इस ग्रन्थ-दान के पुण्य-प्रभाव से देवलोक गामी होते हैं। पोथी में दान, शील, भावना, त्रिरत्न आदि विषयों का विवरण है। इसी कथावस्तु के आधार पर रचित नाटक भी खामति भाषा में उपलब्ध होते हैं।

सुक् माहावा

'सुक् माहावा' खामति भाषा के 'सुक्-सुङ्क्येम्' की दूसरी पोथी है। यह पोथी धर्म-उपदेश सम्बन्धी कथाओं की मंजूषा है। उदाहरण लिए यहां तुखाफायाना की कथा दी जाती है :

'प्राचीन काल में तुखाफायाना' (दुःख-भयन) नाम का एक कुरूप और दलिद्र आदमी रहता था। वह दूसरे का जूठन खाकर जीवन-यापन करता था। एक दिन वह किसी भिक्षु आवास के पास जाकर जूठन खा रहा था। उस समय भिक्षु-संघ बैठकर धर्म-चर्चा कर रहा था। तुखाफायाना ने भी पंचशील, अष्टांगशील आदि धर्मों का श्रवण किया। उसे सुनकर वह आचरण करने लगा। तुखाफायाना के तप और शील की बातें धीरे-धीरे फैलने लगीं। वह प्राणी मात्र के प्रति मैत्री रखता था।

तुखाफायाना के शील सम्बन्धी परीक्षा के लिए देवराज इन्द्र ने सांप का रूप

धारण कर तुखाफायाना के शरीर को लपेट लिया। सांप को लपेटे हुए देखकर लोगों ने सांप को मारने के लिए उसे 'दाउ' (हथियार) दिया। इस पर तुखाफा-याना ने कहा—"एक दिन तो जन्म ग्रहण करने पर मरना ही होता है। इसलिए मैं इस सांप को नहीं मारूंगा! इसे मारने पर मेरे दो शील नष्ट हो जाएंगे।" उसकी मैत्री को जानकर देवराज इन्द्र भी बहुत प्रसन्न हुआ।

उधर वाराणसी के ब्रह्मदत्त राजा की राजकन्या नाङ्चान्ता को स्वप्न दिखाई दिया कि "वह धार्मिक कार्य नहीं करती है। वह मरने के बाद नरक गामी होकर बहुत कष्ट पाएगी!" और स्वप्न में ही इसका समाधान भी हुआ कि—"वह यदि तुखाफायाना नाम के धार्मिक व्यक्ति से विवाह करेगी तो, इन सभी दुःखों से छुट-कारा पा जाएगी!"

दूसरे दिन नाङ्चान्ता ने सारी बातें अपने पिता राजा ब्रह्मदत्त को बता दीं और वह तुखाफायाना की खोज में चल पड़ी। खोजते हुए, उसे तुखाफायाना मिल ही गया। उसे अपने राजमहल में ले आई। उस कुरूप आदमी के साथ विवाह करने के कारण देश-विदेश के राजकुमारों ने नाङ्चान्ता का बहुत मजाक उड़ाया। इस पर मंत्रियों ने राजा से निवेदन किया कि—"महाराज, नाङ्चान्ता एवं तुखाफायाना को देश में रखने पर विपत्ती आ सकती है, इसलिए इन दोनों को निर्वासित किया जाए।"

नाङ्चान्ता और तुखाफायाना को घोर अरण्य में ले जाकर छोड़ दिया। वे वहां पर्ण-कुटि बनाकर पवित्र जीवन व्यतीत कर ध्यान-भावना करते हुए रहने लगे। देवराज इन्द्र ने उनके लिए सुन्दर आश्रम बनवा दिया और तुखाफायाना की कुरूपता को भी सुन्दरता में बदल दिया। तुखाफायाना अब देवपुत्र जैसा लगता था। पति की सुन्दरता को देखकर नाङ्चान्ता भी प्रमुदित होती। इस प्रकार इनके अरण्य में रहते हुए तीन साल बीत गए।

उधर वाराणसी में जब से नाङ्चान्ता और तुखाफायाना को देश से निकाल-कर भगाया, तब से देश में वर्षा नहीं हो रही थी। अकाल पड़ने से भुखमरी फैलने लगी थी। जो प्राणी बचे थे, वे भी जल के लिए तड़प रहे थे। भविष्यवाणी हुई कि "यदि नाङ्चान्ता तथा तुखाफायाना को वापस लाया जाए तो देश से सभी कष्ट दूर हो जाएंगे!" राजा की आज्ञा पाकर मंत्रीगण उन्हें लेने गए, तो दोनों ने लौटने से इनकार कर दिया। फिर राजा स्वयं ही प्रजा को साथ लेकर उनके आश्रम में जा पहुंचा। राजा अपने देवता जैसे सुन्दर दामाद को देखकर अति प्रसन्न हुआ। इतने में अपनी साधना शक्ति से आकाश में खड़े होकर तुखाफायाना वाराणसी के ब्रह्मदत्त राजा को धर्म उपदेश देने लगा। उपदेश सुनकर सभी लोग धर्म में प्रतिष्ठित हुए। राजा सहित प्रजा के अनुरोध करने से उन दोनों ने वाराणसी लौटना स्वीकार किया। उनके वाराणसी नगर में प्रवेश करते ही वर्षा होने

लगी, तो लोगों को राहत की सांसमिली ! एक सप्ताह तक वाराणसी नगर में तुखाफायाना और नाङ्चान्ता के सम्मान में उत्सव मनाया गया !"

इसी कथा को प्रमुख कर 'सुक्-माहावा' में विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस पोथी के कथा-वस्तु पर आधारित 'पुङ्नाङ्चान्ता' (नाङ्चान्ता नाटक) की भी रचना हुई है।

सुक्-पाथेया

एक बार भगवान बुद्ध के श्रावस्ती में विहार करते समय श्रावस्ती का सेठ भगवान बुद्ध और उनके श्रावक-संघ की सेवा करता था। एक दिन सेठ को धर्म उपदेश देते हुए भगवान ने कहा—"उपासक, जो धन तुम्हारे पास है, उसे तीन भागों में बांट कर, एक भाग बच्चों के भरण-पोषण के लिए उपयोग कर, दूसरा भाग दान-पुण्य के कार्य में लगाओ और तीसरा भाग अपने व्यापार-वाणिज्य में लगाओ तो अति उत्तम है। सेठ ने वैसा ही किया। फिर भगवान ने उसे पंचशील पालन करने को कहा। उसके बाद अष्टांगशील पालन करने को। फिर दसशील पालन करने का उपदेश दिया। वह सेठ सब कुछ करता गया। फिर एक दिन उसने भगवान से पूछा—"भगवान, अब मुझे क्या करना चाहिए ?" तब भगवान ने कहा—"श्रद्धा हो तो भिक्षु बनकर कुशल-धर्मों का सम्पादन करो।" श्रावस्ती सेठ ने उसी क्षण दीक्षा ग्रहण की। भगवान के आदेश अनुसार वह धम्म-विनय सीखने लगा।

मातिकाधर (अभिधम्म का जानकार) के पास रहकर उसने सातों खण्ड अभिधम्म का ज्ञान प्राप्त किया। कुसलाधम्मा और अकुसलाधम्मा को अच्छी तरह जान लिया। फिर उसके बाद वह भिक्षु-नियम, विनय जानने के लिए विनय-धर (विनय का जानकार) के पास गया। विनयधर ने पांच खण्ड विनय के 227 नियमों को समझा दिया और इन सभी नियमों का पालन करने को कहा। इतने सारे नियमों को पालन करने सम्बन्धी बात को लेकर, वह भिक्षु चिन्ता में पड़ गया। चिन्ता के कारण वह दुर्बल होता गया। दूसरे भिक्षुओं ने इसे भगवान को बता दिया। भगवान ने उसे बुलाकर कारण पूछा तो अपनी चिन्ता सम्बन्धी बातें उसने बता दीं। तब भगवान ने कहा—"हे भिक्षु, तू यदि इतने सारे नियमों का पालन नहीं कर सकता है, तो तू केवल एक ही नियम का पालन किया कर। वह है, तुम्हारा चंचल 'मन'/चित्त', यदि तू इसका पालन कर सकता है, तो तुम्हारी सारी चिन्ताएं दूर हो जाएंगी। वह चिन्तित भिक्षु अपने मन को एकाग्र करने लगा, तो धीरे-धीरे उसकी चिन्ताएं नष्ट होने लगीं। होते-होते वह समाधि-भावना कर सुमार्ग पर प्रतिष्ठित हुआ। इन्हीं विषयों का 'सुक्-पाथेया' पोथी में विस्तृत विवरण किया गया है।

उल्लिखित 'सुक्-सुङ्क्येम्' (सुत्त-पिटक) ग्रन्थों के अलावा और भी सुत्त

सम्बन्धी पाण्डुलिपियां खामति भाषा में मिलती हैं। यथा :

1. मुलापाना सुक् (मूलपण्णसुत्त), 2. थाम्मामुला सुक् (धम्म मूल सुत्त), 3. पालाफावा सुक् (पराभव सुत्त), 4. आपालिमेत्ता सुक् (अपरिमेत्ता-सुत्त), 5. माङ्काला सुक् (मंगल सुत्त), 6. आकावाला सुक् (अग्गवल-सुत्त), 7. सुक्ता साङ्काहा (सुत्त संग्रह), 8. सुक्तान्ता क्येम्प्वङ्त्वक्चुम् (सचिव सुत्तन्त संकलन)।

आफिथाम्मा चेत्-क्येम् (अभिधम्म सात खण्ड)

'आफिथाम्मा'/'अभिधम्म-पिटक, तिपिटक का तीसरा मुख्य भाग है। 'आफिथाम्मा' को खामति लोग अधिक श्रेष्ट मानते हैं। आचार्य बुद्धघोष ने अभिधम्म को 'उच्चतर धम्म' या 'विशेष धम्म' कहा है। 'अभिधम्म' में 'अभि' शब्द को बुद्धघोष ने 'अतिरेक' या 'विशेष' का वाचक माना है (अतिरेक-विसेस-त्थदीपको हि एत्थ अभिसद्दो—अट्ठसालिनी, पृ० 2)।

जिस प्रकार अभिधम्म पिटक पालि तिपिटक का तीसरा मुख्य भाग है, उसी प्रकार खामति में भी 'आफिथाम्मा-चेत्-क्येम्' (सप्त अभिधम्म) तिपिटक का पवित्रतम तीसरा भाग है। सुत्त सबके लिए सुगम है, क्योंकि वहां बुद्ध-वचन अपने यथार्थ स्वरूप में रक्खे हुए हैं। अभिधम्म पिटक में बुद्ध मन्तव्यों का वर्गीकरण और विश्लेषण किया गया है, तात्विक और मनोवैज्ञानिक दृष्टियों से उन्हें गणना-बद्ध किया गया है। जब कि सुत्त-पिटक का निरूपण जन साधारण के लिए उपयोगी है। अभिधम्म पिटक की सूचियों और परिभाषाओं में वही चुने हुए व्यक्ति रुचि ले सकते हैं, जिन्होंने बौद्ध तत्व-दर्शन को अपने अध्ययन का विशेष विषय बनाया है, किन्तु खामति भाषा के 'आफिथाम्मा' को सर्वसाधारण लोग भी समझ सकते हैं, वह कहानियों के रूप में है।

सुत्त-पिटक में यदि बौद्ध परम्परा के लिए अधिचित्त शिक्षा है, विनय में अधिशील शिक्षा, तो अभिधम्म में है अभिप्रज्ञा शिक्षा। इसी प्रकार यदि सुत्त व्यवहार देशना (वोहार देसना) है, विनय आज्ञा देशना (आणा देसना), तो अभिधम्म को उसने माना है उच्चतर परमार्थ देशना (परमत्थ देसना)।

अभिधम्म पिटक धम्म की अधिक गहराई में उतरता है और अधिक साधन सम्पन्न व्यक्तियों के लिए भी उसका प्रणयन हुआ है, ऐसा बौद्ध परम्परा आरम्भ से ही मानती आई है। अट्ठकथाओं में कहा गया है कि 'देव और मनुष्यों' के शास्ताने', 'अभिधम्म' का उपदेश सर्वप्रथम 'तावतिंस' (त्रायस्त्रिंश) देव लोक में अपनी माता देवी महामाया और अन्य देवताओं को दिया था।[1] बाद में उसी की

---

1. मातरं पमुखं कत्वा तस्सा पञ्ञाय तेजसा,
अभिधम्मकथामग्गं देवानं सम्पवत्त यि।—अट्ठसालीनि, पृ० 1.

पुनरावृत्ति उन्होंने अपने महाप्रज्ञ शिष्य धर्मसेनापति सारिपुत्र के प्रति की थी। सारिपुत्र ने ही उसे अन्य 500 भिक्षुओं को सिखाया। इस प्रकार बुद्ध के जीवन-काल में ही सारिपुत्र सहित 501 भिक्षु अभिधम्म के ज्ञाता थे। इस प्रकार प्राप्त 'अभिधम्म' का ही संगायन, इस परम्परा के अनुसार, प्रथम दो संगीतियों में हुआ और तीसरी संगीति में भी इसी की पुनरावृत्ति की गई।[1] यही कथा खामति भाषा के 'आफिथाम्मा चेत्-क्येम्' (सप्त अभिधम्म) में विशेष रूप से वर्णित होती है। इसका उदाहरण यथास्थान 'आफिथाम्मा' में किया जाएगा।

पालि में अभिधम्म को 'निप्परियाय-देसना' (बिना उपमाएं और उदाहरण दिए धम्म को समझाना) है, किन्तु खामति 'आफिथाम्मा' में उदाहरण देकर, अनेक पर्यायों से और अनेक उपमाओं से धर्म को समझाया गया है; इसीलिए सर्व-साधारण लोग भी इसे समझ लेते हैं। पालि अभिधम्म-पिटक का प्रणयन साधारण जनता के लिए नहीं हुआ है, किन्तु खामति में यह बात नहीं है। देव-मनुष्यों के लिए उपदेश किया हुआ बुद्ध-वचन है। पालि अभिधम्म पिटक में साधारण जन-समाज की भाषा का प्रयोग नहीं किया गया है, किन्तु खामति 'आफिथाम्मा' में अति सरल भाषा का व्यवहार हुआ है। 'आफिथाम्मा' की कथाओं को खामति लोग अति पवित्र मन से ध्यान देकर सुनते हैं।

जिस प्रकार थेरवाद बौद्ध देशों में पालि अभिधम्म की पूजा की जाती है, उसी प्रकार खामति लोग भी 'आफिथाम्मा' की पूजा करते हैं। सुख-समृद्धि के लिए खामति लोग अपने घरों में 'आफिथाम्मा' का पाठ करवा कर सुनते हैं। घर में 'आफिथाम्मा' का पाठ कराने पर अमंगल दूर होता है। इस प्रकार धर्मपोथी पाठ की प्रथा को 'फातलिक' (फात्—पाठ, लिक्—पोथी) कहा जाता है, खामति उपासक यदि 'आफिथाम्मा' की प्रतिलिपि अथवा पाठ करना चाहता है, तो पोथी खोलने से पूर्व स्नानादि के बाद 'मक्या-खाउतेक्' (फूल-अक्षत) से 'आफिथाम्मा' पोथी की पूजा करते हैं। फिर तीन बार वन्दना कर पठन अथवा प्रतिलिपि करते हैं। 'सुक्' (सुत्त) या 'विने' (विनय) वे लिए इतना आदर नहीं किया जाता है, क्योंकि इनका उपदेश भगवान ने मनुष्य—भिक्षु, भिक्षुणी, श्रामणेर, श्रामणेरी, उपासक और उपासिकाओं को उद्देश्य कर दिया है। खामति भाषा में प्राप्त 'आफिथाम्मा चेत्-क्येम्' (सप्त अभिधम्म) ये हैं : 1. आफिथाम्मा साङ्खानि

---

1. यं देवदेवो देवानं देसेत्वान यतो पुन,
थेरस्स सारिपुत्तस्स समाचिक्खि विनायको।
अनोतत्तदहे कत्वा उपट्ठानं महेसिनो,
यं च सुत्वान सो थेरो आहरित्वा महीतलं।
भिक्खुनं पयिरुदाहासि इति भिक्खूहि धारितो,
संगीतिकाले संगीतो वेदेहमुनिना पुन।—अट्ठसालिनी, पृ० 2.

(अभिधम्मसंगणि), 2. आफिथाम्मा विफाङ् (अभिधम्म विभंग), 3. आफिथाम्मा थातुकाथा (अभिधम्म धातुकथा), 4. आफिथाम्मा पुकालापिङ्ञिप् (अभिधम्म पुग्गलपञ्ञत्ति), 5. आफिथाम्मा काथावात्थु (अभिधम्म कथावत्थु), 6. आफि-थाम्मा-याम्यिक् (अभिधम्म यमक) और 7, आफिथाम्मा पाथान (अभिधम्म पट्ठान)।

उक्त 'आफिथाम्मा चेत्-क्येम्' ग्रन्थों में पालि के साथ केवल नाम में साम्य है। पालि अभिधम्म पिटक की विषय-वस्तु से इन में कोई साम्य नहीं है। खामति 'आफिथाम्मा चेत्-क्येम्' का आरंभ बुद्धत्व प्राप्ति के छह/सात साल बाद भगवान बुद्ध की 'आफिथाम्मा' देशना के लिए तावतिंस देवलोक गमन से होती है। आगे सातों खण्ड आफिथाम्मों का पालि के साथ तुलना करते हुए विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

आफिथाम्मासाङ्खानि (धम्मसंगणि)

खामति धर्म साहित्य परम्परा में भी अभिधम्म-पिटक को सात खण्डों में विभक्त किया गया है। 'आफिथाम्मासाङ्खानि' प्रथम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। पालि धम्मसंगणि कीं विषय वस्तु चार काण्डों में विभाजित की गई है: 1. चित्तु-प्पाद-कण्ड, 2. रूप-कण्ड, 3. निक्खेपकण्ड और 4. अत्थुद्धार-कण्ड। पहले दो काण्डों में मानसिक और भौतिक जगत की अवस्थाओं का कुशल, अकुशल और अव्याकृत के रूप में विश्लेषण है। दूसरे काण्ड में अव्याकृत के अधूरे विवेचन को पूरा किया गया है। तीसरे और चौथे काण्डों में इनका संक्षेप और शेष 121 वर्गों के स्वरूप को प्रश्नोत्तर के रूप में समझाया गया है। चूंकि धम्मों की गणना कुशल, अकुशल आदि वर्गों में करने के अतिरिक्त स्वयं उनके स्वरूप का भी विश्लेषण धम्मसंगणि में किया गया है।

किन्तु खामति 'आफिथाम्मासाङ्खानि में पालि 'धम्मसंगणि' जैसे धम्म का विश्लेषण नहीं हुआ है। इस ग्रन्थ में कांड आदि की कोई व्यवस्था नहीं है। ग्रन्थ के आरंभ में काय, वची और मनो कर्मों को कुशल एवं अकुशल धर्मों की व्याख्या है। कुशल कर्म करने वाले निर्वाण जाते हैं और अकुशल कर्म करने वाले नरक गामी होते हैं। इन्हीं की तुलना कर आगे ग्रन्थ में धर्म-कथाएं प्रारंभ होती हैं। उदाहरण के लिए हमने यहां दो धर्म कथाओं का संक्षिप्त अनुवाद प्रस्तुत किया है। 'आफिथाम्मासाङ्खानि' में उपमा कथाओं के माध्यम से कुशल एवं अकुशल कम्मपथों पर प्रकाश डाला गया है, इसीलिए खामति भाषा की 'आफिथाम्मासाङ्-खानि' को सर्वसाधारण लोग भी समझ लेते हैं, 'चाउचेले' (पाठक) से इसे वचवा-कर स्त्रियां धर्म कथाएं श्रवण करती हैं।

विषय वस्तु

'आफिथाम्मासाङ्खानि' ग्रन्थ कुशल एवं अकुशल कम्मपथों से आरंभ होता है। दस अकुशल कम्मपथ निम्न प्रकार तालिका द्वारा समझा जा सकता है :

1. पाणतिपाता
2. अदिन्नादाना —3 कायकम्म (काय-दुच्चरितं)।
3. कामेसु मिच्छाचारा
4. मुसावादा
5. पिसुणावाचा —4 वचीकम्म (वची दुच्चरितं)।
6. फरुसावाचा
7. सम्फप्पलाप
8. अभिज्झा
9. व्यापाद —3 मनोकम्म (मनो दुच्चरितं)।
10. मिच्छादिट्ठि

और दस प्रकार के कुशल कम्मपथ निम्न प्रकार हैं :

1. पाणातिपाता वेरमणी
2. अदिन्नादाना वेरमणी —3 कायकम्म (काय सुचरितं)।
3. कामेसुभिच्छाचारा वेरमणी
4. मुसावादा वेरमणी
5. पिसुणवाचा वेरमणी —4 वचीकम्म (वची सुचरितं)।
6. फरुसावाचा वेरमणी
7. सम्फघलाप वेरमणी
8. अभिज्झा वेरमणी
9. व्यापाद वेरमणी —3 मनोकम्म (मनो सुचरितं)।
10. मिच्छादिट्ठि वेरमणी

पोथी के प्रारंभ में 6 पृष्ठों तक इन्हीं कम्मपथों का विवरण किया गया है। अकुशल धर्मों को 'तक्चालितं' (दुच्चरितं) कहा गया है और कुशल धर्मों को 'सुक्चालित' (सुचरित) कहा गया है।

"निर्धन होने पर लोग उसका मजाक उड़ाते हैं, धनवान होने पर भी उससे द्वेष भाव रखते हैं। बुरे कर्म कर भविष्य में क्या होगा, उसे लोग नहीं सोचते हैं। काय, वची और मन से अकुशल कर्म करने वाले, चार प्रकार नरक 'आपिलेपा' (आपि—अपाय/नरक; लेपा—चार प्रकार) से कोई भी छुटकारा नहीं पा सकते हैं। इन चार नरक से छुटकारा पाकर आने पर भी उसे नाना प्रकार की समस्याएं झेलनी पड़ती हैं।"

कुशल कर्म करने वाले लोग अवश्य ही निर्वाणगामी होते हैं। कुशल कर्म का फल सुखदायी होता है और अकुशल कर्म का फल दु:खदायी। जो कृपण होता है, वह कुंठित होता है। वयोंवृद्धों का आदर न करने वाले लोग हीन कुल में जन्म ग्रहण करते हैं। ऐसे भी लोग होते हैं, सत्य वचन नहीं सीखते हैं, ज्ञानी लोगों के साथ सम्पर्क भी नहीं करते हैं।

जो व्यक्ति सूरा: मेरय मद्य पान करता है, वह अपने माता-पिता, भाई, बान्धव को कष्ट देता है। बुद्ध, धम्म, संघ पर विश्वास नहीं करता है। ऐसे लोगों का नरक में जाने पर लौट आना असंभव होता है। आ भी जाएं, तो भी वे पशु-पक्षी, भुत, प्रेत, राक्षस के रूप में जन्म ग्रहण करते हैं। यदि वह मनुष्य के गर्भ में जन्म करता है तब भी वह गूंगा, बहरा, पंगु, बिकलांग होता है।

"प्राचीन काल में वाराणसी में दो मिश्र रहते थे। एक बौद्ध उपासक था और दूसरा बलि चढ़ाकर देवों की पूजा करने वाला। एक दिन अपने-अपने मतवादों को लेकर उनमें विवाद खड़ा हुआ। दोनों अपने-अपने मत को उत्तम मानते थे। इस प्रकार वाद-विवाद होते-होते वे झगड़ने लगे। दोनों फैसले के लिए राजा के पास गए और दोनों ने राजा को विवाद का कारण बतलाया। राजा ने बहुत सोच विचार कर उन्हें कल आने के लिए कहा।

इधर राजा ने पके हुए केले के एक गुच्छे में से केले को निकाल कर छिलके में विष्टा भर कर बन्द कर दिया और एक नारियल में से पानी एवं मज्जा निकाल कर उसमें सोना, चांदी, मणि-रत्न आदि भरकर रखा। दूसरे दिन उन विवादियों के आने पर राजा ने बलि विधान करने वाले को नारियल दिया और बौद्ध उपासक को विष्टा भरा हुआ केले का गुच्छा।

नारियल पाने वाला मन ही मन सोचता रहा—राजा ने मुझे एक नारियल दिया और मेरे साथी को एक गुच्छा केला। मेरे बलि माँगने वाले देव-देवियां असंख्य हैं। एक से मैं क्या करूंगा? यह सोच कर उसने मित्र से केले का गुच्छा लेकर उसे कीमती नारियल दिया। और दोनों ने अपने घर का रास्ता पकड़ा। घर पहुंच कर देवता के नाम पर बलि चढ़ाने वाला केले को तोड़कर देखता है, तो केले में से मनुष्य विष्टा निकलता है और उधर बौद्ध उपासक ने त्रिरत्न की पूजा के लिए नारियल फाड़ा तो उसे धन-सम्पत्ति प्राप्त हुआ।

एक सप्ताह बाद राजा ने उन दोनों को फिर बुलाकर पूछा, तो बौद्ध उपासक ने कहा—'महाराज, मुझे त्रिरत्न की कृपा से नारियल से धन-सम्पत्ति प्राप्त हुआ किन्तु उसे आपने मेरे बलि पूजा करने वाले मित्र को दिया था। उसी के आग्रह करने पर मैंने केले का गुच्छा उसे देकर नारियल लिया था।' वह देवता को बलि चढ़ाने वाला लज्जा के कारण आत्म-हत्या कर मर गया। वह उसी समय 'लोहा-कुम्फी' (लोहकुंभी) नामक नरक में गिर गया।"

एक बार आनन्द ने भगवान से पूछा—"हे भगवान ! हमने कुशल धर्म और अकुशल धर्म कुछ भी नहीं समझा है। अनुकम्पा कर प्राणी मात्र के हित के लिए उसे कहें !" उत्तर में भगवान कहते हैं—"जो व्यक्ति पितृ-मातृ हत्यारा है, जिसने अरहत की हत्या की हो, जिसने बुद्ध को मार कर लोहित निकाला हो, जिसने भिक्षुणी को दूषित किया हो, जिसने संघ-भेद किया हो। ऐसे लोग महापापी होते हैं। और संघ दान में बाधा पहुंचाते हैं। विहार परिवेण में जूता, चप्पल पहनकर प्रवेश करते हैं, ये सभी अकुशल कर्म हैं। ऐसे लोग नौ कोटि वर्षों तक नरक में कष्ट भोगते रहते हैं। ऐसे लोग कभी भी बुद्ध का दर्शन नहीं कर सकते हैं। देवी-देवताओं के नाम पर बलि चढ़ाकर पशु-प्राणी की हत्या करने वाले तो और भी नरक में कष्ट उठाते हैं। असंख्य कल्प बीत जाने पर भी वैसे लोग संसार में जन्म नहीं ग्रहण कर सकते हैं !"

फिर भगवान उपमा कथा द्वारा समझाते हैं—"दीपंकर बुद्ध के समय में वाराणसी नगर में ब्रह्मदत्त नाम का राजा राज्य करता था। उस समय लोग मिच्छादिट्ठि आपन्न थे। लोगों ने सुमार्ग को नहीं पहचाना था, पशुवत रहते थे। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पशु-बलि चढ़ाते थे। बलि चढ़ाने वाले पुजारी ही समाज में प्रमुख होता था। गाय, बैल, सुअर, मुर्गा आदि प्राणियों की बलि चढ़ती थीं। बलि चढ़ाकर अपने पूर्वजों का नाम उच्चारण करते थे। प्राणियों को जीवित ही जला दिया जाता था। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए अनेक विधियों का वर्णन पोथी में हुआ है।

ब्रह्मदत्त राजा ने एक दिन उन बलि विधान करने वाले पुजारियों को बुलाया फिर राजा ने एक सुपारी अपने मुंह में रखकर एक ओर के गाल को फुलाकर कहा, "पुजारियों, तुम लोग मेरे गाल में जो फोड़ा निकला है उसे अपने देवताओं से पूछ कर इसका निर्णय करो कि यह फोड़ा कैसे ठीक हो सकता है !" इस पर पुजारियों ने राजा से कहा--"महाराज, इसे ठीक करने के लिए पशुओं की बलि चढ़ाकर पूजा करनी चाहिए। तब अपने आप फोड़ा ठीक हो जाएगा।" पुजारियों की बातें सुन ने के बाद राजाने अपने मुंह से सुपारी निकाल दी और उन्हें मिथ्या-वादी कहकर सजा देने का आदेश दिया। पुजारियों को गले तक पानी में डुबो कर चाबुक से मारा। उनसे मिथ्यादृष्टि परित्याग करने के लिए कहा। उस राजा की मृत्यु के बाद पुनः लोग मिथ्यावादी होने लगे।

मिथ्यादृष्टि वाले एवं अकुशल कर्म करने वाले को कभी भी बुद्ध का दर्शन नहीं होता है। मिथ्यावादियों को भविष्य में होने वाले बुद्ध का दर्शन नहीं होता है। मिथ्यावादियों को भविष्य में होने वाले बुद्ध 'आलिमेतिया' (आर्य-मैत्रेय) के प्रमुख शिष्य सम्यक् दृष्टि में प्रतिष्ठित करेंगे।

पोथी के अन्त में —"जो व्यक्ति 'सिन्-हा' (पंचशील), 'सिन्-पेत्' (अष्टांग-

शील), 'सिन्-सिप्' (दसशील) तो ग्रहण करता है, परन्तु प्राणी के प्रति मैत्री भाव नहीं रखता है। वह सुमार्ग पर प्रतिष्ठित नहीं हो सकता है। इसीलिए निर्वाण प्राप्ति की इच्छा करने वाले को चाहिए कि अकुशल धर्मों का परित्याग कर कुशल-धर्मों का पालन करें। मिच्छादिट्ठि को त्यागकर सम्मादिट्ठि का आचरण करें।

आफिथाम्मा विफाङ् (विभंग)

खामति भाषा का 'आफिथाम्मा विफाङ्' भी 'चेत्-क्येम्' का दूसरा ग्रन्थ है। 'विभंग' का अर्थ है विस्तृत रूप से विभाजन या विवरण। पालि विभंग की विषय-वस्तु 18 विभागों या विभंगों में विभक्त की गई है, जिनमें से प्रत्येक अपने आप में पूर्ण है। पालि विभंग के विभंगों के नाम इस प्रकार हैं: खन्ध विभंग, आयतन विभंग, सच्च विभंग, इन्द्रिय विभंग पच्चयाकार विभंग, सतिपट्ठान विभंग, सम्मप्पाधान विभंग, इद्धिपाद विभंग, बोज्झंग विभंग, भग्ग विभंग, झान विभंग, अप्पमज्ज विभंग, सिक्खापद विभंग, पटिसंभिदा विभंग, त्राण विभंग, खुद्दकवत्थु विभंग और धम्म हृदय विभंग।

प्रत्येक विभंग का नाम उसकी विषय वस्तु के स्वरूप का सूचक है। प्रायः प्रत्येक ही विभंग तीन अंगों में विभक्त हैं: 1. सुत्तन्त भाजनिय, 2. अभिधम्म भाजनिय और 3. पञ्हपुच्छकं। सुत्तन्त भाजनिय में निरुक्त की जाने वाली विषय-वस्तु का सुत्तन्त आधार दिखलाया गया है, अर्थात् जिस विषय का वर्णन करना है वह किस सीमा तक या किस स्वरूप में सुत्त-पिटक में पाया जाता है, इसका निर्देश किया गया है। अभिधम्म भाजनिय में उसकी अभिधम्म या उसके आधार स्वरूप 'मातिका' के अनुसार व्याख्या है। 'पञ्ह-पुच्छक' में 'द्विक', 'त्रिक' आदि शीर्षकों के रूप में प्रश्नोत्तर है, जिनमें सम्पूर्ण निरूपित विषय का सिंहावलोकन एवं संक्षेप है।

परन्तु खामति 'आफिथाम्मा विफाङ्' का विश्लेषण पालि-विभंग की तरह नहीं हुआ है। ग्रन्थ में भगवान बुद्ध के अरहत सम्यक् सम्बुद्ध होने से प्रारंभ होता है। यह निबन्ध शैली की रचना है। कुशल कर्म करने वाले को सुगति मिलती है और अकुशल कर्म करने वाले को दुर्गति। ध्यान भावना करते हुए सुमार्ग की प्राप्ति होती है। 'आफिथाम्मा विफाङ्' में कथा/कहानी की उपमा नहीं है, किन्तु शब्दों एवं वाक्यों की तुलना भरमार है। पालि विभंग में 18 विभंगों का विश्लेषण हुआ है, किन्तु 'आफिथाम्मा विफाङ्' में इनका यत्र-तत्र उल्लेख मात्र हुआ है। क्रम-बद्ध रूप से विषयों का विश्लेषण नहीं हुआ है।

विषय वस्तु

ग्रन्थ में सर्व प्रथम भगवान बुद्ध को क्यों अरहत कहा जाता है? उन्होंने दस

पारमिताएं परिपूर्ण की हैं। सभी क्लेशों को नष्ट किया है। ज्ञान परिपूर्ण होने के कारण वे देव-मनुष्य को निर्वाण का मार्ग दर्शा सकते हैं। सभी के प्रति समान भाव रखते हैं। उन्होंने दुःखों को दूर कर लिया है। इसीलिए उन्हें क्लेशों से मुक्त हैं, कहकर सम्यक्-सम्बुद्ध या अरहत कहा जाता है। अनित्य, दुःख और अनात्म का चिन्तन कर विपस्सना भावना कर वे सम्बुद्ध हुए हैं। प्राणी की उत्पत्ति के लिए धर्म सहायक होता है। कुशल धर्म का सम्पादन न करने वाले जन्म-मृत्यु के अधीन होते हैं। जो व्यक्ति अधार्मिक होता है, उसकी मृत्यु जल्द होती है। यह मनुष्य शरीर सांप के कैंचुल छोड़ने की भांति है. जब तक निर्वाण नहीं मिलता है तब तक उसे जन्म-मृत्यु होती रहती है। जैसे सुबह सूर्य उगता है और शाम को डूबता है, वैसे ही मनुष्य भी जन्म लेता है और मरकर इसी संसार में भटकता रहता है।

इस जन्म में 'काममिथ्याचार' करने वाले, अगले जन्म में स्त्री होकर जन्म लेते हैं। या नपुंसक होते हैं, या तो पशु योनि में जन्म होता है। यह सभी 'कुसो' (कुशल) और 'आकुसो' (अकुशल) कर्म का फल है। पूर्व जन्म के कर्म अनुसार सत्व का जन्म होता है। अज्ञानता के कारण लोग धन-सम्पत्ति जमा करते हैं।

फिर ग्रन्थ में चार उपादान—1. कामुप्पादान, 2. दिट्ठुपादान, 3. सीलब्बतु-प.दान और 4. अत्तवादुपादान का वर्णन होता है। देवता और मनुष्यों का मन अहंकारी होता है। अविद्या के कारण लोग कष्ट उठाते रहते हैं। लोग देव-भूमि, रूप-भूमि, अरूप-भूमि में जन्म ग्रहण करने की प्रार्थना करते हैं। परन्तु निर्वाण की कामना नहीं करते हैं। कामभव, रूपभव की कल्पना करते हैं। इन लोकों से सत्व पुनः गिरकर संसार में जन्म ग्रहण करते हैं, आयु-क्षय होने पर सभी को वह स्थान त्यागना पड़ता है। यह धान खेत रोपण कर अगले साल पुनः खेत में धान की मोरी लगानी पड़ती है, वैसे ही सत्व को भी करना पड़ता है।

कामभूमि का मार्ग सुगम होता है। हर कोई सुमार्ग पर जा सकता है। कोई किसी को रोक नहीं सकता है. जो विपस्सना भावना कर निर्वाण की कामना करता है, वह अवश्य ही अपनी मनोकामना पूरी कर सकता है, ज्ञानी लोग निर्वाण-पथ को जल्द समझ लेते हैं। अज्ञानी को जितना भी समझा दो वह अपनी मूढ़मति को नहीं छोड़ता है। तृष्णा, क्लेश आदि को निर्मूल किया जाय तो निर्वाण का पथ साफ होता है। लोग भ्रम में पड़कर रक्त से लथ-पथ हड्डी को ही मांस समझ बैठते हैं। वास्तव को नहीं समझते हैं।

लोभ, दोष, मोह के कारण प्राचीन काल में एक अहंकारी आदमी ने ऋषि की हत्या की। उसके फलस्वरूप वह हत्यारा अवीचि नरकगामी हुआ। कायकम्म, वचीकम्म, मनोकम्म तथा दस अकुशल कम्मपथ और दस कुशल कम्मपथों का वर्णन भी पोथी में हुआ है। आधार शून्य होने पर वह सुगति को प्राप्त नहीं कर सकता है। उसे आधार चाहिए, बिना आधार से कोई भी अपने पथ में अग्रसर

नहीं हो सकता है। कुशल कर्म का सम्पादन करने पर निर्वाण का मार्ग खुल जाता है। विपस्सना धम्म की साधना करनी चाहिए। विपस्सना ही एक मात्र निर्वाण का मार्ग है और अनित्य, दुःख और अनात्म की भावना कर दस अशुभ—उद्धुमातकं, विनीलकं, विपुब्बकं, विच्छिदकं, विक्खायितकं, विक्खितकं, हत-विक्खितकं, लोहितकं, पुलुवकं, अट्ठिकं को आधार बनाकर विपस्सना का अभ्यास करते हुए, अष्टांगिक मार्ग को समझ लेने पर निर्वाण की प्राप्ति होती है। इसे गांव में या शहर में खोजने पर प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इसे प्राप्त करने के लिए अरण्य में पंशूकुल धारण कर विपस्सना करते हुए खोजना चाहिए। निर्वाण द्वार को खोलने के लिए अशुभ भावना ही उत्तम मार्ग है।

चार सतिपट्ठान—कायनुपस्सना, वेदनानुपस्सना, चित्तानुपस्सना और धम्मानुपस्सना है। ये तेज धार वाले तलवार जैसे होते हैं। चित्त को विशुद्ध कर सतिपट्ठान की भावना करनी चाहिए, तभी योगी निर्वाण के मार्ग को साफ कर सकता है। वाराणसी जाना हो तो अकेले जाना चाहिए। अधिक लोगों के साथ में जाने पर बाधाएं उत्पन्न होती हैं। साथ में जाने वाले लोग—लोभ, दोष, मोह हैं। वैसे ही निर्वाण जाने के लिए भी सब कुछ छोड़कर—काम, क्लेश, तृष्णा का परित्याग कर मार्ग को साफ करना चाहिए। निर्वाण मार्ग का आहारशील, समाधि और प्रज्ञा होते हैं। पंचशील, अष्टांगशील आदि निर्वाण मार्ग के पथ-प्रदर्शक होते हैं। लोकुत्तर चित्तों के उत्पन्न होने पर रास्ता साफ हो जाता है।

मूल पोथी में खन्ध, आयतन, धातु, सच्च, इन्द्रिय, पच्चयाकार, सतिपट्ठान, सम्मप्पधान, इद्धिपाद, बोज्झंग, मग्ग, ज्ञान, अप्पमञ्ञ, सिक्खापद, पटिसंभिदा, ञाण, खुद्दकवत्थु और धम्महृदय, इन 18 विभंगों के नामों का उल्लेख यत्र-तत्र हुआ है। परंतु पालि विभंग में जैसा क्रमबद्ध विभाजन है, वैसा खामति आफिथाम्मा विफाङ् में नहीं हुआ है। इस पोथी में अभिधम्म के विषय को कामचलाऊ रूप में प्रस्तुत किया है। केवल कुछ अभिधार्मिक शब्दों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। खामति एवं पालि भाषा की कुछ जानकारी रखने वाले ही इस पोथी के विषय वस्तु को समझ सकते हैं। मूल पोथी में पालि के शब्द अत्यधिक मात्रा में हैं। किन्तु ये शब्द खामति करण हैं।

आफिथाम्मा थातुकाथा (धातुकथा)

पालि धातुकथा में खन्ध, आयतन धातु, यही धातुकथा के विषय हैं। इसमें खन्ध, आयतन और धातुओं का सम्बन्ध धर्मों के साथ दिखलाया गया है। इन धर्मों की संख्या उसकी 'मातिका' के अनुसार 114 हैं। जो इस प्रकार हैं—5 स्कन्ध, 12 आयतन, 18 धातुएं, 4 सत्य, 22 इन्द्रिय, प्रतीत्य-समुत्पाद, 4 स्मृति-प्रस्थान, 4 सम्यक प्रधान, 4 ऋद्धिपाद, 4 ध्यान, 4 अपरिणाम, 5 इन्द्रिय, 5 बल, 7 बोध्यांग,

8 आर्य मार्ग के अंग (आर्य अष्टांगिक मार्ग), स्पर्श, वेदना, संज्ञा, चेतना, चित्त, अधिमोक्ष और मनसिकार। किस-किस स्कन्ध, आयतन में कौन-कौन धर्म सम्मिलित (संगहित), असम्मिलित (असंगहित), संयुक्त (सम्प्रयुक्त) या वियुक्त (विप्पयुत्त) आदि हैं, इसी का विवेचन पालि धातुकथा के 14 अध्यायों में प्रश्नोत्तर ढंग से किया गया है।

परन्तु खामति 'आफिथाम्मा धातुकाथा' का विश्लेषण पालि थातुकथा की भांति नहीं हुआ है। दस पारमिताएं परिपूर्ण करने के बाद बुद्ध को ज्ञान प्राप्त होता है। वे गंभीर अभिधम्म देशना के लिए तावतिंस देवलोक में अपनी जन्मदात्री मां 'सान्तुकसिता' (महामायादेवी) को कुशल और अकुशल धर्म सुनाते हैं। उनके मुंह से 'विफाङ्' देशना की समाप्ति के बाद 'आफिथाम्मा थातुकाथा' का उपदेश देते हैं, पोथी में नयमातिका, अब्भन्तर मातिका, नयमुख मातिका, लक्खणमातिका, बाहिरमातिका, इन पांच अभिधम्म मातिकाओं का उल्लेख हुआ है। खामति पोथी में उल्लेख मिलता है कि इसका अनुवाद 'वाखेंग' (बर्मी) भाषा से खामति भाषा में बहुजन हिताय के लिए किया गया है। पोथी में अनित्य, दु:ख, अनात्म की भावना कर निर्वाण का मार्ग दर्शाया गया है। मूल पोथी में ओमातान्ती सुन्दरी की कथा विस्तृत रूप में प्रस्तुत की गई है। दूसरी कथा भगवान बुद्ध के पिण्डाचार के लिए निर्धन उपासक के यहां जाने की आती है। इसी प्रसंग में भगवान बुद्ध इन्द्र को सम्बोधन कर देशना देते हैं। खामति 'आफिथाम्मा थातुकाथा' में कथा एवं कहानियों की उपमा द्वारा शील, समाधि को समझाने की चेष्टा की गई है। इस प्रकार पालि धातुकथा के साथ खामति 'आफिथाम्मा-थातुकाथा' में कोई साम्य नहीं देखा जाता है। इसमें खन्ध, आयतन और धातु विषय की चर्चा नहीं हुई है।

विषय वस्तु

चार असंख्य वर्षों तक साधना कर, दस पारमिताएं परिपूर्ण कर भगवान सम्यक सम्बुद्ध हुए, पूर्व जन्म के कुशल कर्म के कारण ही भगवान बुद्ध के अग्रश्रावक, महाश्रावक होकर जन्म ग्रहण कर शिष्य-प्रशिष्य हुए। भगवान बुद्ध के मन में वितर्क लगा कि 'अभिधम्म का विषय अति गंभीर है, इसे हर कोई समझ नहीं सकता है।' इसीलिए अपनी जन्मदात्री मां महामाया 'सान्तुकसिता' को अभिधम्म देशना के लिए तावतिंस देवलोक जाते हैं। महामाया भी धर्म श्रवण के लिए पण्डुकम्बलशिलासन पहुंचकर आसन पर बैठती हैं। देव एवं ब्रह्म लोक के सभी देवता गण अभिधम्म देशना श्रवण के लिए आते हैं।

देवताओं के बीच भगवान बुद्ध विराजमान होते हैं। जब भगवान के मुंह से अभिधम्म का उच्चारण होता है, तब देवतागण अक्षत पुष्प से उनकी पूजा करते

हैं। उनके मुंह से पहले 'विफाङ्' (विभंग) की बातें निकलती हैं। विभंग देशना के बाद वे 'आफिथाम्मा थातुकाथा' की देशना करते हैं। धर्म श्रवण कर, श्रद्धा उत्पन्न होने के कारण देवतागण भगवान को अपने मुकुट एवं वस्त्र दान करने लगते हैं।

वे दुक-मातिका की व्याख्या करते हैं। फिर नयमातिका, अब्भन्तर मातिका, नयमुखमातिका, लक्खणमातिका, बाहिरमातिका, इन पांच मातिकाओं की देशना करते हैं। इन पांच अभिधम्म मातिकाओं को समझने वाले लोग बहुत ही कम होते हैं। जब इस पोथी की रचना नहीं हुई थी, तब हमारे लोग 'धर्म क्या है ?" उसे नहीं समझते थे। उन्हीं लोगों को समझाने के लिए इसे बर्मी भाषा से खामति भाषा में अनुवाद की गई है।

सबसे पहले रूपक्खन्ध को ही लेते हैं। रूपक्खन्ध को समझाना बहुत ही कठिन है। सत्व के मां के गर्भ में प्रतिसन्धि ग्रहण सरसों के दाने से भी छोटा होता है। छह आयतन के कारण ही पटिसन्धि होती है। कुछ लोग ऐसे हैं, जो बुद्ध, धम्म और संघ में विश्वास नहीं करते हैं। जो लोग अनित्य, दुःख एवं अनात्म की भावना कर सुमार्ग पर जाते हैं, वे निर्वाण प्राप्त करते हैं। आयतन और विज्ञान के कारण सभी सत्व जाल में फंस जाते हैं। अकुशल कर्म करने वाले ब्याध—पशु-पक्षियों को देखता है, तो उन्हें अस्त्र-शस्त्रों से मारता हैं या फांद लगाकर पकड़ता है। जिस पशु या पक्षी में कुछ चेतना रहती है, वे उस स्थान से हट जाते हैं। वैसे स्थान में कभी नहीं आते हैं। जो ज्ञान शून्य रहता है, वह ब्याध के चंगुल में फंस जाता है। वैसे ही ये मनुष्य भी हैं, जो इस दुखमय संसार में भटकते रहते हैं। जो लोग देवभूमि, ब्रह्मभूमि की कामना करते हुए निर्बाण की प्रार्थना करते हैं, वे निर्वाण मार्ग को पा ही लेते हैं, आगे पोथी में उपमा कथाओं के माध्यम से सुमार्ग को समझाया गया है। उदाहरण के लिए दो कथाओं का सार निम्न प्रकार है :

(1) आलिक्‌था नामक देश में सिवालेत राजा राज्य करता था। वह अभी कुमार ही था। उसी राज्य में नाङ् ओमातान्ती (ओमादन्ती) नाम की एक अति रूपवती कन्या थी। उसे ही राजा ने पटरानी बनाने के विचार से कन्या याचना के लिए अपने यहां से चार दूत भेजे। वे चारों नाङ् ओमातान्ती के रूप-लावण्य को देखकर मूछित हुए। इसके कारण उन दूतों को कन्या के घर बहुत अपमान जैसा अनुभव हुआ, तो उन चारों ने दूसरे दिन लौटकर राजा से कहा कि—"महाराज, वह कन्या सुन्दर नहीं है और शील-गुण भी उसमें नहीं हैं। उससे विवाह करना आप जैसे के लिए शोभा नहीं देता है। आप अन्यत्र से भी रानी पा सकते हैं।"

राजा उनकी बातों पर मान गया। उधर नाङ् ओमातान्ती ने उसी देश के सेनापति आफिपाताका से विवाह कर लिया। एक दिन राजा ने घूमने जाते समय नाङ् ओमातान्ती को एक झलक मात्र देखा तो, वह उसके रूप-लावण्य पर पागल

हो गया। राजा ने अपने सेनापति से कहा—"नाङ् ओमातान्ती तो मेरी पटरानी होने योग्य है।" इस पर सेनापति आफिपाताका राजा को अपनी पत्नी देने के लिए तैयार हुआ। किन्तु राजा दूसरे की पत्नी लेना भी ठीक नहीं समझता था। यह भी एक प्रकार का काममिथ्याचार, अकुशल कर्म है। पोथी में इस कथा को विस्तृत रूप से सजाकर प्रस्तुत की गई है।

(2) एक बार भगवान बुद्ध एक निर्धन परिवार में आहार ग्रहण के लिए जा रहे थे। इतने में देवलोक से देवराज इन्द्र ने आकर उस निर्धन आदमी का रूप-धारण कर भगवान के पात्र में आहार दान किया। देवलोक के चावल होने के कारण आहार से सुगन्ध निकल रहा था। इस पर भगवान को सन्देह हुआ, तो उन्होंने आहार दान करने वाले को ध्यान से देखा तो पहचानने में देर न लगी। इस पर भगवान ने इन्द्र से कहा—"उस निर्धन आदमी के कल्याण के लिए मैं उसके यहां पिण्डपात ग्रहण करने जा रहा था, तो तुमने रास्ते में बाधा क्यों पहुंचायी ? तुम्हें तो सभी कुछ प्राप्त है, वह तुम्हारे पूर्व जन्म में किए गए पुण्य कर्म का फल है!" तब इन्द्र ने भगवान से क्षमा मांगी। इसी प्रसंग में भगवान ने शील, समाधि आदि विषयों का विवरण कर सभी को धर्म में प्रतिष्ठित किया।

आफिथाम्मा पुकालापिङ्ञिप् (पुग्गलपञ्ञत्ति)

'पुग्गलपञ्ञत्ति'/'पुद्गल-प्रज्ञप्ति' का अर्थ है पुद्गलों या व्यक्तियों सम्बन्धी ज्ञान अथवा उनकी पहचान। पालि 'पुग्गलपञ्ञत्ति' में व्यक्तियों के नाना प्रकारों का वर्णन किया गया है। जो मूल बुद्ध धर्म के नैतिक दृष्टिकोण को समझने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में दस अध्याय हैं, जिन में प्रथम में एक-एक प्रकार के व्यक्तियों का निर्देश है, दूसरे में दो-दो प्रकार के और इसी प्रकार क्रमश: बढ़ते हुए दसवें अध्याय में दस-दस प्रकार के व्यक्तियों का निर्देश है। चार आर्य-श्रावक पृथग्जन, सम्यक्-सम्बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध, अशैक्ष्य, आर्य, अनार्य, स्रोत-आपन्न, सकृदा-गामी, अनागामी, अरहत् आदि के रूप में व्यक्तियों का विभाजन किया गया है। और खामति 'आफिथाम्मा पुकालापिङ्ञिप्' में खन्ध-पञत्ति, आयतनपञ्ञत्ति धातुपञ्ञत्ति आदि मातिकाओं का उल्लेख मात्र हुआ है। इन्हें समुद्र जैसा गंभीर एवं विस्तृत कहकर—जाति, जरा-मरण का उल्लेख आता है। मनुष्य के पंच-स्कन्ध ही दुखों के मूल कारण हैं। इन दुखों से छुटकारा पाने के लिए त्रिरत्न की शरण लेनी पड़ती है।

आगे पोथी में उपमा कथाओं का उदाहरण है। 'चाउथाम्मा सुङ्ता', 'मण्डुक देवता' आदि की कथाएं आती हैं। पोथी के अन्त में श्रद्धा-दान का वर्णन आता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि खामति भाषा की 'आफिथाम्मा-पुकालापिङ्ञिप् और पालि 'पुग्गलपञ्ञत्ति' में कोई साम्य नहीं है। नाम में साम्य होने पर भी

विषय-वस्तु में कोई समानता दृष्टिगोचर नहीं होती है। खामति 'आफिथाम्मा पुकालापिङ्ञिप्' को कथामंजूषा कहना ही उपयुक्त होगा। कारण इसमें कथाओं के माध्यम से धर्म को समझाया गया है।

विषय-वस्तु

ग्रन्थ के आरंभ में भगवान बुद्ध ने अभिधम्म देशना के लिए तावतिंस देव-लोक में पण्डुकम्बल-शीलासन में बैठकर, महामायादेवी को प्रमुखाकर देवताओं को धातु-कथा के साथ पुग्गलपञ्ञत्ति का उपदेश किया। फिर ग्रन्थ प्रारंभ होता है, छह पञ्ञत्ति से: खन्धपञ्ञत्ति, पांच प्रकार; आयतनपञ्ञत्ति, बारह प्रकार; धातुप-ञ्ञत्ति, अट्ठारह प्रकार; सच्चपञ्ञत्ति, चार प्रकार; इन्द्रियपञ्ञत्ति, बाईस प्रकार; और पुग्गलपञ्ञत्ति, एक से लेकर दस तक उल्लेख है। ये सभी धर्म समुद्र जैसे गंभीर एवं विस्तृत हैं। जाति, जरा, व्याधि और मरम विषयों को लेकर विवरण प्रस्तुत किया गया है। मनुष्य-जीवन को चार भागों में विभक्त किया है। प्रथम बीस वर्ष, द्वितीय बीस वर्ष, तृतीय बीस वर्ष और चतुर्थ बीस वर्ष से मनुष्य की आयु अस्सी साल की होती है। तब उसे जरा, व्याधि और मरण का शिकार होना पड़ता है। पांच स्कन्ध ही दुःखों से परिपूर्ण हैं। इन दुःखों से रक्षा के लिए हमें त्रिरत्न में प्रतिष्ठित होना चाहिए, तभी उक्त दुःखों से मुक्ति पाकर सुमार्ग प्राप्त किया जा सकता है।

इसके बाद ग्रन्थ में 'चाउथाम्मासुङ्ता' (धम्मसुन्द), इस राजा को 'खा-थाम' (धर्म अन्वेषक) भी कहा जाता है। राजा की उपमा कथा वर्णित है। महाकस्सप बुद्ध के शासन का जब अन्त हुआ, तब वाराणसी के चाउ थाम्मासुङ्ता राजा ने धर्म की खोज की। राजा ने सुधर्म खोज के लिए घोषणा की, जो उत्तम धर्म की बातें कर सकता है, वह पुरस्कृत होगा। वाराणसी में तब कोई इसे बता नहीं सकता था। उसे धर्म श्रवण की बहुत इच्छा हुई। किसी के न मिलने के कारण, राजा स्वयं ही अपने राज्य का परित्याग कर सुधर्म की खोज में वह अरण्य में प्रवेश करता है। जाते हुए रास्ते में, राक्षस, पशु-प्राणी जो भी मिलते थे, उन सभी से धर्म सम्बन्धी प्रश्न करता था, "क्या तुम भगवान के उपदेश को जानते हो?" इस प्रकार सत्य की खोज में जाते हुए देवराज इन्द्र का आसन गरम हुआ, तो इन्द्र ने अपने सहस्र नेत्रों से देखा तो चाउ थाम्मासुङ्ता राजा सुधर्म की खोज में जा रहा है। उसी समय इन्द्र एक बड़े राक्षस का रूप धारण कर चाउ थाम्मासुङ्ता के सम्मुख खड़ा हुआ। डरपाने के लिए इन्द्र ने राजा को खाना चाहा। पर राजा ने राक्षस से भी धर्म की बातों पर ही प्रश्न किया। राजा के उत्तर में राक्षस ने कहा—"मुझे बड़ी भूख लगी है, पहले मैं तुझे खाऊंगा। फिर धर्म की बातें करूंगा!" राजा ने कहा, "यदि तू मुझे खा जाएगा तो धर्म कौन श्रवण करेगा?"

फिर राक्षस ने कहा—"तू यदि सचमुच ही धर्म श्रवण करना चाहता है, तो इस ऊंचे पहाड़ पर चढ़। मैं नीचे मुंह खोले रहूंगा; तू वहां से मेरे मुंह में कूद पड़ना।" राजा मान गया। वह पहाड़ पर चढ़कर राक्षस के मुंह में कूद पड़ा, तो इन्द्र ने उसे बीच में ही पकड़कर देवलोक पहुंचाया और वहां पण्डुकम्बलशिला में बिठाकर धर्म की बातें समझायीं। फिर राजा को पुनः वाराणसी में धर्मराज बनाया। तब से वह राजा अपनी प्रजाओं पर धर्मानुसार शासन करने लगा।

इसके बाद 'मण्डूक-देवता' (मेण्डक श्रेष्ठी) की कथा आती है। फिर चमगादड़ के धर्म-श्रवण की उपमा-कथा भी आती है। इस प्रकार यह ग्रन्थ नाना प्रकार की उपमा-कथाओं की मंजूषा है। आगे धम्म-खन्ध, धम्मायतन आदि को समझाते हुए उपमा कथाएं आती हैं।

ग्रन्थ के अन्त में भगवान बुद्ध के श्रावस्ती में जेतवन विहार में रहते समय भिक्षुओं को सम्बोधन कर चार आर्य सत्य एवं आर्य अष्टांगिक मार्गों को समझाया है। श्रावस्ती निवासी उपासक, उपासिकाओं को भी धर्म श्रवण कर श्रद्धा उत्पन्न हुई। उन लोगों ने संघ को परिक्खार दान किया। फिर वसुन्धरा देवी को साक्षी कर जल उत्सर्ग किया और बाद में इस पुण्य कर्म के प्रभाव से सुमार्ग को प्राप्त हुए।

आफिथाम्मा काथावात्थु (कथावत्थु)

पालि कथावत्थु में विरोधी 17 सम्प्रदायों के सिद्धान्तों को प्रश्नात्मक ढंग से पहले पूर्वपक्ष के रूप में उपस्थित किया गया है, फिर स्थविरवादी दृष्टिकोण से उनका खण्डन किया गया है। सिद्धान्तों के पूर्वापर-सम्बन्धी निर्वाचन में किसी निश्चित नियम का पालन नहीं किया गया है। कुल मिलाकर 'कथावत्थु' में विरोधी सम्प्रदायों के 216 सिद्धान्तों का खण्डन है, जो 23 अध्यायों में विभक्त किए गये हैं।

किन्तु खामति 'आफिथाम्मा काथावात्थु' में पालि 'कथावत्थु' की भांति सिद्धान्तों का खण्डन नहीं हुआ है। इसमें भी भगवान बुद्ध अभिधम्म देशना के लिए तावतिंस देवलोक जाते हैं। अपनी जन्मदात्री मां महामाया के सम्मुख कृतज्ञता व्यक्त करते हुए पंचशील के गुणों की व्याख्या करते हैं। शील को समझाने के लिए उपमा कथाओं का उदाहरण दिया गया है। इसीलिए इसे 'कथावत्थु' कहा गया है। पोथी में बहुत सारी छोटी-छोटी उपमा कथाएं हैं। वाराणसी के मिथ्यादिट्ठि सम्पन्न राजा की कहानी उल्लेखनीय है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पालि अभिधम्म-काथावत्थु एवं खामति 'आफिथाम्मा-काथावात्थु' की विषय-वस्तु में कोई साम्य नहीं है। केवल ग्रन्थ के नाम में समानता है। अन्य विरोधी मतों के पांच सौ सिद्धान्तों का उल्लेख तो हुआ है, पर पोथी में उन सिद्धान्तों का वर्णन नहीं हुआ है।

विषय-वस्तु

एक बार बुद्धत्व प्राप्ति के छह साल बाद भगवान बुद्ध श्रावस्ती में विहार करते थे। वहीं से वे अपनी जन्म-दात्री मां महामाया देवी को अभिधर्म देशना के लिए तावतिंस देवलोक जाते हैं। देवलोक के कोटि-कोटि देवतागण धर्म श्रवण के लिए एकत्र होते हैं। देवलोक के सभी राजा और चार लोकपाल राजा भी पण्डुकम्बल-शिलासन में जमा होते हैं। वहां महामाया देवी भी आती है, वे भगवान से कहती हैं—"आपके जन्म के एक सप्ताह बाद ही मेरी मृत्यु हो जाती है। गौतमी ने आपको पाला-पोषा। आप क्रमशः साधना करते हुए बुद्ध हुए। आज आप सभी को निर्वाण पथ दर्शाने के लिए यहां पधारे हैं।"

उत्तर में भगवान कहते हैं—"जब भी मैंने सत्व के रूप में जन्म ग्रहण किया, प्रत्येक बार मैंने आपके ही गर्भ में पटिसंधि ग्रहण किया है, मैंने असंख्य बार आपके गर्भ से पुत्र के रूप में जन्म लिया है। संसार में किसी को भी एक ही मां के गर्भ से जन्मने का सौभाग्य नहीं मिला है। इन जन्मों में बहुत प्रकार के सुख भी पाये और कभी अति कष्ट भी उठाने पड़े। कभी राज-परिवार में, कभी पशु-पक्षी, जल-चर, थलचर, के रूप में जन्म हुआ। स्वर्ग-नरक सभी जगह जन्म ग्रहण किया। ग्रह-नक्षत्र आदि सभी कुछ हुआ। इकतीस लोक में निरन्तर जन्म ग्रहण करता रहा।···निर्वाण प्राप्त न होने तक प्राणी मात्र को जन्म ग्रहण करना होता है।"

"आपकी कृपा से ही मैं दस पारमिताओं को परिपूर्ण कर यहां पहुंचा हूं। भव-सागर पार होने के लिए नाव रूपी निर्बाण पथ मिल गया है। अब मेरे सभी आश्रव क्षीण हो गए हैं। अब कभी जन्म लेना नहीं है। यदि कोई मनुष्य कुशल कर्म करता है, तो वह मां के गर्भ में सुखपूर्वक दिन, माह पूर्ण कर जन्म ग्रहण करता है। जो अकुशल कर्म करता है, उसका जन्म भी दुखदायक होता है। वैसे व्यक्ति को हजार प्रयत्न करने पर भी सुख नहीं मिलता है।

"मनुष्य के शरीर में अस्सी प्रकार की वायु होती हैं। उनके दूषण होने पर मनुष्य बीमार होता है। पन्द्रह प्रकार के दुःख होते हैं, वे भी मनुष्य को कष्ट देने के लिए प्रतीक्षा में रहते हैं।···इन बाधाओं से मनुष्य को जीवन में छुटकारा मिलना दुष्कर होता है। इसलिए हे जन्म-दात्री मां! मैं आपको निर्वाण मार्ग दर्शाने आया हूं।"

1. जिसने प्राणी हत्या नहीं की हो, उसकी आयु लम्बी होती है!
2. जिसने चोरी नहीं की हो, वह सुखपूर्वक विहार करता है।
3. जिसने काम-मिथ्याचार नहीं किया हो, वह बलवान, सुन्दर एवं सुभाषित होता है।
4. जिसने मुसावादा नहीं किया हो, उसकी बातें सभी सुनना चाहते हैं।
5. जिसने सुरा, मेरय, मद्य आदि नशीली चीजों का सेवन नहीं किया हो,

उससे लोग आदर करते और डरते हैं !"

"जो व्यक्ति इन पांच शीलों का पालन करता है, वह इस लोक और परलोक में सुखपूर्वक विहार करता है और जो शील भ्रष्ट होता है, वह सभी जगह कष्ट उठाता है। पंचशील से विचलित होने वाले को घोर कष्ट उठाना पड़ता है। जैसे—बैल के पीठ में सामान लादकर पहाड़ पर चढ़ने की भांति होती है। बैल सामान पीठ पर लेकर पहाड़ पर चढ़ने में असमर्थ होता है। वैसे ही दुःशील व्यक्ति भी सुमार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकता है।"

"यह संसार अनित्य है, कभी पत्नी के मरने पर पति रोता है, कभी पति के मरने पर पत्नी रोती है। बच्चे के मरने पर मां-बाप रोते-चिल्लाते हैं। कोई धनवान होता है, तो कोई निर्धन। इसका अन्त नहीं होता है। इन्हीं उद्देश्यों को समझाने के लिए मैं आपके पास आया हूं जिससे कि आपको सुमार्ग दर्शा सकूं।"

'काथावात्थु' में पांच सौ विषय हैं। महामाया उन्हें सुनाने का आग्रह करती हैं। भगवान बुद्ध पण्डुकम्बलशिलासन में बैठकर उपदेश करते हैं। उनके धीरे-धीरे कहने पर भी कोटि-कोटि देवता सुन सकते थे। साठ योजन विस्तृत पण्डुकम्बल-शिला में बैठकर देवता गण धर्म श्रवण करते हैं। उनके 'साधु···साधु···साधु···!' करने की ध्वनि से देवलोक ही गूंज उठता था। श्रोता के जितने दूरी पर बैठने पर भी उन्हें बराबर ही सुनाई पड़ती थी।"

"लोभ, दोष, मोह ये अकुशल चेतसिक हैं। हाथी की जवानी परिपूर्ण होने पर मदमत्त होकर पागल होता है। महावत उसे अंकुश लगाकर सिर को विक्षत कर खींचते हुए फांद लगाकर मारता है। वैसे ही अज्ञानी लोग भी होते हैं। अज्ञानता के कारण लोग अपने आप लोभ, दोष, मोह के भ्रमर में फंस जाते हैं।"

"वाराणसी का एक राजा मिथ्यादृष्टि सम्पन्न था। वह एक दिन घूमने के लिए उद्यान में जाने लगा। पटरानी एवं तीन बच्चों ने उसके साथ जाने से इनकार किया, तो राजा ने क्रुद्ध होकर रानी एवं तीनों राजकुमारों की हत्या कर दी। वाराणसी के लोगों ने भी उस हत्यारे राजा के हाथ-पैर काटकर जंगल में छोड़ दिया। वह राजा तड़पता हुआ मर गया। किन्तु उसके तीन बेटे एवं रानी को एक समुद्री केंकड़े ने औषधि छिड़ककर उन्हें जीवित किया। तो रानी एवं तीनों राजकुमार सोते से जागने की भांति उठकर अपने राजमहल को चले गए। राजा मिथ्यादृष्टि सम्पन्न होने के कारण मूढ़मति होकर मर गया और राजकुमार एवं रानी सम्मा-दृष्टि सम्पन्न होने के कारण मरने पर भी पुनः जीवन पाकर देश में धर्म-शासन करते हुए सुमार्ग पर अग्रसर हुए।"

आफियाम्मा-याम्यिक (यमक)

'यमक' का शाब्दिक अर्थ है जोड़ा या जुड़वां पदार्थ। पालि यमक ग्रन्थ दस

अध्यायों में विभक्त है, जिनमें निर्दिष्ट विषयों के साथ धम्मों के सम्बन्धों को दिखाना ही उसका लक्ष्य है। पालि यमक के दस अध्याय ये हैं : मूल-यमक, खन्ध-यमक, आयतन-यमक, धातु-यमक, सच्च-यमक, संखार-यमक, अनुसय-यमक, चित्त-यमक, धम्म-यमक और इन्द्रिय-यमक।

पालि यमक प्रकरण में प्रश्नों को जोड़ों के रूप में रखा गया है, यथा, क्या सभी कुशल धर्म कुशल मूल हैं ? क्या सभी कुशल मूल कुशल धर्म हैं ? क्या सभी रूप रूप-स्कन्ध हैं ? क्या सभी रूप-स्कन्ध रूप हैं ? क्या सभी अरूप अरूप-स्कन्ध हैं ? क्या सभी अरूप-स्कन्ध अरूप हैं ? आदि, आदि। प्रश्नों के अनुकूल और विपरीत स्वरूपों का यह जोड़ा बनाना इस ग्रन्थ में आदि से अन्त तक देखा जाता है। इसीलिए इसका नाम 'यमक' पड़ा है।

परन्तु खामति 'आफिथाम्मा-याम्यिक' में पालि-यमक जैसे धर्मों का विश्लेषण नहीं हुआ है। खामति में 'याम्यिक' का आरंभ तावतिंस देवलोक में महामाया सहित देवताओं को भगवान बुद्ध द्वारा धर्म देशना से होता है, जैसा कि अन्य खामति 'आफिथाम्मा' पोथियों में हुआ है। लोभ, दोष और मोह इन तीनों को समझाने के बाद पोथी में चाउ चाक्यावाते/मानथात् राजा की कथा आती है। फिर पोथी में 'कुसो' (कुशल) जातक की उपमा कथा है और श्रावस्ती के लोभी सेठ की कथा। इस प्रकार खामति 'आफिथाम्मा याम्यिक' को भी कथा 'मंजूषा' ही माना जा सकता है। इसमें पालि के जैसे मूल, खन्ध, आयतन आदि दस यमकों का उल्लेख तक भी नहीं हुआ है। केवल ग्रन्थ के नामों में समानता है। विषय-वस्तु में कोई समानता नहीं है।

विषय-वस्तु

बुद्धत्व प्राप्ति के सात वर्ष बाद भगवान बुद्ध अभिधम्म देशना के लिए तावतिंस देवलोक जाते हैं। वहां अपनी जन्मदात्री मां 'चाउ सान्तुकसिता' (महामाया देवी) को देशना करते हैं। धर्म श्रवण के लिए देव एवं ब्रह्मभूमि के कोटि-कोटि देवता पण्डुकम्बलशिलासन में जमा होते हैं। अभिधम्म कथावत्थु देशना करने के बाद भगवान ने अभिधम्म यमक की देशना आरंभ की। सबसे पहले लोभ, दोष, मोह, इन तीनों अकुशल मूलों की व्याख्या करते हैं। इन्हीं तीन अकुशल कर्मों के कारण मनुष्य कष्ट उठाते हैं। इन्हीं के कर्म फल से नरकगामी होते हैं। अलोभ, अदोष और अमोह ये तीन कुशल मूल हैं। कुशल धर्मों का सम्पादन करने पर सुमार्ग की प्राप्ति होती है। वे निर्भय होकर सुकर्म करते हुए निर्वाण मार्ग को प्राप्त करते हैं। ग्रन्थ में इन्हीं छह हेतुओं की विशद चर्चा हुई है। ग्रन्थ में एक लोभ सम्बन्धी उपमा कथा आती है।

"चक्रवाल का राजा चाउ चाक्यावाते/मानथात विश्व विजय करने के बाद;

उसकी इच्छा होती है कि "देवराज इन्द्र का राज्य भी प्राप्त करूं।" वह लोभ के कारण देवलोक विजय करने की इच्छा से वहां पहुंचा। इन्द्र ने उसकी इच्छा को जानकर उसे समझाया—"मेरे साथ युद्ध करने पर तुम परास्त होकर मारे जाओगे, मनुष्य को देवलोक में मरने का अधिकार नहीं है। इसीलिए तुम अपने राज्य में जाकर शरण, शील ग्रहण कर दान करते हुए कुशल कर पुण्य संचय करने पर ही देवलोक का राजा बन सकते हो। वैसे ही कुशल कर्म के पुण्य प्रभाव से मुझे यह देवलोक में अधिपति होने का अधिकार मिला है।" इस प्रकार इन्द्र ने मानथात् राजा को समझाकर उसे पुण्य कर्म करने के लिए प्रेरित किया।

दूसरी कथा 'कुसो' जातक की उपमा से होती है। अकुशल चित्त के कारण उस राजा का रूप-वर्ण कुत्सित हुआ था। इस प्रकार लोभमूलक चित्तों को समझाने के लिए कई एक उपमा कथाओं का वर्णन आता है।

"श्रावस्ती के एक सेठ के तीन पुत्र थे। पारमिता होने के कारण ज्येष्ठ पुत्र बहुत ही श्रद्धावान हुआ। भगवान बुद्ध का शिष्य होकर वह अरहत् हुआ। मझला पुत्र लोभी था, उसने लोभ चित्त के कारण पैतृक सम्पत्ति को दूसरे भाइयों से चुराकर छुपाया। वह दान, शील, भावना भी नहीं करता था। चोरी एवं दुष्कर्म के फलस्वरूप वह मृत्यु के बाद 'सुकर-प्रेत' बना। उनका पिता भी मिथ्यावादी था, वह मरकर 'सर्प-प्रेत' बना था, कनिष्ठ भाई अलोभी था। उसने महादान देकर कुशल कार्यों का सम्पादन करते हुए—पहले मरकर प्रेतात्मा बने हुए सभी सम्बन्धियों का उद्धार किया।" ग्रन्थ के अन्तिम परिच्छेद में—'सातान्ता' (छह दन्त) की लोभ सम्बन्धी कथा का उदाहरण देकर इसे समाप्त किया गया है।

आफिथाम्मा पाथान (पट्ठान)

'पट्ठान' (पच्चय-ठान) का अर्थ है प्रत्ययों का स्थान। पट्ठान में 24 प्रत्ययों का विवेचन किया है। आकार और महत्व की दृष्टि से पालि 'पट्ठान' अभिधम्म-पिटक का एक महा ग्रन्थ है। संभवतः इसीलिए उसे 'महापकरण'।'महाप्रकरण' की संज्ञा दी गई है। देवनागरी संस्करण में तो वह छह बड़ी जिल्दों में है ही। सम्पूर्ण महाग्रन्थ चौबीस भागों में बांटा हुआ है, जिनमें से प्रत्येक 'पट्ठान' कहलाता है। इसीलिए कहा गया है-- "चतुवीसति समन्त-पट्ठान समोधान-पट्ठान-महाप्पकरण नामाति" अर्थात् 'पट्ठान' महाप्रकरण में कुल मिलाकार 24'पट्ठान' या प्रत्यय-स्थान हैं। यथा: हेतु-पच्चयो, आरम्मण-पच्चयो, अधिपति-पच्चयो, अनन्तर-पच्चयो, समन्तर-पच्चयो, सहजात-पच्चयो, अञ्ञमञ्ञ-पच्चयो, निस्सय-पच्चयो, उपनिस्सय-पच्चयो, पुरेजात-पच्चयो, पच्छाजात-पच्चयो, आसेवनपच्चयो, कम्मपच्चयो, विपाक-पच्चयो, आहार-पच्चयो, इन्द्रिय-पच्चयो, झान-पच्चयो, मग्ग-पच्चयो, सम्पयुत्त-पिप्पयुत्त-पच्चयो, अत्थि-पच्चयो, नत्थि पच्चयो, विगत-पच्चयो

और अविगत पच्चयो।

इन्हीं 24 प्रत्ययों का पालि पट्ठान ग्रन्थ में विस्तृत रूप से विवेचन किया गया है। बुद्ध-मन्तव्य स्वयं एक विस्मयकारी वस्तु है। यदि उसके कुछ विस्मयों को खोलना है, तो अभिधम्म पिटक का अध्ययन नितान्त आवश्यक है।

किन्तु खामति भाषा की 'आफिथाम्मा पाथान' पोथी में उक्त अभिधम्मा दर्शन सम्बन्धी 24 प्रत्ययों का विवेचन नहीं हुआ है। इसमें तो छोटे-छोटे उपदेशों का संग्रह मात्र हुआ है। प्रारम्भ में अभिधम्म सम्बन्धी निदान कथा आती है। खामति 'आफिथाम्मा पाथान' पोथी की कुछ प्रतिलिपियों के आरम्भ में 24 प्रत्ययों का उल्लेख मिलता है। किन्तु पच्चयों का विश्लेषण नहीं हुआ है। 'आफिथाम्मा पाथान' पोथी छोटे-छोटे परिच्छेदों में विभक्त है।

विषय-वस्तु

'सि-साङ्खे, पाई-सेन' (चार असंख्य, एक कोटि) वर्षों तक साधना कर भगवान ने दस पारमिताएं परिपूर्ण कीं और 'यङ्-पाङ्' (बोधगया) में, बोधि-वृक्ष के नीचे तपस्या कर सभी क्लेशों को नष्ट कर उन्होंने निब्बान का मार्ग प्राप्त किया वे देव-मनुष्य एवं प्राणी-मात्र के प्रति मैत्री रखते थे।

पूर्व जन्म के कर्म-फल तथा प्रार्थना के कारण लोग भगवान को साक्षात करने के अधिकारी होते हैं। 'माक्त्रा' (मार्ग-धर्म), 'फो त्रा' (फल-धर्म) और 'निक्पान्त्रा' (निब्बान-धर्म) पूर्ण किया है। जो बुद्ध के उपदिष्ट धर्म के रास्ते में चलेंगे, वे निर्बाध पथ प्राप्त करेंगे। भगवान बुद्ध का उपदेश प्राप्त करना दुर्लभ है। कुशल मार्ग को लोग ग्रहण नहीं नहीं करते हैं, परन्तु अकुशल मार्ग बहुत आसानी से ग्रहण कर लेते हैं। इस जन्म में कुशल कर्म नहीं करने पर, मनुष्य जन्म प्राप्त नहीं किया जा सकता है। जो प्रतिदिन सुबह-शाम भगवान के उपदेशों को पवित्र मन से श्रवण करता है, ऐसे धार्मिक लोग अच्छे कुल में जन्म ग्रहण करते हैं। सभी उसके मित्र होते हैं। नरक-कुण्ड का मार्ग भी उसके लिए बन्द रहता है, वह ताला लगाकर बन्द करने की भांति बन्द होता है। सभा दु:ट-कष्ट दूर होते हैं। ऐसे लोग बड़े कुल में जन्म ग्रहण करते हैं। नीच कुल में उनका जन्म नहीं होता है।"

"यह उपदेश (आफिथाम्मा) ऊंचे आसन में बैठकर ही पठन-पाठन करने का नियम है। पाठक अपने अन्तर को पवित्र करें और सुनने वाले एकाग्र होकर उसे ग्रहण करें। अन्य बातों पर मन को न ले जाएं। कैसे कुशल भावनाएं उत्पन्न हो सकती हैं; उसकी भावना करनी चाहिए। श्रद्धा युक्त चित्त से धारण करना चाहिए। ऐसे लोग बाधाओं से दूर रखकर शान्ति से निर्वाण की साधना कर सकते हैं। 'चाउ आलिमेतिया' (आर्यमैत्रेय भगवान) को साक्षात कर सकते हैं। अकुशल

कर्म करने वाले पुण्य का संचय नहीं करते हैं। पापी लोग नरक-कुण्ड का मार्ग साफ करते हैं।

"प्राचीन काल में श्रावस्ती सेठ की पुत्री नाङ् पातिफुता पण्डितों का साक्षात्कार कर वह धर्म श्रवण करती थी। धार्मिक बातों को वह अच्छी तरह से ग्रहण करती और उसे अक्षत-पुष्प से पूजा करती थी। भगवान के उपदेशों का आदर करती। वह सदा सर्वदा धर्म-चर्चा करती। उसने मरने के बाद अच्छे कुल में जन्म ग्रहण किया। उस स्त्री के कुशल कर्म के सम्पादन के फलस्वरूप वह भगवान को साक्षात करने में सफल हुई।

"भगवान बुद्ध ने जितने उपदेश दिये, वे सभी कुशल धर्म हैं। उनके श्रवण करने से स्वच्छ जल में स्नान करने का जैसा आनन्द आता है। भगवान के बतलाए हुए मार्ग पर चलें तो कभी भी आदमी रोग व्याधि से कष्ट नहीं पाता है। पुण्य कभी भी नष्ट नहीं होता है। धर्म का मार्ग स्वच्छ होता है। भगवान बुद्ध भी दान, शील आदि दस पारमिताओं को परिपूर्ण कर वे लोक गुरु हुए।"

1. सक् सुङ् क्येम् (तीन खण्ड सुत्त पिटक), 2. विने ङाक्येम् (पांच खण्ड विनय पटक) और 3. आफिथाम्मा चेत् क्येम् (सात खण्ड अभिधम्म पिटक)। भगवान बुद्ध के उपदेशों को इन्हीं तीन खण्डों में बिभाजित किया गया है। इनमें से अभिधम्म का विषय बहुत गम्भीर है। गहरे पानी के नीचे का हीरा दिखाई देता है, परन्तु उसे प्राप्त करना आसान नहीं होता है। ज्ञानी लोगों के सम्पर्क में रहकर अध्ययन करने पर ही अभिधम्म का ज्ञान धीरे धीरे प्राप्त किया जा सकता है। वृक्ष के ऊपर का माणिक जिस प्रकार नीचे पानी में चमकता है, परन्तु उसे पानी में प्राप्त करना दुर्लभ होता है। वैसे ही अभिधम्म का विषय भी गुरु-गम्भीर है। भगवान बुद्ध ने बहुत साधना के बाद ही उसे समझा था। सिद्धार्थ ने उनतीस वर्ष की अवस्था में गृह त्याग कर बोधगया में कठोर साधना कर अमृत रूपी ज्ञान प्राप्त किया।

भगवान बुद्ध बुद्धत्व प्राप्ति के सात साल बाद अभिधम्म देशना के लिए तावतिंस देवलोक जाते हैं। उन्होंने सातों खण्ड अभिधम्म पिटक का उपदेश उनकी माँ को उद्देश्य कर दिया। सर्व साधारण लोग अभिधम्म को समझ नहीं सकते हैं। भिक्षु हो या दायक/उपासक विलक्षण मनुष्य ही अभिधम्म के विषय को समझ सकता है। अभिधम्म का घर में पाठ किया जाए तो गृह मंगल होता है। विहार में पाठ किया जाए तो महा पुण्य होता है। इसके पाठ करने पर सुख-शान्ति मिलती है। सभी शास्त्रों में से अभिधम्म अति गुरु-गम्भीर है। इसके प्रतिलिपिकार भी भाग्य के कारण ही इसकी प्रतिलिपि करने का अधिकारी होता है। अभिधम्म पोथी लपेट कर बांधने का कपड़ा देव-वस्त्र से भी पवित्र होता है। धर्म-पोथी रखने का आसन भी पवित्र होता है। 'आफिथाम्मा चेत क्येम्' (सात खण्ड

अभिधम्म पिटक) अत्यधिक पवित्र एवं पूजनीय है। तीक्ष्ण बुद्धि के लोगों को ही अभिधम्म समझाया जा सकता है।

आगे पोथी में भगवान के अभिधम्म देशना सम्बन्धी विवरण हैं। सारिपुत्त के द्वारा अभिधम्म का प्रकाश। भगवान बुद्ध के निर्वाण के बाद संगीति राजगृह में हुई, तृतीय संगीति महाराज अशोक की राजधानी पातालिपुक् (पाटलीपुत्र) में हुई। इस प्रकार बुद्ध शासन का विस्तार होता है। खामति भाषा में प्राप्त 'आफि-थाम्मा' साहित्य, विफाङ् को छोड़कर, कथाओं से भरपूर है। इसीलिए इन अभि-धम्म के छह ग्रन्थों को 'अभिधम्म' या 'धम्म कथा मंजरी' कहना ही उपयुक्त जान पड़ता है।

'आफिथाम्मा चेत् क्येम्' (सात खण्ड अभिधम्म पिटक) के अलावा और भी 'आफिथाम्मा (अभिधम्म) सम्बन्धी पोथियां खामति भाषा में प्राप्त होती हैं। यथा: 1. आपिथाम्मा सताहा (सप्त अभिधम्म), 2. आफिथाम्मा क्येम्वङ् त्वक् चुम् (सचित्र अभिधम्म संकलन), 3. साम्पायुत्ता क्येम्प्वङ् त्वक्चुम् (सचित्र सम्प्रयुक्त संकलन), 4. आफिथाम्मामामोङ् (आम्र अभिधम्म), 5. आफि थाम्मा पालामात्था साङ्क्यों (अभिधम्म परमत्थ संग्रह), 6. आफिथाम्मा पाला मात्था मेचु, 7. आफिथाम्मा पालामात्था मेचु साङ्क्यो, 8. आफिथाम्मा नाङ् नाम्, 9. आफिथाम्मा सुत यत्, 10. आफिथाम्मा यौंकाउ, 11. आफिथाम्मा-काउखाम, 12. आफिथाम्मा सातिपाथान (अभिधम्म सतिपट्ठान)।

खामति धर्म साहित्य परम्परा अनुसार 'पिताकात्-सुङ्पुङ्' (तिपिटक) का विभाजन किस प्रकार हुआ है। वह पृष्ठ 92 पर दी गयी तालिका से प्रकट होगा :

'पिताकात् सुङ्पुङ्' (तिपिटक) के अलावा खामति धर्म साहित्य परम्परा में और दो प्रकार का विभाजन पाया जाता है : 1. 'लिक् काउधाम्' (नौ धर्म शास्त्र पोथी) और 2. 'लिक् काउलः' (नौ लोक-नीति शास्त्र-पोथी) ; 1. लिक् काउ-थाम्' ये हैं : 1. थाम्मा वेलामाक्येङ् (धम्मवीर शासक), 2. धाम्मा पाता (धम्म-पद), 3. थाम्मा चाक्या (धम्म-चक्क), 4. थाम्मा हुला (धम्म राहुल), 5. थाम्मा काप्या (धम्म कप्प), 6. थाम्मा उतिङ्ना (धम्म उदयन), 7. थाम्मा काउखाम (नौ स्वर्ण धम्म), 8. थाम्मा विलिया (धम्म विरिय), 9. थाम्मा खान्था (धम्म खन्ध)।

2. 'लिक् काउलः' ये हैं : 1. लोका वितु (लोकविदु बुद्ध), 2. लोका का (लोक गमन), 3. लोका चिङ्ता (लोक चिन्ता), 4. लोका नीति (लोक नीति), 5. लोका पिङ्ञ्निप् (लोक पञ्ञत्ति), 6. लोका तिपा (लोक दीप), 7. लोका खान्था (लोक खन्ध), 8. लो माकाङ् (अवतार कथा), 9. लोका हिता (लोक हित)।
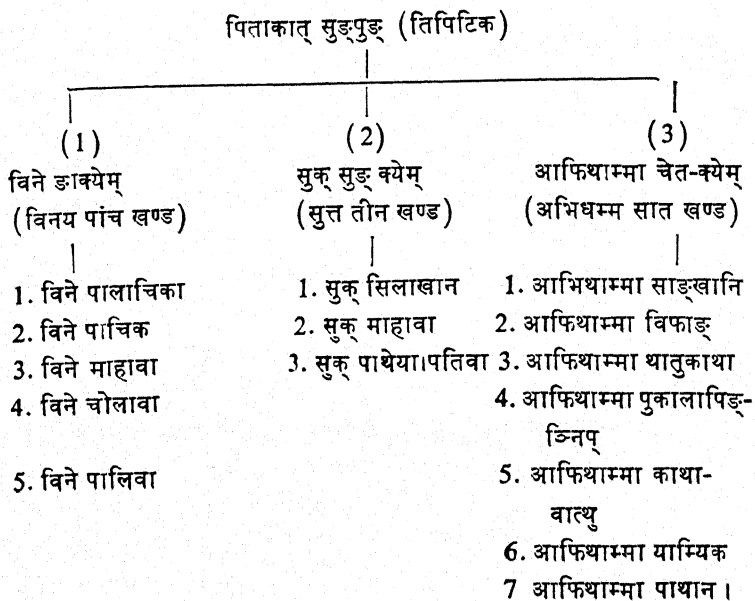
'सिप् चात्' (दस महानिपात जातक) का खामति 'थाम्मा त्रा' (धम्म देशना) में अति महत्व है। इन दस जातकों को संक्षेप में 'ते चा सु ने मा पु चा ना वि वे' लिखकर विहार के अन्तेवासी याद करते हैं। खामति में दस महानिपात जातकों के नाम निम्न प्रकार हैं : 1. चाउ तेमी (तेमीयकुमार जातक), 2. चाउ चानाका (जनक जातक), 3. चाउ सुवोन्नासेङ् (सुवर्ण श्याम जातक), 4. चाउ नेमी (नेमीय कुमार जातक) 5. चाउ माहो (महोवध पण्डित जातक), 6. चाउ पुलिकतात् (भूरीदत्त जातक) 7. चाउ चान्ताकुङ्माला (चन्द्रकुमार जातक), 8. चाउ नालाता (नारद जातक), 9. चाउ विथो (विदुर पण्डित जातक), 10. चाउ वेसान्त्रा (वेसन्तर जातक)।

इन दस महानिपात जातकों की कथा मूल पालि जैसी ही है। कथावस्तु में साम्य होने पर भी वर्णन में कुछ भिन्नता है। इन जातकों के आधार पर 'प्यापुङ्' या 'प्याचात्' (नाटक) तथा 'त्रा'। 'ताला' (देशना कथा) भी प्राप्त होते हैं और गांव के जातक के चित्र भी प्राप्त होते हैं। दस महानिपात जातकों की पाण्डुलिपियां बृहत् आकारों में हैं। खामति धर्म साहित्य परम्परा में इन दस महानिपात जातकों को सुत्त पिटक के अन्तर्गत नहीं रखा जाता है। किन्तु पालि परम्परा में इन्हें सुत्त पिटक के खुद्दक निकाय के अन्तर्गत रखा गया है।

पालि अनुपिटक साहित्य की प्रमुख पोथियां भी खामति में अनूदित मिलती हैं। जैसे : 'चाउ फ मेलिङ् (मिलिन्द पञ्हो) और 'विसुक्थिमाक्' (विसुद्धि मग्गो) खामति में उक्त ग्रन्थों के अलावा विधि शास्त्रीय ग्रन्थ—'थाम्मासात्' : महाब्राह्मा-थाम्मासात्, माहासामान्ता-थाम्मासात् और चाउ मानुक्मानो-थाम्मासात् भी प्राप्त होती हैं। इतिहास साहित्य—काम्पाचाता, सामेङ् खामति, लिक्चाते। नाटक 'प्यापुङ्' या 'प्याचात्'। नीति मूलक कथा साहित्य, 'मानतान' (मन्त्र-तन्त्र), 'ने या' (औषधि निदान) आदि विषयों पर साहित्य प्राप्त होता है। आगे इन्हीं विषयों पर विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा।

इतर साहित्य

धम्मसत्थ

'धम्मसत्थ' (धर्मशास्त्र) की परम्परा 1100 ई० से पालि में होने लगी थी। धम्मसत्थ की विषय-वस्तु तिपिटक से भिन्न है। ये विधि-शास्त्र की पोथियां हैं, इस प्रकार के साहित्य की सारिपुत्त धम्मविलास ने बर्मा में रचना की है। सारिपुत्त धम्मविलास राञ्ञदेश के निवासी थे। इनका जन्म पदीपजेय्य नामक स्थान में पगान के राजा नरपतिसिथु के राज्यकाल (1167-1202ई०) में हुआ और इनकी उपसम्पदा सीहल-संघ के आनन्द महाथेर से हुई। वह बाद में रामञ्ञ में इस निकाय के प्रमुख हुए। राजा नरपति ने इन्हें 'धम्मविलास' की सम्मानिक उपाधि से विभूषित किया। सर्वप्रथम बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में बर्मी भिक्षु सारिपुत्त धम्मविलास ने राजा नरपतिसिथु के शासनकाल में 'धम्मविलास-धम्मसत्थ' नामक विधि शास्त्रीय ग्रन्थ पालि में लिखा, तदनन्तर तेरहवीं शताब्दी में 'वगरु धम्मसत्थ नामक विधि ग्रन्थ तलैङ् भाषा में बर्मी राजा वगरु के द्वारा लिखा गया, जिसका 'मनु-सार' नाम से सोलहवीं शताब्दी में एक बर्मी भिक्षु के द्वारा पालि भाषा में अनुवाद किया गया। सत्रहवीं शताब्दी में 'मनु-धम्मसत्थ' नाम से एक और संस्करण 'धम्मविलास-धम्मसत्थ' का किया गया। इसे धम्मविलास द्वितीय नामक बर्मी भिक्षु ने किया। अठारहवीं शताब्दी में अनेक 'धम्मसत्थ' ग्रन्थ बर्मा में लिखे गए, जिनमें 'मनु-वण्णा' अधिक प्रसिद्ध है। इसके लेखक वन्नक्यवदिन थे। इसके बर्मी और पालि दोनों ही संस्करण हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में राजाबल क्यवदिन ने 'पालि गाथाओं में 'मोह विच्छेदनी' लिखी, जो इस परम्परा का अन्तिम महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह रचना सन् 1832 ई० में लिखी गई। इस प्रकार हम देखते हैं कि बर्मी पालि साहित्य के इतिहास में धर्मशास्त्र सम्बन्धी साहित्य का लक्षणीय विकास बारहवीं शताब्दी से आज तक हुआ है और इसका आधार और मूल प्रेरणा स्रोत रहा है, मनु-स्मृति। इस प्रकार का बर्मा के धर्मशास्त्र सम्बन्धी साहित्य के विकास में, जो पालि और बर्मी दोनों भाषाओं में ही

लिखा गया, महत्वपूर्ण योगदान रहा है। परन्तु हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि जैसे-जैसे हम इन बर्मी पालि विधि शास्त्रीय ग्रन्थों का क्रमिक रूप से अनुशीलन करते हैं, तो हमें यह जानते देर नहीं लगती कि धीरे-धीरे बुद्ध की उदार शिक्षाएं मनु की व्यवस्था का स्थान लेती गई हैं और यह प्रक्रिया 'मोह विच्छेदनी' में अपनी पूर्ण निष्पत्ति को प्राप्त हुई है। यहां मनु का स्थान पूर्णतः बुद्ध ने ले लिया है। बर्मी पालि परम्परा में 'धम्मसत्थ' सम्बन्धी नौ ग्रन्थों की रचना विभिन्न आचार्यों द्वारा हुई हैं।

खामति भाषा में अनुसंधानकर्ता को 'थाम्मासात' (धम्मसत्थ) की तीन पाण्डुलिपियां उपलब्ध हुई हैं—1. माहाब्रह्मा थाम्मासात, 2. चाउ मानुक्मानो थाम्मासात और 3. महासामान्ता थामासातइनके अलावा 'चाउ सिलित्चे' नामक ग्रन्थ में भी न्याय-विचार सम्बन्धी विवरण मिलते हैं। 'चाउ मानुकमानो थाम्मासत' तो 'मनु धर्मशास्त्र' से नाम में साम्य है। खामति में विधि शास्त्र को 'थाम्मासात-पेत्रा' भी कहा जाता है। 'थाम्मा- सात्' विषय की पोथियां प्रायः खामति राज परिवार (नामसुम) या सेनापति (लुङ् किङ्) के घरों में मिलती हैं। कारण न्याय-विचार के लिए इन की आवश्यकता होती है। खामति पण्डितों ने इन विधि शास्त्रों की रचना खामति शासकों के व्यवहार के लिए की है। 'थाम्मासात' नीति का उदाहरण इनके समाज में बहुत होता है। इस परिच्छेद में—1. माहाब्रह्म थाम्मासात, 2. चाउ मानुकमानो थाम्मासात और 3. माहासामान्ता थाम्मासात। इन तीन पोथियों का परिचय, विषय वस्तु से किया जाएगा।

माहाब्रह्मा थाम्मासात

'माहाब्रह्मा थाम्मासात' की पाण्डुलिपि बरखामति गांव के खेराजखाट मौजादार (तहसीलदार) के घर है। इसमें 56 विधि शास्त्र की धाराएं हैं। पाण्डुलिपि के आरंभ में ग्रन्थ परिचय है—'लाक् निपि कासाय' (यह खामति संवत् है), भगवान ककुसन्ध युग की 'धाम्मासात' नीतियां हैं। इस ग्रन्थ के प्रणेता स्वयं ब्रह्म हैं, इसीलिए ग्रन्थ का नामकरण हुआ। यहां विषय की जानकारी के लिए हमने आठ सिद्धान्तों का परिचय प्रस्तुत किया है। उनका वर्णन निम्न प्रकार से है :

कर्जदार के प्रति न्याय

यदि कर्जदार व्यक्ति के असामी की सामग्री (धन, रुपये) बन्दोवस्त अनुरूप वापस न लौटाने पर असामी या मालिक को साक्षी प्रमाण आदि लेकर न्याय-पति से न्याय-विचार लेना होता है, तो कर्ज लेते समय कर्जदार व्यक्ति के पक्ष में जो जामिनदार रहता है, उससे पूछना आवश्यक माना जाता है। कर्जदार व्यक्ति के भागने पर जामिनदार व्यक्ति को ही उसके लिए गये कर्ज चुकाने पड़ते हैं। भागने

वाले कर्जदार को ढूंढ लाने पर जामिनदार रुपये चुकाने के दण्ड से मुक्ति पा सकता है अन्यथा जामिनदार को ही दोषी समझा जाता है। यदि कर्ज लेने वाले की मृत्यु होती है, तो जामिनदार व्यक्ति को निब्याज तौर से रुपये, सामग्री चुकाने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में असामी को मूल रुपये पर ही सन्तुष्ट होना पड़ता है। यदि कर्जदार निर्णय अनुसार ब्याज नहीं देता है, तो हर साल दण्ड स्वरूप दुगुने ब्याज लेने का अधिकार रुपये मालिक को होता है। किन्तु कर्जदार का असामी (मालिक) से पहले ही फूल-अक्षत से क्षमा प्र.र्थना करने पर उसे इस दण्ड से मुक्ति मिल सकती है। अधिक कर्ज लेकर चुकाने में असमर्थ व्यक्ति को असामी (धनपति) के घर दास बनकर रहने का आदेश दिया जाता है। असामी कर्जदार व्यक्ति को नाना अत्याचार कर सताना निषेध माना जाता है। बालों को पकड़ना थप्पड़ मारना, नाहक गालियां देना महादोष समझा जाता है। यदि कोई असामी होकर, यदि उक्त नीति का उल्लंघन करता है तो इस कर्जदार को कर्ज चुकाये बिना ही न्याय-पति मुक्ति दे सकता है। और असामी को भी इसमें अपराधी समझना चाहिए। कर्जदार को इस प्रकार सताने वाले मालिक को राज न्याय अनुसार दण्ड दिया जाना आवश्यक है।

छीना-झपटी, पति-पत्नी का कर्ज

यदि कोई व्यक्ति पूछे बिना ही दूसरे की सामग्री छीन लेता है, तो उससे वापस लेते समय लेने वाले से पूछे बिना ही अपनी सामग्री वापस ले सकते हैं। इसमें लेने वाले से पूछताछ करने की आवश्यकता नहीं रहती है। उसने जितनी सामग्री ली थी, उतनी ही ले सकते हैं। अधिक लेने पर दोषी समझा जाता है। किन्तु न्याय विचार से लेने पर उस छीनने वाले से दुगुना लिया जाता है। यदि पति किसी का कर्जदार हो और असामी उसकी पत्नी से कर्ज के रुपए मांगने लगे तो असामी को दोषी समझा जाता है, असामी को जामिनदार से मांगना पड़ता है और पत्नी द्वारा किसी व्यक्ति से कर्ज लेने के संबंध में पति नहीं ही जानता है, अर्थात पति को पता ही नहीं रहता है; इस प्रकार के कर्ज पति से मांगने की नीति नहीं है। उक्त नीति का उल्लंघन करने पर असामी (मालिक) को पूर्ण दोषी ठहराया जाता है, बिना मतलब से कहने के दोष में दण्ड लेना होता है। यदि कर्ज के संबंध में पति-पत्नि दोनों जानते हों तो उन्हें चुकाना ही पड़ता है। मां-बाप यदि किसी का कर्जदार होकर स्वर्गीय होते हैं, तो उनके साथ रहने वाले सन्तान से पूछ-ताछ कर असामी अपनी पावनी मांग सकते हैं।

चोरी की सामग्री की बिक्री

किसी की सामग्री चोरी होने से बिक्री करने वाले चोर को पकड़ लिया गया

और मालिक ने अपने सामान (वस्तु) का पता लगा लिया है, तब तो वह अपनी वस्तु निःसंकोच वापस ला सकता है। चोर से खरीदने वाले साक्षी सहित न्यायपति के पास जाकर बेचने वाले के प्रति 'मामला' कर सकता है। यदि चोरी से दूसरे की सामग्री बेचने वाला चोर पकड़ा जाता है, तो उससे नीति अनुसार एक के दो दण्ड लिये जाते हैं। सामान खरीदने वाले के पास साक्षी प्रमाण उपयुक्त न हों तो चोर से दण्ड नहीं लिया जा सकता। ऐसी स्थिति में चोरी का माल खरीदने वाले को ही दण्डित होना पड़ता है। किसी निःसन्तान व्यक्ति की मृत्यु होने पर कोई उसकी वस्तुओं को आत्मसात करता है या बिक्री करता है तो उसके आत्मसात करते देख, दूसरा कोई मरने वाले का सम्बन्धी मालिक बनकर निकलता है और कहता है—'उस मृतक का मैं अमुक (भाई या पुत्र) हूं।' वास्तव में वह सम्बन्धी हो तो पहले बेचने या आत्मसात करने वाले को चुकाना पड़ता है और झूठ निकला तो उसे लोभी, धूर्त समझ कर दण्ड दिया जाता है। अन्यथा पूर्व बेचने वाले की ही जीत होती है।

खेत की सीमा

खेत/जमीन की सीमा निर्धारण करते समय या भाग (बंटवारा) करते समय वहां चिह्न स्वरूप अपनी सीमा-रेखा में पीपल, बरगद आदि के वृक्ष रोपण करना पड़ता है। वृक्ष-रोपण संभव नहीं रहा तो ईंट या पत्थरों में चिह्न अंकन कर रखा जाना आवश्यक है। भविष्य में यदि किसी के साथ जमीन के लिए विवाद हुआ तो उक्त प्रतीक वृक्ष, ईंट, पत्थर ही जमीन मालिक के साक्षी हो सकते हैं। यदि पत्थर, वृक्ष आदि का चिह्न नहीं लगा पाया तो वन में विचरण करने वाले आखेटकों, ब्याधों को ही कहना चाहिए। शिकारी भी नहीं मिले तो गाय, भैंस, भेड़ चराने वालों को साक्षी रखना चाहिए, क्योंकि ब्याध, ग्वाल-बाल वन्य स्थानों को अच्छी तरह से जानते हैं। आवश्यकता पड़ने पर उन्हें साक्षी के रूप में ले सकते हैं। यदि कोई उल्लिखित निर्धारित सीमा का उल्लंघन (अतिक्रमण) करता है, तो उसे दोषी समझकर दण्ड देना चाहिए।

दोषी-निर्दोषी

सचमुच, यदि संभ्रान्त व्यक्ति दोषी रहा तो उससे 'च्वय-लुङ्' (एक सौ चालीस रुपये) का दण्ड लिया जाता है। बिना सोचे-समझे दूसरों को दोषी ठहराने वाले को दो सौ अस्सी रुपये का दण्ड चुकाना पड़ता है। दोनों अपराधी निर्धन हों तो उन से मात्र 'सि-ह्वङ्' (बारह रुपये) का दण्ड लिया जाता है। यदि कोई निर्धन व्यक्ति किसी धनी-मानी व्यक्ति की तरह गर्व करता फिरता है, तो उसे 'साउ-स्वङ्-ह्वङ्' (छियासठ रुपये) का दण्ड लेना होता है। संभव रहा तो और भी

लिया जा सकता है। दण्डित होने से उसका घमंड चूर हो जाये। यदि कोई दोषी (चोर) सत्य कहता है, तो न्याय-पति की ओर से उसे पुरस्कार मिलनी चाहिए और उसे चोरी न करने का उपदेश देना चाहिए। पति-पत्नी के बीच आपसी झगड़ा रहा; तो उन्हें न्याय-पति के पास जाकर अपने-अपने दोष कहने पड़ते हैं। पड़ोसियों के साथ द्वन्द होने पर न्याय अनुसार उन्हें निर्दोष समझ कर समाज में मिलाने की चेष्टा न्याय-पति को करनी पड़ती है। यदि न्याय-पति पड़ोसियों के झगड़ों को सुलझाने में असमर्थ रहता है और झगड़ा बढ़ता है, तो 'थाम्मासात' अनुसार न्याय-पति को पद च्युत करना पड़ता है।

मान-हानि करने पर दण्ड

अपने मां-बाप, भाई-बन्धु का अपमान करने पर उसे रस्सी से बांधकर, उसी रस्सी से दोषी के पीठ या नितम्ब में मारने का अधिकार दिया जाता है। किन्तु सिर, मुंह, गाल, कान, आंख आदि में मारने या चोट पहुंचाने पर मारने वाले को महा अपराधी समझा जाता है। निम्न श्रेणी के लोगों का उच्च श्रेणी (भिक्षु, राजा, मन्त्री) लोगों का अपमान करने पर, उन्हें दण्ड देने का अधिकार दिया जाता है और अपराधी को मुंह में भाण्ड (पात्र) की कालिख से 'आंक बांक (विरूप) कर उसे नग्न कर नाना रंगों से रंग कर दोषी को गांव की गलियों में घुमाकर अपराधी को कसम न खाने तक छोड़ा न जाये। ऐसा करने पर अन्य लोगों को भी डर बना रहता है, यदि कोई घमण्डी छोटों को निर्बल समझ नाहक मारता-पीटता है, तो उससे तीन चौदह (रु० 42) का दण्ड लिया जाता है। थप्पड़ ही मारता है, तो उसे सिर्फ चौदह रुपये ही दण्ड देना पड़ता है। छाती में लात मारकर चोट पहुंचाई तो उससे 'सिप-हा क्येप्' (सत्तर रुपये) का दण्ड लिया जाता है। मारने-पीटने से हड्डी के टूटने पर 'सि-खान्' (रु० 56) दण्ड लिये जाते हैं। किसी को मारकर चोट पहुंचाने पर या रक्त निकालने पर उससे दण्ड स्वरूप 'सिप् चेत् क्येष' (रु० 84) का दण्ड देने के अलावा क्षमा मांगते हुए उसके हाथ में सूत की रस्सी बांध देनी पड़ती है। कुलीन व्यक्ति के बाल के खोपा (जटा) में निम्न-श्रेणी के लोगों के पकड़ने पर उससे 'साम्-च्वय' (लगभग, 300 रु०) का लिया जाता है। वह उतना देने में असमर्थ रहता है, तो उससे 'हा-खान' (रु० 70) का दण्ड लेना पड़ता है। इतना भी न दे पाने पर अपराधी के दोनों दम्पत्ति (पति-पत्नी) को पकड़कर दास बना सकते हैं। स्त्री कहती है कि 'मैं दोषी नहीं हूं, मुझे क्यों दण्ड मिलना चाहिए ?' वह पति की कमाई नहीं खाती है, तो उसे छोड़ दिया जाता है। यदि वह पति की कमाई खाती है, तो दोनों को दास-दासी होना ही पड़ता है। यदि कोई निम्न श्रेणी का व्यक्ति समाज मान्य व्यक्ति (भिक्षु, राजा, मन्त्री) के छाती में लात मारकर अपमान करता है, तो अपमान करने वाले को

बेचने का भी अधिकार दिया जाता है।

क्षति-पूर्ति और सतीत्व नष्ट करने पर दण्ड

किसी फलोपयोगी वृक्ष की शाखा तोड़ने पर जितनी क्षति हुई है, उतनी क्षति-पूर्ति करने का रिवाज है। यदि दोषी क्षति-पूर्ति नहीं करना चाहता है, तो राज-न्याय से उसको दण्ड मिलना चाहिए। मार कर किसी की टांग तोड़ देने पर उसे औषध लगा कर उपचार करना होता है, अन्यथा बदला चुकाना होता है। यदि कोई व्यक्ति सम्मानित घराने की लड़की के सतीत्व को नष्ट करता है, तो उसे दण्ड स्वरूप आठ-चौदह (रु० 112) दे कर क्षमा प्रार्थना करने से मुक्ति मिलती है। यदि वह इतने रुपये का दण्ड देने में असमर्थ रहता है, तो चौदह रुपये का दण्ड देना ही होता है। इतना भी चुकाने में असमर्थ रहने पर दास बनकर रहना होता है। कोई संभ्रान्त व्यक्ति यदि निम्न जाति के लोगों को मार कर विक्षत करता है, तो उससे तीन चौदह (रु० 42) का दण्ड लिया जाता है। यह मंजूर न होने पर समाज को निर्णय देना पड़ता है।

थाम्मासात की कुछ महत्वपूर्ण नीतियां

1. पागल आदमी के किसी को जान से मार डालने पर भी पागल दोषी नहीं माना जाता है, 2. दो व्यक्ति एक समान हथियार से लड़ते हों और इनमें एक की मृत्यु होने पर उन लड़ने वालों में से कोई भी दोषी नहीं माना जाता है। 3. दो व्यक्ति को झगड़े में से छुड़ाने जाते समय हथियार से आघात पहुंच कर मरने पर कोई भी दोषी नहीं माना जाता है। 4. बैल, घोड़े, भैंस को भाड़े पर लाया गया, किन्तु कमजोरी के कारण भाड़े वाला काम न ले पाया, तो ऐसी स्थिति में मालिक को सूचित कर देना अति आवश्यक रहता है। अन्यथा मालिक को भाड़ा पूर्ण देना ही होता है। 5. यदि राजा या न्याय-पति ठीक निर्णय नहीं दे पाते हैं, तो दोषी (चोर) का दण्ड राजा या न्याय-पति को चुकाना पड़ता है। 6. पूर्व किसी बेची हुई सामग्री दूसरे किसी को बेचने पर, दुबारा बेचने वाले को पूर्व खरीदने वाले को दण्ड स्वरूप दो गुना अधिक देना पड़ता है। 7. भाड़े पर या यों ही पहले लाते समझ छोटा, दुबला, बूढ़ा ही क्यों न हो, किन्तु 'थाम्मासात' का नीति अनुसार वापस लौटाते समय हृष्ट-पुष्ट, छोटे के लिए बड़ा देना पड़ता है। यदि लकड़ी बांस आदि की सामग्री रही तो बदले में बराबर देना होता है। तोड़ने-मरोड़ने के लिए कुछ दण्ड अवश्य ही लिया जाता है। 8. मृतक के सम्बन्धी कोई न रहने पर सम्पत्ति का अधिकार राजा को दिया जाता है, फालतू व्यक्ति वहां मालिक नहीं हो सकता है। 9. सन्तान यदि अपने वृद्ध मां-बाप का पालन-पोषण नहीं करती है, तो उसे मां-बाप की सम्पत्ति का मालिक होने का अधिकार नहीं रहता है। जिसने वृद्ध

अवस्था में पालन-पोषण और सेवा की है, उसे ही जमीन-जायदाद का अधिकार दिया जाता है। 10. धूर्त यदि कुकर्म कर किसी के आश्रय में रहता है और उसके किये गये कुकर्म के बारे में आश्रयदाता को पता चलने पर उसे बेच सकते हैं। क्यों कि धूर्त की बदनामी का भार आश्रयदाता पर ही रहता है। 11. आश्रय विहीन स्त्री के अन्य पुरुष के आश्रय में रहने पर आश्रयदाता पुरुष, उस स्त्री को निःसंकोच भाव से अपनी पत्नी बना सकता है। इसमें कोई दूसरा किसी प्रकार बाधा नहीं पहुंचा सकता है। यदि वह स्त्री कुकर्म कर आई हो तो आश्रयदाता उसे बेच सकता है। 12. आधा मूल्य देकर—गाय, भैंस, बकरी, हाथी, घोड़े ले गया हो, पूर्ण दाम न चुकाने तक बेचे गये पशुओं के बच्चों का अधिकार दोनों को रहता है। दासी (स्त्री) के क्षेत्र में ऐसे खरीदने की बात रही और खरीदने वाले मालिक ने स्त्री बना लिया है; अब वह उस स्त्री पर क्रीत-दासी का-सा व्यवहार नहीं कर सकता है। उसे पत्नी तुल्य समझना चाहिए और उसकी सन्तान को पुत्र जैसा व्यवहार करना पड़ता है। 13. किसी ने तुम्हारे परिवार के एक व्यक्ति को जान से मार डाला है, तो तुम भी मूर्ख बनकर उस हत्यारे की हत्या कर बदला चुकाने की बात मत सोचो, बल्कि उस हत्यारे को अपने घर में नौकर बनाकर रखो, तो इसमें कोई किसी का विरोध नहीं कर सकता है। ऐसा करने का पूर्ण अधिकार है। उसे मार डालने से कोई फायदा नहीं है। बदला चुकाने वाला ही दोषी ठहरता है। 14. यदि पत्नी पति-गृह छोड़कर मैके में आकर रहने लगती है, किन्तु पति उसे त्यागना नहीं चाहता है, किन्तु पत्नी, पति-गृह लौटना नहीं चाहती है, तो उक्त स्त्री के मां-बाप, भाई-बान्धव को पूर्व लड़की के बदले में लिये गये रुपये (सामान) वापस करने पड़ते हैं, यदि लौटाने में असमर्थ रहे तो दामाद अपनी पत्नी को दूसरे के यहां बेच सकता है। 15. गाय, भैंस, बकरी आदि का किसी के प्रांगण में मरने पर मृत-शव का सिर किस ओर (दिशा को) है। घर की ओर सिर करके मृत्यु हो तो घर वाले दोषी नहीं होते और घर के विपरीत दिशा को मुंह कर गिरा (मरा) हो तो इसी घर वाले को अपराधी समझना चाहिए, क्योंकि उसके मारने में ही वह भागते हुए गिर पड़ा है। 16. फैसला तय होने पर उसमें राज-न्याय भी हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। 17. प्रजा की संख्या घटने पर राजा और राज्य की मर्यादा हीन होती है। 18. दूसरों को मक्खी तुल्य (तुच्छ) समझने पर उसे हाथी के समान दण्ड भोगना होता है 19. बच्चो को भूख लगी तो वह रोता है और बड़ों को भूख लगी तो वे विधिपूर्वक मांगते हैं, किन्तु चुराने पर दण्ड मिलता है। 20. झूठ कहने और चोरी करने के लिए भी पूर्व प्रस्तुत होना आवश्यक है। यदि बन्दोवस्त ठीक नहीं रहा तो एक-दूसरे की बात अलग होने से दोषी ठहराया जा सकता है। 21. राज्य में मन्त्री-मण्डल ठीक रहने पर देश का शासन सफल हो सकता है। 22. वर्षा में भीगने से बच नहीं सकते और अपराध कर भागने से मुक्ति नहीं मिल सकती है। वह कहीं-न-कहीं फन्दे में आ ही जाता है। 23. यदि

घाव में औषध न लगायी जाये तो वह बढ़ता ही रहता है। वह भविष्य में महाकष्टदायक होता है और किसी बदनाम या झगड़े को निर्मूल न किया तो वह भविष्य में खतरा बना रहता है। 24. किसी ने तुम्हें कंकड़ से मारा तो तुम भी उसी से मार सकते हो और दूसरे ने यदि तुम्हें तृण से मारा तो तुम उसे तृण से ही बदला चुकाओ।

चाउ मानुक्मानो थाम्मासात्

न्याय विचार को 'थाम्मासात पेत्त्रा' कहा जाता है। यदि राजा या मन्त्री देश में सुशासन करते हैं, तो देश में सुख-समृद्धि होती है। चाउ-मानुक्मानों 'साङ्यासे' (ऋति-श्रमण) ने इस थाम्मासात् पोथी की रचना की है। राजशासन को ऐसा समझना चाहिए 'जैसे तेज तलवार की धार'। उससे शत्रु डरते हैं। सिंह जैसा निर्भय होना चाहिए,यदि किसी अपराधी ने घूस दिया भी तो उसे लेना नहीं चाहिए मिथ्याचारी, झूठे, बातूनी, डाइन समझकर उसके पक्ष या विपक्ष में सत विचार होनी चाहिए। निर्धन या असहाय सभी को प्रेम करना चाहिए। किसी ने सिंह या हिरण दिया भी तोइस 'थाम्मासात' की नीति को,तोड़ना नहीं चाहिए। जो विचार-पति निर्दोषी को दोषी ठहराता है और दोषी के पक्ष में न्याय लेता है, वह विचार-पति मरने के बाद नरक में प्रेत होता है। वह कल्प-कल्पान्तर नरकगामी होता है।

साक्षी के लिए उपयुक्त व्यक्ति :

1. जो त्रिशरण को मानता हो।
2. जो सत्यवादी हो।
3. जिसके जातिवंश अधिक हों।
4. जो व्यक्ति समाज तथा पितृ-मातृ का आदर करता हो।
5. जिसने प्रत्यक्ष देखा हो।
6. जो अच्छे-बुरे का भेद-भाव रखता हो।
7. जो प्रज्ञावान हो।
8. जो धर्म का ज्ञाता एवं उसमें विश्वास करता हो।
9. जो दूसरे की सम्पत्ति को देखकर लोभ नहीं करता हो।
10. जो दूसरे को सत मार्ग पर ले जाता हो।

उक्त दस प्रकार के व्यक्तियों से साक्षी लेने पर विचार सत्य साबित हो सकता है।

साक्षी के लिए अनुपयुक्त व्यक्ति :

1. जो राजा और प्रजा का दोषी हो।

2. जो आवारागर्दी करता हो।
3. जो नाना प्रकार की बातें बना सकता हो।
4. जो लिखने में पारंगत हो।
5. जो व्यापारी हो।
6. जो दूसरे का उपदेश नहीं लेता हो।
7. जिसे जातिवंश से च्युत किया गया हो।
8. जो नपुंसक हो।
9. जो भिखारी हो।
10. जिसने दूसरे का तीन बार साक्षी किया हो।
11. जो दूसरे के घर तीन या चार बार रहा हो।
12. जो परस्त्री के प्रति लोभ करता हो।
13. जो गर्भवती स्त्री का पति हो।
14. जो मातृ-पितृ को मारता-पीटता हो।
15. जो शराबी हो।
16. जो रिश्वत लेता हो।
17. जो दूसरे देश से नदी पार होकर आया हो।
18. जो ताड़ एवं ताम्बूल के पेड़ों पर चढ़ सकता हो।
19. जो कोट-कचहरी में जाता रहता हो।
20. जो विश्वास करने योग्य न हो ।
21. जो बार-बार दोषी हुआ हो।
22. जो व्यक्ति अकर्मन्य होकर घूमता-फिरता हो।
23. जो दूसरे के घर अधिक जाता हो।
24. जो दूसरे को कष्ट देता हो।
25. जिसके घर कुछ भी न हो।
26. जो दूसरे का कर्जदार हो।
27. जो निर्लज्ज हो।
28. जो दूर देश से आया हो।

उक्त अट्ठाईस प्रकार के व्यक्तियों को साक्षी नहीं बनाना चाहिए उन्हें साक्षी होने के लिए पूछना भी नहीं चाहिए।

दस प्रकार के उपयुक्त साक्षी :

1. जिस पुरुष या स्त्री ने पत्यक्ष रूप से मारते, काटते, हत्या करते, लूटते हुए देखा हो, उसे ही साक्षी के लिए उपयुक्त समझना चाहिए।

2. जिसने एकान्त स्थान में दूसरे की स्त्री चुराई हो, चोरी करते हुए देखा

हो या दूसरे की स्त्री को बुरी नजर से देखते हुए देखा हो, उसे ही साक्षी के लिए उपयुक्त समझना चाहिए।

3. जिससे दो या तीन बार न्याय-विचार में जीता हो समझकर, उसे दोषी साबित कर पराजित नहीं करना चाहिए।

4. किसी ने यदि कई बार न्याय-विचार में हारा है, समझकर उसे बार-बार दोषी नहीं मानना चाहिए।

5. उल्लिखित अट्ठाईस प्रकार के व्यक्तियों पर भी विश्वास नहीं करना चाहिए।

6. जो सम्पन्न होकर भी नीच कर्म करता है, उसे भी विश्वास नहीं करना चाहिए।

7. स्त्री भी यदि सत्य बोलती हो तो उसे साक्षी बनाना चाहिए।

8. कुकर्म करने वाला ब्राह्मण होने पर भी उसे साक्षी नहीं बनाना चाहिए।

9. जो नीच प्रवृत्ति के साक्षी को लेकर सत्यवादी को पराजित करता है, वह जीवित ही नारकीय के समान है।

10. साक्षी करने वाले व्यक्ति को उत्तर-पूरब दिशा को मुंह कर धर्म पोथी सिर पर रखकर साक्षी देना चाहिए। जिसने साक्षी दिया हो, यदि एक सप्ताह के भीतर उसे कुछ अपकार नहीं हुआ, तो उस साक्षी को सत्य मानना चाहिए। यदि एक सप्ताह के भीतर साक्षी देने वाले की कोई दुर्घटना हुई हो, तो फिर से विचार होना चाहिए।

किसी ने बैल, भैंस चोरी की हो, या मारा हो या बेची हो, तो उसके प्रमाण में पूरब के सात घर और पश्चिम के सात घर और पूरब में एक गांव हो तो उस पूरब और पश्चिम के गांव वाले को प्रमाण मिलने पर दोषी मान सकते हैं।

यदि घोड़े का विचार हो तो सत्तर घर के लोग दोषी होते हैं। यदि हाथी का विचार हो तो एक सौ घर के लोग दोषी होते हैं। यदि जमीन सम्बन्धी विचार हो तो एक हजार घर के लोग दोषी होते हैं। यह बात 'साङ्यासे' चाउ 'मानुकमानो' ने कहा है। फिर वह कहते हैं—"सभी गांव या नगर के लोग सत्य विचार ही करें।"

बड़े गांव या नगर से सात आदमी को साक्षी लेना चाहिए और छोटे गांवों से छह आदमी को साक्षी लेना चाहिए, अरण्य क्षेत्र के तीन आदमी को लेना चाहिए। यदि धार्मिक, ज्ञानी आदमी एक भी हो, तो उसे ही साक्षी ले सकते हैं। जो अज्ञानी मिथ्यावादी हो उसे साक्षी नहीं लेना चाहिए और उसे विश्वास भी नहीं करना चाहिए, जो आदमी साक्षी कर चार बार असफल होता है, उसके सिर को चौराहा कर मुण्डन कर उसके मुंह पर कालिख पोतकर उसे गांव या नगर से च्युत कर उसे भीख मंगवानी चाहिए। जो साक्षी उपयुक्त रूप से नहीं कहता है, पूछने पर अंट-

संट कहना है, चंचल-चपल है, उसे बेंत की छड़ी से सात बार मारना चाहिए।

किसी से व्यापार के लिए कर्ज लेकर व्यापार में घाटा होने पर सुविधा अनुसार धीरे-धीरे उस कर्ज को चुकाना चाहिए। मालिक यदि बादमें कहता है कि 'तुमसे कर्ज नहीं मिला', तो विचार में बुद्ध मूर्ति के सामने क़सम खानी होती है। यदि किसी ने इसमें हिचकिचाहट की तो उसे दोषी मानकर दण्ड देना चाहिए।

माहासामान्ता थाम्मासात

'माहासामान्ता थाम्मासात' की मूल-पाण्डुलिपि बरपथा खामति गांव के विहार में है। 'माहासामान्ता थाम्मासात' में कहानी एवं दृष्टान्तों की प्रमुखता है। ग्रन्थ का नामकरण 'चाम्पुतिक' (जम्बुद्वीप) के महासामाता सुविचारक राजा पर हुआ है। सभी का विचार माहासामान्त राजा ही करते हैं। पोथी में बाईस विषयों का उदाहरण सह न्याय विचार का विवरण है। यहां विस्तार भय के कारण केवल दो उदाहरण कथाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है और 'माहासान्ता थाम्मासात' की बीस न्याय-विचार सम्बन्धी सिद्धान्तों की विषय सूची दी गई है। विषय-सूची को देखकर ही अध्येता को समझने में सुविधा होगी।

आम तोड़ने वाले पर न्याय-विचार

बहुत पहले 'चाम्पुतिक्' (जम्बुद्वीप) में माहासामान्ता नामक एक योग्य न्याय विचारक राजा राज्य करता था। वह महान चक्रवर्ती और प्रजापालक था। उसकी प्रसिद्धि चारों ओर फैली थी। उससे न्याय-विचार पूछने के लिए दूर-दूर देशों से लोग आते थे। माहासामान्ता राजा के राज्य के ही एक गांव में दो पड़ोसी रहते थे। उन दोनों पड़ोसी के बगीचे की सीमा एक थी। एक ने बगीचे की सीमा में एक आम का पौधा लगाया था। कुछ साल बाद वृक्ष में आम फलने लगे। आम रोपने वाला मालिक फल बेचकर रुपया कमाता था। एक दिन बिना पूछे ही सीमा के पड़ोसी ने आम तोड़ा, तो दोनों पड़ोसी झगड़ने लगे। यह मामला न्याय-विचार के लिए दूर-दूर के न्याय पति के पास गया, किन्तु कोई भी निर्णय देने में समर्थ नहीं हुए। अन्त में वे निर्णय के लिए माहासामन्ता राजा के पास जा रहे थे, किन्तु मन्त्री से मिलकर उससे ही निर्णय लेने लगे। मन्त्री ने "आम तोड़ने वाले को दोषी माना और बदले में एक के दो कर दण्ड (बदला) चुकाने का आदेश दिया।

आम तोड़ने वाला नहीं माना, उन दोनों को साथ लेकर मन्त्री राजा के पास पहुंचा। राजा के पूछने पर दोनों ने अपनी बातें सुनाईं। अन्त में राजा ने निर्णय दिया कि इस में आम तोड़ने वाला दोषी नहीं है, अपिच, आम का पौधा रोपण करने वाला ही दोषी है। क्योंकि वह हर रोज आम बेचता है और रुपये कमाता है, किन्तु जमीन सीमा के पड़ोसी को एक दाना भी नहीं देता है। 'उस पड़ोसी के

जमीन (बाग) सीमा के पार भी तो वृक्ष की डालियां गई हैं।" "हां, बिना पूछे तोड़ने से उसे दोषी मान सकते हैं। किन्तु मांगने पर भी वह नहीं देता है। पड़ोसी के जमीन में गिरे हुए आम का अधिकार जमीन मालिक को होता है। बगीचे का पड़ोसी बिना पूछे वृक्ष से फल तोड़ नहीं सकता है।" राजा का निर्णय पाकर दोनों अपने गांव चले गये और पहले की तरह मिलकर रहने लगे।

सूदखोर को दण्ड

दो देशों के बीच एक महानदी थी। उस नदी से होते हुए पांच सौ व्यापारी जहाज में माल लाकर माहासामान्ता राजा के राज्य में व्यापार करते थे। दोनों देश से नियुक्त एक —'कर' लेने वाला कर्मचारी प्रमुख—प्रवेश मार्ग में रहता था। पहले वहां जो कर्मचारी था, अब वह नहीं रहा, उसकी मृत्यु हो गई थी। उस पद पर दूसरे कर्मचारी की नियुक्ति हुई थी। वह निर्धारित कर के मूल्य से दो गुना अधिक कर वसूलता था। वे पांच सौ व्यापारी व्यापार के लिए आये, उनसे भी उसी प्रकार कर वसूला। इस बार अधिक कर चुकाने के परिणाम-स्वरूप उनके व्यापार में घाटा हुआ। धूर्त कर्मचारी कुछ ही दिनों में धन का मालिक बना! अब उन व्यापरियों ने व्यापार के लिए उस देश में आना ही बन्द कर दिया। वे व्यापारी क्यों नहीं आते हैं? उनके न आने से कुछ व्यवहारिक सामग्रियों की कमी होने लगी। राजा ने इसे समझने के लिए दूत भेजा। समाचार ले जाने वाले राजदूत से व्यापारियों ने कहा—"माहासामान्ता राजा के देश में पहले सुशासन होता था, किन्तु आजकल वहां लूट-पाट होता है। पहले जो व्यक्ति हमसे कर लेता था, वह अब नहीं है। उस पद पर एक महादुराचारी कर्मचारी है। उसने हमसे गत-बार निर्धारित मूल्य से अधिक कर लिया, जिसके कारण व्यापार में घाटा हुआ। उसे उचित दण्ड न देने तक हम व्यापार के लिए उस राज्य में नहीं जाएंगे।"

दूत ने व्यापारियों की प्रार्थना राजा को सुनाई। राज-आज्ञा से उस दुराचारी कर्मचारी को उसी क्षण पद-च्युत किया और उसे जीवित ही हाथ-पैर बांध कर पानी में डुबो कर मारा गया। वह कर्मचारी रुपये का मालिक था, किन्तु मामला विचार के समय माहासामान्ता राजा धनी-दुखी का भेद-भाव नहीं रखता था और इस प्रकार का भाव किसी को भी नहीं रखना चाहिए। दुराचारी लोगों के देश में रहने पर समाज की उन्नति नहीं होती है। उसे देख कर अन्य लोग भी धूर्त बनते हैं।

1. आम तोड़ने वाले पर न्याय-विचार।
2. सूदखोर को दण्ड।
3. आखिर दोषी कौन है ?
4. सहायता किसे मिलनी चाहिए ?

5. मुसाफिर का गृह-स्वामी होना।
6. हरिण के सिर का मालिक कौन है ?
7. स्वर्ण-पात्र पाने वाली दो स्त्रियां।
8. बैल का मालिक दोषी है।
9. सात कृषकों का झगड़ा।
10. तपस्वी की हत्या पर विचार।
11. मेंढक के लिए दो चूहों का द्वन्द्व।
12. आघात चिह्न अनुसार निर्णय।
13. आखिर मुर्गा चोर कौन है ?
14. पूरे तौर से दोषी।
15. अण्डों के लिए मुर्गियों के बीच झगड़ा।
16. संकट से मुक्ति देने वाले को पुरस्कार।
17. धूर्त-ठग को दण्ड।
18. मांस खाने वाला और गन्ध लेने वाला।
19. पर-स्त्री चुराने वाले पर न्याय।
20. चील की प्रार्थना अस्वीकार।

सुभाषित साहित्य

'पु-स्वन्-लान्

'पु-स्वन्-लान्' (पु—पितामह, स्वन—उपदेश/शिक्षा, लान्—पौत्र) यानी 'पितामह का पौत्र को उपदेश' पोथी खामति गांवों के विहारों में मिलती हैं। विहार के अन्तेवासी इसे कंठस्थ करते हैं। इस पोथी के उत्तर में दूसरी पोथी 'लान्-थिन्-पु' (लान्—पौत्र, थिन—अनुशासन, पु—पितामह) यानी 'पौत्र का पितामह को अनुशासन' भी प्राप्त होती है, 'पु-स्वन्-लान्' की सूक्तियां खामति समाज में अति लोकप्रिय हैं, इन्हें प्रत्येक वयोवृद्ध, स्त्री-पुरुष, तरुण-तरुणी कंठस्थ रखते हैं, इसका छन्दमय रूप होने से यह सहज ही स्मृति में रह सकता है। स्त्रियां खामति लिपि की पोथियां पढ़ नहीं सकती हैं, किन्तु वे 'पु-स्वन्-लान्' के वाक्यों को कंठस्थ रखती हैं। 'पु-स्वन्-लान्' के वाक्यों को 'खाम्-फाङ्' (मुहावरे) के तौर पर भी कहा जाता है। यह छोटी-सी पोथी साहित्यिक गुणों से भरपूर है। इसमें ऐसी सुन्दर और यथोचित उपमाएं हैं कि वे मन को छू लेती हैं। पढ़ने से पाठक आसानी से मर्म को समझ सकते हैं। इस पोथी का खामति भाषा साहित्य में प्रमुख स्थान है। उदाहरणार्थ :

"यह अति पुरानी बात है। पितामह का पौत्र को उपदेश है। ये गुड़ जैसी

मीठी हैं। इसके खाने पर सारे शरीर में, इसका प्रभाव व्याप्त हो जाता है। पृथ्वी पर रहने वाले पुरुष-स्त्री, इसे हजार साल तक याद रखें। यह पितामह का पौत्र को उपदेश है। जानने की इच्छा हो तो सुनिए, मैं कहता हूं। मनुष्य मात्र को पारंगत होना चाहिए। धनवान होना अच्छा है। निर्धन होने पर लोग निन्दा करते हैं। आलसी मत बनो। अपना धान-खेत बड़ा बनाओ। गृहस्थी को 'क्लान्त हुआ हूं', ऐसा नहीं कहना चाहिए। कहीं रहने पर भी अपने शील को मत भूलो। आज काम करने की इच्छा नहीं है, ऐसा मत कहो। निर्धन होने पर चिन्ता में फंस जाओगे। पहनने के वस्त्र फट कर (नंगी) पीठ निकल जाएगी। लोग तुम्हारा मजाक उड़ाएंगे। स्त्री-पुरुष सभी लोग तुम पर हंसेंगे। हर कोई तुम्हें तुच्छ समझकर मजाक करेंगे। ऐसी अवस्था में लोग तुम्हारे ऊपर से लात मारते हुए जाएंगे।

और एक बात कहता हूं। हृदय से चालाक बनो। कहीं जाने पर दौड़-धूप न मचाओ। पैर में कांटा गढ़ जाएगा। कहीं जाने से पहले पीछे देखो। भूल से छूटी हुई तुम्हारी चीजें मिलेंगी। पहली, बाढ़ के समय नदी में मत तैरो। गहरे पानी में घड़ियाल रहते हैं। वर्षा के अन्त में पुल पर मत चढ़ो। वह पुल टूट कर गिर सकता है। ऊंचे वृक्ष पर मत चढ़ो। फिसल जाने से दुर्घटना हो सकती है। शाखा सूखी हो सकती है। हरे पत्तों से ढंकने से पता नहीं चलता है। आगे पीछे बिना विचारे सूखी हुई लकड़ी पर भार पड़ने से टूट कर गिर जाएगी। नदी पार होते समय काष्ठों को देखना चाहिए। दूसरों के जाने पर ही बाद में जाना चाहिए। कहीं जाने पर अपना हथियार साथ रखो। हिंसक बाघ और डाकू मिल सकते हैं। हमारी हिंसा करने वाले अधिक हैं। जब वह सम्मुख आए तो डट कर सामना करो। शरीर से हथियार को अलग मत रखो। तलवार, धनुष-वाण, बन्दूक और ढाल रखो। तीक्ष्ण भाले का डण्डा चिकना हो। नाहक जीव-जन्तुओं को हानि न पहुंचाओ। पंचशील को अपने शरीर में रखो। सभी प्राणियों के प्रति प्रेम रखो। हमारा जीवन जैसा है, सभी का वैसा है, उन्हें नष्ट मत करो। ये सभी बातें अपने मन में धारण करो। यही मैं तुम्हें उपदेश दे रहा हूं।"

"आलसी न बनो, कामकाजी बनो। व्याधि और दु:ख से बचो। अपने घर को अच्छी तरह रखना चाहिए। हर साल उसकी देख-रेख करो। सोते से जल्दी जागो। बिस्तर से शीघ्र उठो। बिस्तर में बैठे न रहो। चार प्रकार की वस्तुएं लेकर मुंह धोओ (दातवन, पानी, अंगोछा और जीभी)। शीघ्र ही टहलने जाओ। तब तुम मनुष्य कहलाओगे। तब तुम्हारा खेत अधिक होगा। खेतों में जाकर देखा करो। बाग में नाना प्रकार के फल के पौधे लगाओ। फल-मूल हमारा आहार होता है। मां-बाप दो हैं। उनका उपकार न भूलो। उनकी अवमानना न करो।

हर रोज उनकी सेवा करो। कुटुम्ब—मामा-मामी सभी का पवित्र मन से आदर करो। और अपने ज्ञातिवंशों का भी। सात कुल तक अपने ज्ञाति को न भूलो। उन्हें कभी अलग मत समझो। दूसरे लोग भी तब तुम्हारी मदद करेंगे। सब कुछ बांट कर खाओ। तब तुम्हारे दुःख में पड़ने पर मदद करेंगे। तुम्हारी बात पर दूसरे हंसेंगे, तो उसे जानने की चेष्टा करो। दूसरे ने तुम्हारा उपकार किया हो, तो उसकी भी मदद करो। उसे कभी मत भूलो। मन में गांठ बांध कर रखो। अपने पड़ोसियों को नमक-मिर्च आदि मांगने पर दे दो। सब्जी आदि बनाने पर सभी को बांट कर खाना। अपने मन को संकुचित होने न दो। सभी की मदद करो। दूसरों के साथ झगड़ने वाले को अन्य लोग मार डालेंगे। यदि सभी के साथ मित्रता हो, तो सभी लोग तुम्हारे मित्र होंगे। हम दूसरे से स्नेह करें तो दूसरे भी हमसे करेंगे। दूसरे लोग तुम्हारा कुशल-मंगल पूछेंगे। दूसरे से प्रेम करें तो वे भी हमसे करेंगे। किसी से सहायता चाहने पर वे मदद करेंगे। यदि हम दूसरों की हिंसा करेंगे तो वे भी हमारी करेंगे। खराब होने पर लोग दुर्नाम गाएंगे। दूसरे के गाली देने पर भी तुम चुप रहो। मन को काबू में रखो। यदि दूसरों के साथ झगड़ोगे, तो लोग पागल कहेंगे। झगड़ने वाले दोनों ही पागल होते हैं।"

"अपने मन को काबू में रखो। कुप्रवृत्ति को आने मत दो। लोभ को न बढ़ाओ। मन को दुःख मत पहुंचाओ। द्वेष को आने मत दो। नाहक क्रोध न करो। मोह अन्धकार होता है। निर्लज्ज मत बनो। मैं इसी प्रकार की बातें कर रहा हूं। इससे आजन्म दुःख भोगना पड़ता है। इन्द्रियों का शीघ्र दमन करो। सिर को झुकाकर मन से सोच लो। पुल जैसा सीधा होता है, वैसा होना चाहिए। ज्ञान की बातें मन में रखो। नाहक बोलना नहीं चाहिए। त्रिशरण को समझ लेना चाहिए। वयोवृद्धों का आदर करो। तब श्रद्धा-संपन्न हो सकोगे। किसी को जल्दी नहीं पूछना चाहिए। तुम्हारे सम्मुख तीन गुरु हैं—बुद्ध, धम्म और संघ का आदर करो। डर कर रहना चाहिए। सिर झुकाकर नमस्कार करना चाहिए। लम्बे वस्त्र नहीं पहनना चाहिए। इसे देखकर लोग निन्दा करेंगे। किसी काम को पूर्ण रूप से करो। 'जानता हूं' कहकर गर्व न करो। बाघ की तरह चुप रहो। घनी झाड़ी में छुप कर रहो। अनावश्यक बातें न करो। बिना पूछे अपने आप मत बोलो। ढोल जैसा बनो। स्थिर बनकर रहो। ढोल वैसा ही होता है। ढोल को डण्डे से मारने पर, वह बज उठता है। बजाने पर वह ढोल, ध्वनित होकर गूंज उठता है। वन में रहने वाले बाघ की दो उपमा हैं। बाघ अपने पैर के नाखून जमीन पर दबाकर चलते समय वह लड़खड़ाता है, जब खाने की चीज आती है, तब वह अपनी ताकत से झपटता है। तभी वह अपने नाखूनों को निकालता है। तब जन्तु को आसानी से पकड़ लेता है। ज्ञानी-मानी लोग, अपने मन को गुप्त रखते हैं। जानने की इच्छा से यदि कोई पूछें, तो जो जानते हो उसे बता दो।

उसी को ज्ञानी कहा जाता है। तब तुम्हें कोई लज्जा नहीं होगी। सभी लोग तुम्हारी प्रशंसा करेंगे। लोग सुन्दर गले से आवाज देंगे। सभी लोग अच्छा कहेंगे। हे मेरे प्रिय पौत्र···!"

सिङ् फाकु

'सिङ् फाकु' पुस्तिका अति लोकप्रिय और दातव्य है। खामति धर्म पोथियों में इसकी प्रतियां सर्वाधिक मिलती हैं। किसी सामाजिक बौद्ध उत्सव-पर्व में 'सिङ् फाकु' दान करते हैं। विशेष कर मृतक के श्राद्ध-कर्म में। बौद्ध विहारों में धर्म शिक्षा प्राप्त करने वाले अन्तेवासियों को अक्षर ज्ञान के बाद सर्वप्रथम 'सिङ् फाकु' पुस्तिका ही पढ़ाई जाती है। चौखाम विहार से शीलवंश महाथेर ने 'चाउ सिङ् फाकु याउ' शीर्षक से हाथ से लिखकर डुप्लिकेटर-मशीन में सन् 1966 में 500 प्रतियां, सन् 1970 में 1000 प्रतियां और सन् 1972 में 1000 प्रतियां छापी हैं। इसमें पृ० सं० 18 हैं और व्यापारी खाते आकार में है। 'सिङ् फाकु' मूल बर्मी शब्द 'सिन्-फाकु' (सिन्—आदरणीय, फाकु—निरोग होना) का अपभ्रंश है। यह कथा थेरगाथा (172) में 'बक्कुलथेर' से साम्य है।

"प्राचीन काल में एक भिक्षु बीमार पड़ा, उस भिक्षु के विहार में शौचालय नहीं था। बीमार भिक्षु को शौच जाने में असुविधा होती थी। भिक्षु के कष्ट को देख कर एक उपासक ने विहार के परिवेण में एक शौचालय बना दिया। इस शौचालय बनाने के कुशल प्रभाव से वह उपासक मरने के बाद, वाराणसी के चाउखामुन नामक नगर श्रेष्ठी के घर जन्म ग्रहण किया। श्रेष्ठी ने ब्राह्मण को बुलाकर पुत्र का शुभ-लक्षण पूछा, तो ब्राह्मण ने बालक को गंगा-स्नान कराने को कहा। जब बच्चे को गंगा में स्नान कराने लगे, तब एक बड़ी मछली बच्चे को खा गई। वह मछली संयोग से कौशाम्बी के मछुए के जाल में फंस गई। मछली को कौशाम्बी के नगर श्रेष्ठी ने खरीद लिया। मछली के पेट फाड़ने पर एक सुन्दर बच्चा निकला। श्रेष्ठी को कोई सन्तान न थी, इसलिए उस बच्चे को पाकर श्रेष्ठी बहुत प्रसन्न हुआ और बहुत लाड़-प्यार से पाला और बच्चे का नाम 'पेङ् खाम' रखा गया।

मछली के पेट से बालक मिलने की बात चारों ओर फैल गई। वाराणसी के चाउखामुन श्रेष्ठी ने जब यह समाचार सुना, तब वह मेरा ही बच्चा होगा, सोचकर सन्तान लेने हेतु कौशाम्बी आया। चाउखामुन ने कौशाम्बी श्रेष्ठी से बच्चे को मांगा, किन्तु कौशाम्बी श्रेष्ठी न माना। दोनों श्रेष्ठी तर्क में फंस गए। अन्त में वे कौशाम्बी राजा के यहां निर्णय के लिए गए तो राजा ने उन्हें सलाह दी कि "आप दोनों को पुत्र प्रेम हो तो वाराणसी और कौशाम्बी राज्यों की सीमा पर एक संयुक्त भवन बनावें। वहीं आप लोगों का पुत्र 'पेङ् खाम' रहेगा। श्रेष्ठियों ने

वैसा ही किया। श्रेष्ठी पुत्र पेङ् खाम वहीं रहने लगा।

खामतियों में विश्वास किया जाता है कि भिक्षु आवास में शौचालय बनाने के सुकर्म से ही वह वाराणसी का श्रेष्ठी पुत्र मछली के खाने पर भी जीवित रहा। इसीलिए पर-जन्म में सुफल प्राप्त करने हेतु बौद्ध समाज इस छोटी सी पुस्तिका को दान करते हैं। और विहार परिवेण में 'लिइङ्' (शौचालय/वच्चकुटी) निर्माण कर भिक्षु संघ को दान करते हैं।

सुक्था-निपान

'सुक्था-निपान' में छोटी-छोटी छह दृष्टान्त कथाएं हैं। कथाओं में कायकम्म, वचीकम्म, मनोकम्म तथा दान-शरण-शील-समाधि के महत्व को समझाया गया है। खामति लोग इस पोथी को दान कर निर्वाण की प्रार्थना करते हैं। 'सुक्था-निपान' अत्यधिक लोकप्रिय और दातव्य पोथी है। खामति पोथियों में इसकी प्रतियां सबसे अधिक मिलती हैं। धार्मिक कार्यों में इसे अवश्य ही दान करते हैं। चौखाम विहार के शीलवंश महाथेर ने 'सुक्था-निपान' को व्यापारी खाते के आकार में डुप्लिकेटर मशीन से तीन बार—सन् 1967 में 500 प्रतियां, सन् 1969 में 1000 प्रतियां और सन् 1972 में 1000 प्रतियां छापी हैं। इसमें पृ० सं० 56 हैं। अन्तेवासियों को 'सिङ् फाकु' पुस्तिका के अभ्यास करने के बाद 'सुक्था-निपान' का अभ्यास कराया जाता है। इसे अन्तेवासी मुखाग्र करते हैं।

एक समय भगवान बुद्ध कपिलवत्थु में विहार करते थे। तब भगवान ने ऐसे आदमी को उद्देश्य कर अतीत कथा कही, जो दान देता था, किन्तु शील का पालन नहीं करता था।

"प्राचीन काल में विपस्सी बुद्ध के समय वाराणसी में एक श्रेष्ठी था, उसकी 'ये' और 'ई' (बड़ी और मझली) नाम की दो कन्याएं थीं। वह श्रेष्ठी मुक्त हस्त से दान तो देता था, किन्तु शील का पालन नहीं करता था। श्रेष्ठी दम्पति ने एक बार औषधि बनाने के लिए एक किलवटे (चिड़िया) को मारा था और स्वर्ण धागे की चोरी की थी। इस प्राणी हत्या तथा चोरी करने का कायकम्म का दोष श्रेष्ठी दम्पति पर लगा था। दोनों दम्पति मरने के बाद श्मशान में प्रेत बन गए। रात को स्वप्न में 'ये' तथा 'ई' ने अपने प्रेत रूपी मां-बाप को देखा, तो उनकी मुक्ति के लिए लड़कियों ने 'सुक्था-निपान' पोथी दान किया। 'सुक्था-निपान' दान करते ही श्रेष्ठी-दम्पति देवलोकगामी हुए और दोनों लड़कियां इस दान के प्रभाव से 'ये' ने चन्द्रदेवता के घर पुत्र होकर जन्म ग्रहण किया और 'ई' ने सूर्य देवता के यहां।"

"देवदत्त ने अजातशत्रु (चातासात) के साथ कुमन्त्रणा कर तथागत पर लांछन लगाई और भिक्षु-संघ में फूट डाली। सभी शाक्यवंशी बुद्ध के उपदेश से

सुमार्ग पर आए, किन्तु देवदत्त ही उपदेश न मानने से अविचीनरक में गया।"

"कस्सप बुद्ध (कासापा फ्रा) के समय बोधिसत्व ने वाराणसी के एक निर्धन परिवार में जन्म ग्रहण किया। बोधिसत्व सात साल की उम्र में ही सभी प्रकार के शिल्प में पारंगत हो चुके थे। उनकी वृद्धा मां अंधी थी। वह भिक्षा मांग कर मां को खिलाते थे। भिक्षा के लिए जाते समय दुष्ट लोग उन पर कुत्ते छोड़ देते थे। बोधिसत्व सभी प्रकार के विघ्नों को सह लेते थे। एक बार उन पर बड़ी विपत्ति आई। उस देश के मन्त्री के लड़के ने राजा की दासी के साथ व्यभिचार किया, दासी गर्भवती हुई। एक दिन बोधिसत्व भिक्षा के लिए राजा के घर गए थे। मंत्री ने अपनी और पुत्र की मर्यादा रक्षा के लिए दासी के साथ व्यभिचार करने वाला कहकर बोधिसत्व को पकड़कर राजा के पास ले गया। बोधिसत्व को राजा ने मृत्यु-दण्ड की आज्ञा दी। उन्हें बांधकर मारते-पीटते जल्लाद ले गए। बोधिसत्व को मरने का डर नहीं था केवल उन्हें असहाय अंधी मां की चिन्ता थी। बोधि-सत्व के साथ अत्याचार करने से देवराज इन्द्र का आसन गरम हुआ, इन्द्र ने आकर दुष्ट राजा और मंत्री को मृत्यु के घाट उतार दिया और बोधिसत्व को राजा बनाया।

"कन्थावन्ने नाम की एक लड़की भी अपनी अंधी मां का भिक्षा मांग कर पालन-पोषण करती थी। कन्थावन्ने की शादी बोधिसत्व के साथ हुई। इन्द्र ने औषधि लाकर दिया तो दोनों की अंधी मां की आंखें देखने लगीं। अब चारों प्राणी एक साथ रहते हुए दान धर्म करने लगे। दान के पुण्य प्रभाव से वे मरने के बाद देवलोक गामी हुए।"

"दीपंकर बुद्ध के समय दो--सुपिञ्ञा और दुपिञ्ञा नाम के बहुत दानी एवं श्रद्धावान सेठ थे। सुपिञ्ञा कामना करता था कि 'मुझे निर्वाण मिले' और दुपिञ्ञा कामना करता था, कि 'मुझे धन-सम्पत्ति, वैभव प्राप्त हो'। मरने के बाद दोनों देवलोक में उत्पन्न हुए। सुपिञ्ञा बिना बाधा ही चला गया, किन्तु दुपिञ्ञा के लिए रास्ते में बाधाएं थीं। कारण दुपिञ्ञा ने धन-सम्पत्ति और वैभव की कामना की थी। वह निर्वाण नहीं चाहता था। बौद्ध धर्म दर्शन में निर्वाण की प्रमुखता है।

लोका सुङ् पा

तब भगवान बुद्ध जेतवन विहार में विहार करते थे। सारिपुत्र, मोग्गलान को प्रमुख कर देव-मनुष्यों ने लोक कल्याण के लिए धर्म याचना की। जाति, जरा, व्याधि से कहीं भी और कोई भी बच नहीं सकता है। शिशु, युवक, वृद्ध कोई भी मृत्यु से बच नहीं सकता है। कर्म अनुसार उसे भोगना होता है। जो कुशल कर्म करता है, उसे देवपुरी प्राप्त होती है। जो अकुशल कर्म करता है, उसे निरय।

कर्म विपाक के कारण सभी को भोगना होता है। जो बुद्ध स्थान, स्तूप आदि को नष्ट करता है, वह निरथ गामी होता है। जो प्राणी के प्रति दया नहीं रखता है, वह भी नारकी है। सभी लोग इन बातों को ध्यान में रखकर कुशल कर्म कर नरक का द्वार बन्द करें। जीवन पर्यन्त इन बातों को ध्यान में रखनी चाहिए। अनित्य दुःख और अनात्म का स्मरण करता है, उसे पुण्य होता है। इससे पापी ही नहीं अपितु देवता भी डरते हैं। सुचिन्तक लोग अट्ठारह कल्प तक देवलोक में जाते हैं। कल्पों के नष्ट होने पर भी कुशल कर्म नष्ट नहीं होता है। इसलिए अनित्य दुःख और अनात्म को कभी नहीं भूलना चाहिए। इसका स्मरण कर भावना करने पर आयु दीर्घ होती है। मरने वाले वज्रघात की भांति क्षणभर में मर जाते हैं। पृथ्वी में जन्म ग्रहण करना दुःख है। दान प्रवृत्ति मन में लाना दुर्लभ है। त्रिशरण भी दुर्लभ है। धरती के नीचे से बृहत् पत्थर को निकालना बहुत सरल है, किन्तु जरा, व्याधि से रक्षा पाना असंभव है। ब्रह्मपुरी के वृक्ष की शाखा पृथ्वी को छू सकती है, किन्तु मनुष्य जन्म लेना दुर्लभ है। पटिसन्धि लेने पर भी कर्म विपाक के कारण नष्ट होता है। हे भिक्षुओ! यदि निर्वाण का मार्ग चाहते हो तो कुशल कर्म करने का उपदेश करो। तुम लोग भाग्यवान हो, इसलिए मुझसे मिल पाये हो। तुम्हें कुपथ नहीं मिलेगी। सभी लोग अनिच्च, दुःख और अनत्ता की भावना करें। सशस्त्र सेना के द्वारा रक्षा करने पर भी मृत्यु से रक्षा नहीं पा सकते हैं। उसे श्मशान में जाना ही होता है। इससे मैं भी बच नहीं सकता हूं। संसार में किसी को जीवन भर रहने का आदेश नहीं दिया जा सकता है। ये अनित्य, दुःख और अनात्म सागर जैसा है। इस उपदेश को सुनकर कुछ लोग कुशल कर्म कर सुमार्ग को प्राप्त कर निर्बाणगामी हुए। इससे रक्षा पाने के लिए लोग त्रिशरण एवं पंचशील का पालन करें।

नाङ् सुलिक्थी

भगवान बुद्ध के जेतवन विहार में रहते समय श्रावस्ती देश में एक निर्धन कुल में नाङ् सुलिक्थी ने जन्म लिया। उसका बाप पहले ही मर गया था। नाङ् सुलिक्थी धार्मिक प्रवृत्ति की थी, किन्तु दान करने के लिए कुछ भी नहीं था। उसने अपनी मां से आज्ञा मांगकर श्रावस्ती सेठ के घर नौकरानी बनने का निश्चय किया। वह सेठ के घर में रहने लगी। नाङ्-सुलिक्थी ने ईमानदारी से सेठानी को प्रसन्न किया। सेठानी प्रसन्न होकर उसे एक चोढ़ना (चादर) दिया। नाङ् सुलिक्थी बहुत सुन्दर थी।

एक दिन नाङ् सुलिक्थी सखियों के साथ शाक-सब्जी खोजने के लिए वन में गई थी। उसने सेठानी द्वारा दी हुई चदरिया पहनी थी। उस वन में एक ऋषि रहते थे। चोरों ने उनके वस्त्र लूट लिये। ऋषि को देखकर नाङ् सुलिक्थी को

दान करने की प्रबल इच्छा हुई। उसने सेठानी द्वारा प्राप्त वस्त्र को ही ऋषि को दान कर दी। जिसके कुशल प्रभाव से उसके पितृ मुक्त होकर देवलोकगामी हुए। नाङ् सुलिक्थी के पुण्य प्रभाव से उसकी मां भी देवलोकगामी हुई और स्वयं नाङ्-सुलिक्थी अप्सरा होकर देवलोक चली गई।

सेठ पुत्र की मृत्यु

श्रावस्त्री देश में एक सेठ रहता था, उसका एकमात्र पुत्र मर गया था। सेठ पुत्र शोक में व्याकुल रहता था, सेठ दुर्बल हो गया। तथागत बुद्ध ने अपने ध्यान-बल से उस सेठ के पुत्र शोक को जान लिया और पत्तचीवर के साथ बड़े भिक्षु-संघ को साथ लेकर सेठ के घर पहुंचे। सेठ ने बुद्ध प्रमुख भिक्षु संघ का आदर सत्कार किया। सेठ ने अपने एकमात्र पुत्र विरह की बात सुनाई। बुद्ध ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—"एक नगर में एक सेठ के पुत्र की सांप के डंसने से जंगल में मृत्यु हुई। सेठ ? सभी को एक दिन मरना ही होता है। संसार में जन्म लेने पर मरना ही होता है। हम सब व्याधि के अधीन है।"

"तुम्हें मैं एक पुरानी बात कहता हूं, सिंहल देश में दो भाई थे। उन में छोटा भाई पहले मरकर प्रेत बना। वह प्रेत पाखाना, खखार, थूक खाता था और श्मशान में रहता था। एक दिन बड़ा भाई नाश्ता, भात लेकर खेत की ओर जा रहा था। बड़े भाई को देखकर प्रेत श्मशान से निकल कर भाई के पास आया और अपने प्रेत बनने की बात बतलाई और बड़े भाई को उसकी मुक्ति के लिए वसुन्धरा को साक्षी कर भिक्षु संघ को दान देने के लिए कहा। बड़े भाई ने वैसा ही किया। दान के पुण्य प्रभाव से वह प्रेत पीपल वृक्ष का सुन्दर देवता बना। उसे सभी प्रकार का वैभव प्राप्त हुआ।" इन उपदेशों को सुनकर श्रावस्ती सेठ की प्रज्ञाचक्षु उत्पन्न हुई और उसने भी पुत्र के कल्याण हेतु बुद्ध के प्रमुख भिक्षु संघ को दान कर पुण्यार्जन किया।

इन्हीं धार्मिक कथाओं के कारण अरुणाचल के बौद्ध लोग इस छोटी सी पोथी का बहुत ही आदर करते हैं। इसे त्रिरत्न को दान कर मुक्ति पाने का विश्वास करते हैं। गांव के बौद्ध विहारों में इसकी प्रतियां बहुत मात्रा में पायी जाती हैं।

माङ् काला सुक्

"माङ् काला सुक्" पोथी सुत्तनिपात 2, 4. महामंगलसुत्त की अट्ठकथा के आधार पर लिखी गई है। थाई देशीय पालि परम्परा में सुमंगल थेर कृत 'मंगल अट्ठ-दीपनी' मूल ग्रन्थ है। महामंगलसुत्त में अड़तीस (अट्ठतिसंच) मंगल की बातें कही गई हैं। इन्हीं मंगलों को समझाने के लिए कथाओं का उदाहरण देकर समझाया गया है। यहां 'माङ्काला सुक्' की तीन मंगल सम्बन्धी उदाहरण कथाओं

का सारांश प्रस्तुत किया जाता है।

असेवनाच बालानं

एक गांव में दो पड़ोसी रहते थे। एक ने कुत्ता पाला था और दूसरे ने बिल्ली। कुत्ते ने एक दिन बिल्ली को काट लिया। बिल्ली वाले ने गांव के प्रमुख विचार-पति के पास जाकर शिकायत की तो विचार-पति ने बिल्ली काटने वाले कुत्ते को मार डालने की सलाह दी। उसने कुत्ते को मार दिया। फिर कुत्ते का मालिक उसी विचार-पति के पास पहुंचा और सलाह मांगी तो उसने मार-पीट, लड़ाई-झगड़ा करने की सलाह दी। इस प्रकार मूर्ख विचार-पति की सलाह से लड़-झगड़-कर सारे गांव के लोग विनष्ट हुए। इसीलिए कहा है कि मूर्खों की संगति कर कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए।

पण्डितानंच सेवना

किसी समय, एक नदी तट के वन में दो मित्र—ऊदबिलाव तथा खरगोश—रहते थे। एक दिन खरगोश ने ऊदबिलाव से पूछा—"मित्र, तुम कितने प्रकार की विद्या जानते हो?" ऊदबिलाव ने उत्तर में कहा—"मैं 19 प्रकार की विद्या जानता हूं।" फिर ऊदबिलाव ने खरगोश से पूछा तो खरगोश ने कहा—"मित्र, मैं एक ही प्रकार की विद्या जानता हूं और वह भी मामूली सी है।"

दोनों मित्र एक स्थान पर रहते थे। समय पर दोनों अपना आहार खोजकर खाते थे। एक दिन ऊदबिलाव मछुए के फन्दे में फंस गया। ऊदबिलाव को बहुत देर तक न आते देखकर खरगोश को अपने मित्र की चिन्ता हुई। वह खोजते हुए मछुए के फन्दे तक जा पहुंचा, तो मित्र को मछुए के फन्दे में फंसा हुआ पाया। ऊदबिलाव बहुत चेष्टा करने पर भी फन्दे से छुटकारा नहीं पा रहा था। ऊद-बिलाव ने खरगोश को देखकर फन्दे से छुटकारा पाने का उपाय बतलाने को कहा। इस पर खरगोश ने कहा—"मित्र, मैं केवल एक ही प्रकार की विद्या जानता हूं और वह भी बहुत ही मामूली-सी है। तुम तो 19 प्रकार की विद्या में पारंगत हो, फन्दे से छुटकारा पाने का उपाय सोचो।"

उपदेश एवं परामर्श के बाद अन्त में खरगोश ने ऊदबिलाव से कहा—"मित्र जब मछुआ अपने फन्दे में आएगा, तब तुम मृतक जैसा बनो। जब वह तुम्हें फन्दे से निकालकर रस्सी आदि खोजने लगेगा, तब तुम भाग जाना या नदी में कूद जाना।"

इतने में मछुआ पहुंच गया, मछुआ ने ऊदबिलाव को मरा हुआ सोचकर फन्दे से निकालकर जमीन पर रख छोड़ा। फिर सोते-सोते ऊदबिलाव गाढ़ी नींद में सो गया, खरगोश ने उसे जगाने का उपाय सोचा, किन्तु मछुआ पास की एक झाड़ी में

रस्सी खोज रहा था। वह चतुर खरगोश लंगड़ाते हुए मछुए के पास निकलता है। उसे देखकर मछुए को लोभ हुआ और उसने खरगोश को पकड़ने के लिए उसका पीछा किया। कुछ दूर पहुंचने पर खरगोश शीघ्र ही मछुए की नजर से बचकर अपने मित्र ऊदाबिलाव के शयन स्थान तक पहुंचा और ऊदबिलाव को डाँटकर सोते से जगाया और भागने या नदी में कूदने के लिए कहा। नींद से जागकर ऊद-बिलाव ने धीरे से नदी में कूदकर अपने प्राण बचाए। इसीलिए कहा जाता है कि बुद्धिमानों की संगति करनी चाहिए।

बाहुसच्चंच सिप्पंच, विनयो च सुसिक्खितो

किसी गांव में एक आवारा आदमी रहता था, वह कुछ मंत्रादि जानता था। वह गांव के गाय चराने वाले बच्चों को नाना प्रकार का मैजिक दिखाकर प्रसन्न करता था। उसी देश में एक राजा का ब्राह्मण पुरोहित बातूनी था। जब वह पुरोहित बोलता था, तब पुरोहित के मुंह से थूक निकलती थी। राजा उससे बहुत हैरान था और राजा ब्राह्मण पुरोहित को कुछ कह भी नहीं सकता था।

राजा ने मैजिक वाले को बुलाकर ब्राह्मण पुरोहित की बात बता दी। वह मैजिक वाला गुलेल चलाने में भी पारंगत था। उसने राजा से कहा—महाराज, आप चिन्ता न करें, जब आपका पुरोहित आपसे बोलने लगेगा, तब मैं उसके मुंह में बकरी का विष्टा डाल दूंगा। आप केवल इतना ही कहिए कि—"पुरोहित के पेट में सेर भर बकरी के विष्टे हैं और आप स्वयं हंसिए!"

मैजिक वाला राजा के यहां पर्दे के पीछे छुपा रहा। जब ब्राह्मण-पुरोहित आकर राजा से बातें करने लगा, तब मैजिक वाले ने छोटी गुलेल से पुरोहित के मुंह में बकरी का एक सेर विष्टा डाल दिया। राजा बहुत हंसा और पुरोहित को विष्टे की बात बता दी, तो पुरोहित को कुछ संकोच हुआ और अपने घर चला गया। दूसरे दिन देखा कि उसने सेर भर बकरी की टट्टी की। पुरोहित मन ही मन बहुत लजाया। तब से वह राजा के यहां कम जाने लगा और जाने पर भी अधिक नहीं बोलता था।

मैजिक वाले को राजा ने बहुत धन दिया और आश्रय भी। उसकी छोटी सी गुलेल चलाने की विद्या भी बड़े काम आई। इसीलिए कहा जाता है—"बहुश्रुत होना और सभी प्रकार शिल्प सीखना चाहिए। यही जीवन का आधार है।"

लोका वात स्वन कोन

'लोका वात स्वन कोन' (लोका—लोक, वात—व्रत, स्वन—शिक्षा, कोन-आदमी) यानी मनुष्य को लोक-व्रत शिक्षा। इस पोथी में स्त्री जाति के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। इन नियमों का आज भी खामति समाज में पालन किया जाता है।

सुलक्षणा नारी बचपन से ही समझदार होती है। कुछ स्त्रियों का विवाह के बाद स्वभाव सुधरता है और कुछ का बिगड़ता है। वह कातने-बुनने के कार्य में भी पारंगत होती है। वह अभ्यास से केश जैसे छोटे सूत भी कात सकती है। फिर भी वह गर्व नहीं करती है। एक बार सिखाने पर उसे फिर सीखने की आवश्यकता नहीं रहती है। उद्यमी स्त्री के प्रति सब कोई प्रशंसा करते हैं। वह अनवरत कार्य में लगी रहती है। घर वाले भी उसे प्यार करते हैं। सिर्फ कातने-बुनने में ही वह पारंगत नहीं होती, बल्कि गृह कार्य में भी दक्ष होती है। कामकाजी युवती को युवक भी अपनी पत्नी बनाने में इच्छुक होते हैं। दूसरों से मजाक भी वह नहीं करती है। अपने मन को काबू में रखती है। अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित नहीं होती है। इन्हें वर पाने की चिन्ता नहीं रहती है। अपने स्वभाव के बल से वह अच्छे कामकाजी युवक को पाती है। वह सुमधुर भाषिणी होती है।

स्त्री मात्र को अपनी मर्यादा की रक्षा करनी चाहिए। राग-द्वेष को मन में नहीं रखना चाहिए। इस 'लोका वात स्वन कोन' की बातों को सभी मनुष्य को याद रखनी चाहिए। अश्लील बातों का उच्चारण नहीं करना चाहिए। पर-पुरुष के अंग से अंग स्पर्श करना शोभा नहीं देता है। उससे दूर रहना चाहिए। जो तुम्हारा वास्तव में प्रेमी है, उससे खुलकर प्रेम करना, अन्यथा तुम्हें दुर्नाम का बोझ उठाना होगा। युवक स्वार्थ पूरा कर दूर भागता है। संसार की नीति है कि पुरुष और स्त्री के बीच मिलन परम आवश्यक है। दोनों का मिलन न रहा तो संसार की नीति लुप्त हो जाएगी। स्त्री-पुरुष के बीच की समस्या आदिकाल से चली आ रही है। स्त्री पुरुष को काम-पाश से बांधती रही है। यह आज की ही बात नहीं है देवता भी स्त्री-पाश में बंधे हुए थे। विवाह के बिना संसार अंधेरा है। अविवाहित व्यक्ति समाज में मिलकर रह नहीं सकता है, वह चरित्रहीन होता है।

स्त्रियां सात प्रकार की होती हैं। कुछ पुरुष को गृह कार्य करवाती हैं। पति को दास बनकर काम करना होता है, यहां तक कि बिस्तर भी पुरुष को ही बिछाना होता है। जंगल में साग-सब्जी भी पुरुष को ही खोजना होता है। यदि वह बिना लिए घर आया तो पत्नी उसे डांटती है। ऐसे स्वभाव की स्त्री नरक लोकगामिनी होती है। कुछ स्त्रियां बाजारू स्वभाव की होती हैं। इस स्वभाव की नारी पुरुष के एक शब्द कहने पर वह सौ गालियां सुनाती हैं। उसकी वाणी विषाक्त तीर की भांति चुभती है।

दूसरे प्रकार की स्त्रियां, किसी प्रकार के कार्य को करने में वह पारंगत नहीं होती है। धान कूटते समय, मुर्गी को भगाते समय धान की डाली को गिराती है। वह अपने पति को त्यागने की बातें सोचती है। पति को मार कर दूसरे को पति चुनना पसन्द करती है। पकाते-बनाते समय भी गालियां सुनाती है। कैसे वचन कहकर पति को क्रोधित किया जा सकता है। वही करती है। बच्चों को नाहक

मारती-पीटती, रुलाती है। वह अपने स्वामी को भी मारना चाहती है, किन्तु ऐसा करना नीति से घातक है। ऐसे स्वभाव की स्त्री होने पर स्त्री-पुरुष के बीच झगड़ा बना रहता है। स्त्री नाना अश्लील शब्दों का उच्चारण कर गालियां सुनाती है। इस प्रकार की स्त्रियों को निम्न-श्रेणी में रखा जाता है।

तीसरे प्रकार की स्त्री चोर के लक्षण की होती है। इनकी तुलना चूहे से की जाती है। पति की अनुपस्थिति में वह नाना प्रकार से पति को कष्ट पहुंचाने के सम्बन्ध में सोचती है और धन-सम्पत्ति दूसरों को बांट देती है। पर-पुरुष के साथ गुप्त कर्म करती है। रुपये पैसे नाहक खर्च करती है।

चौथे प्रकार की सुचरित्रा नारी—उद्यमी, पारंगत नारी मधुर वाणी से अपने पति को सत्-पथ सिखाती है। कैसे दाम्पत्य जीवन सुखी हो सकता है, इसे समझाती है। गृह कार्य समाप्त कर वह खेत के कार्य में जाती है। पति को पारंगत होने के लिए उपदेश देती है। धान रोपण का कार्य उपयुक्त समय पर न हुआ तो फसल अच्छी नहीं होती है। धानागार में अन्न संग्रह रहने पर रुपये समझना चाहिए। धन और धान में कोई अन्तर नहीं है। वह अपने पति को नाना प्रकार के उपदेश देती है। पति के सभी प्रकार के कार्यों में हाथ बंटाती है। वह अपने पति की ही मदद नहीं करती, बल्कि पड़ोसी और सम्बन्धियों की भी मदद करती है। सभ्य होने के लिए उपदेश देती है। इस प्रकार की नारी मां की श्रेणी में गिनी जाती है।

पांचवें प्रकार की स्त्री (पत्नी), बड़ी बहन जैसी होती है। इस स्वभाव की नारी पति से बुद्धिमती होती है। किसी कार्य में स्त्री ही पहले जाती है और पति बाद में जाता है। विभिन्न प्रकार के कार्य के लिए मार्ग दर्शाती है। स्त्री के जाने से पहले पति कहीं भी नहीं जाता है। खेत-कार्य में वह पारंगत होती है। पति को कष्ट उठाने नहीं देती है। पति को कष्ट होगा समझकर स्वयं कठोर परिश्रम करती है। ग्रह-कर्म भी स्वयं करती है। धन-सम्पत्ति की मालकिन वही होती है, इस पर पति नाराज नहीं होता है। पुरुष को तो केवल अपने कार्य से मतलब रहता है। पुरुष को इतने भोले स्वभाव का नहीं होना चाहिए। पांचवें प्रकार की स्त्री बहुत कर्मी होती है। सुबह बिस्तर छोड़कर सूत कातती है। जैसे भी आलसी पति हो उसे डांटती नहीं है। घर वालों के लिए वस्त्र बुनती है। खाने-पीने के लिए हर प्रकार की चीजें बनाती है। साफ रहती है। ऐसी स्त्री के पति को भी पारंगत होना चाहिए। स्त्रियों के सभी प्रकार के कार्य करने पर पुरुष की मर्यादा नहीं रहती है। नीति अनुसार कार्य करना चाहिए, तभी संसार की परम्परा जीवित रह सकती है।

छठे प्रकार की स्त्री, छोटी बहन जैसी होती है। वह पति का आदर करती है, वह पति के हर कार्य में सहायक होती है। पति को अकले कहीं भी जाने नहीं देती

है। पति के वाक्यों का उल्लंघन नहीं करती है। पति के लिए जलपान आदि तैयार करती है। पति को कटु वाक्य नहीं सुनाती है और झूठ भी नहीं कहती है। गलती पर क्षमा मांगती है। पति के बीमार पड़ने पर उसकी सेवा-शुश्रूषा करती है।

सातवें प्रकार की स्त्री, दासी जैसी होती है। पति से डरती है। स्वामी के कुछ कहने पर वह धीरे से उत्तर देती है। सुबह मुंह धोने के लिए पति को गर्म जल देती है। सुमधुर भाषिणी होती है। पति का आदर करना अपना परम कर्तव्य समझती है। नाहक उत्तर नहीं देती, कार्य को शीघ्र कर पति के वाक्यों का पालन करती है। पति से राग-द्वेष नहीं रखती है। बिस्तर लगाकर पति को सुलाती है। पति को बिना कारण नींद से नहीं उठाती है। पति के लिए नये वस्त्र बुनती है। पति को नहलाती भी है। करघे में कपड़े भी तेजी से बुनती है। दासी जैसी होने पर भी वह कृत नहीं होती है। पति का आदर करने के कारण ही इस स्वभाव की नारी को दासी कहा गया है।

उल्लिखित सात प्रकार की स्त्रियों में से चार लक्षण की स्त्रियां सुलक्षणा हैं और तीन कुलक्षणा हैं। सुलक्षणा स्त्रियों को जितना बदला (रुपये) देने पर भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। चाहे तुम्हारे घर में कुछ भी न रहे, फिर भी बाद में वृद्धि होगी। कभी कष्ट उठाना नहीं पड़ेगा। कुलक्षणा नारी पति को तुच्छ समझती है।

लोका सामुक्थी

"लोका सामुक्थी" (लोक सुमुक्ति या लोक समाधि) में मृतक-संस्कार से सम्बद्ध 99 नीतियां हैं। इन नियमों का खामति लोग आज भी पालन करते हैं। यहां हमने प्रमुख-प्रमुख नियमों का सारांश प्रस्तुत किया है। यह मृतक-नीति की अपने ढंग की अच्छी सामग्री है।

तीन अलौकिक कथाएं

राजगृह में एक गर्भवती रानी की मृत्यु हुई। शव को सात दिन तक रखकर श्मशान में उसका दाह-संस्कार किया गया। दूसरे दिन लोग भस्माव-शेष के संग्रह के लिए गये, तो वहां उन्हें एक नवजात शिशु मिला। उसे श्मशान में देखकर लोगों को आश्चर्य हुआ। पता चला कि वह राजकुमार है। उसका नाम 'किक्सासाथी' पड़ा। मरघट से उठाकर लाने से उस राज्य में बहुत उन्नति हुई। कहा जाता है कि स्वर्ग से पंखी घोड़े और सफेद हाथी उसके राज्य में आने लगे। अन्त में, श्मशान में प्राप्त वह राजकुमार चक्रवर्ती राजा बना।

वैशाली में भी उक्त प्रकार से दूसरी एक रानी की मृत्यु हुई। सात महीने के गर्भ (भ्रण) के समय ही यह घटना घटी। श्मशान में दाह करते समय रानी के

पेट फटने से एक सुन्दर कुमार का जन्म हुआ। उसे घर लाया गया। उसका नाम 'चाउ-किवेसाथे' था। मरघट से लाया हुआ वह बालक बाद में चक्रवर्ती राजा बना।

तीसरी कथा, वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त की रानी की गर्भिणी अवस्था में ही मृत्यु हुई। दाह-संस्कार करते समय रानी के गर्भ से निकलकर चिता के ऊपर वह बालक बैठा था। राजा ने उस कुमार को घर लाकर राजकुमार बनाया। इस पर मन्त्रिमण्डल ने विरोध भी किया। किन्तु बाद में वह कुमार श्रेष्ठ राजकुमार बना।

गर्भवती स्त्री की मृत्यु

गर्भावस्था या प्रसव के समय स्त्री की मृत्यु होने पर उसका पति स्त्री की मृतात्मा को अस्त्र-शस्त्र और धनुषबाण से डरा-धमकाकर अपने गांव से भगाता है। वह अपनी मृत पत्नी की आत्मा को सम्बोधित कर कहता है—"आज से हम दोनों सदा के लिए अलग हुए हैं। दोनों के बीच का सम्बन्ध भी छूट गया है। तुम फिर कभी इस गांव में न आना। अन्यथा तुम्हें लज्जित होना पड़ेगा। तुम्हारी आवश्यक सामग्री मरघट में ही रख दी गई है।" गांव के लोग, गांव के मुख्य द्वार को बन्द करते हैं, एवं उस औरत के तलवे को सूई से क्षत कर देते हैं। वह प्रेत स्त्री विक्षत होने से गांव में फिर प्रवेश नहीं कर पाती है।

गणना के अनुसार निकालना

जिस दिन आदमी की मृत्यु होती है, उसी दिन शव को घर से निकालकर श्मशान-घाट पहुंचाना चाहिए। यदि उसी दिन नहीं निकाल पाते, तो फिर ज्योतिष-गणना से दिन, घड़ी आदि निर्धारित कर श्मशान ले जाकर दाह-संस्कार करते हैं।

अकाल मृत्यु

अकाल-मृत्यु से मरने वालों को विशेष रूप से दान-पुण्य, जल-पिण्ड विधि नहीं कर सकते हैं। अकाल-मृत्यु को दफनाने की प्रमुख प्रथा है। जो कुछ दान करना चाहते हैं, श्मशान में ही भिक्षु-संघ को बुलाकर देते हैं। किन्तु एक महीने के बाद नीति अनुसार घर को विशुद्ध कर जल-पिण्ड भी दे सकते हैं। चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष, सबके लिए नियम एक है।

जलने से मृत्यु

अग्नि में जलकर मरने वालों की जिस स्थान में मृत्यु होती है, उसी स्थान में केवल 'येनाम्' (जल उत्सर्ग) किया जाता है। अग्नि-दुर्घटना में मरने वालों की कोई

सामग्री घर में नहीं रख सकते। भूल से छूटने पर उसे कहीं फेंक दिया जाना चाहिए।

निषेध विधि

'चुङ्' (ताबूत) आदि में बन्द करते समय 'चुङ्' को घर से पूरब की दिशा में कभी नहीं बनाते। मृतक के संस्कार से सम्बद्ध कोई भी विधि पूरब दिशा में नहीं ही करते। पूरब के स्थान को अति उत्तम समझा जाता है।

बच्चों की मृत्यु

दस साल से कम उम्र के बच्चों का दाह-संस्कार नहीं करते, बल्कि समाधि देते हैं। नाना भांति के खाद्य भी दान नहीं कर सकते हैं। जो कुछ 'स्वम्-चिङ्' विधियां करते हैं, उन्हें मरघट में ही पूरा करते हैं। एक ही दिन में कर्म-काण्ड समाप्त करते हैं।

पागल मृतक

पागल होकर मरने वालों के लिए कच्चा पिण्ड यानी 'स्वम्-चिङ्' (चावल, साग-सब्जी आदि) मरघट में ही दान किया जाता है। इसको दाह नहीं करते, बल्कि समाधि देते हैं।

गोत्र से भिन्न की मृत्यु

गोत्र से भिन्न सम्बन्धियों का दूसरे के घर में मरना निषिद्ध है। ऐसी स्थिति में अन्य गोत्र के लोग उसे तुरन्त ही बाहर निकाल देते हैं। दूसरे के घर अपना सगोत्रीय भाई हो, तो उसे घर ला सकते हैं। किन्तु, अपनी पुत्री के दूसरे का पत्नी होने पर भी उसे अपने पितृगृह में मरने का अधिकार प्राप्त है, परन्तु उसकी सन्तान को नहीं।

शव को मरघट ले जाने की विधि

गांव के पूरब के किसी घर में मृत्यु होने पर उसे गांव के पूरब द्वार से निकालना निषिद्ध है। उस मुख्य द्वार को बन्द कर पश्चिम के द्वार से शव को मरघट ले जाने का रिवाज है और पश्चिम में मृत्यु हुई, तो शव को उत्तर दिशा से निकालना पड़ता है। गांव का श्मशान साधारणतः गांव से पश्चिम दिशा में होना अच्छा समझा जाता है।

व्याधि से मृत्यु

महामारी, हैजा आदि संक्रामक रोग से एक दिन में कई एक की मृत्यु होने पर उनका दाह नहीं करते। ऐसी स्थिति में दफनाने की प्रथा है और घर के भीतर अधिक समय तक शव को रखना निषिद्ध है। उसे शीघ्र ही मरघट पहुंचाते हैं।

मृत गर्भवती स्त्री को श्मशान ले जाने की विधि

गर्भवती स्त्री की मृत्यु हुई, तो उसे भी घर या गांव से शीघ्र ही निकालते हैं। गांव वाले उस शोकाकुल परिवार को कर्म-काण्ड के समय आर्थिक मदद नहीं कर सकते, सहायता देना वर्जित मानते हैं।

सन्तान होने के बाद माँ की मृत्यु

सन्तान-जन्म के दस महीने के भीतर ही शिशु की मां की मृत्यु होती है, तो उसका दाह-संस्कार नहीं कर सकते। बंटवारा होने के पश्चात, पुत्र की पत्नी (बहू) पुनः अपने मूल घर में आकर सन्तान-प्रसव नहीं कर सकती है।

स्वप्न के लक्षण

यदि किसी ने स्वप्न में तलवार को दो टुकड़े होकर टूटते देखा है, फहराता हुआ झण्डा देखा है, राजा के सिर से धुआं निकलते देखा है और स्तूप को भग्न होते देखा है, तो इस स्वप्न के फल घातक निकलते हैं और देश-भर में हाहाकार मचता है। इसके निवारण की असंख्य नीतियां हैं। जिसने स्वप्न देखा है, उसे ही यह कर्म करना पड़ता है। उसे सफेद वस्त्र पहनकर जप-ध्यान करना पड़ता है। सात दिन तक कर्म-विधियां की जाती हैं।

नीति का उल्लंघन होने पर

गांव के दक्षिण में आदमी की मृत्यु होने पर उसे उत्तर दिशा की ओर नहीं ले जा सकते। इसका उल्लंघन किया गया तो परिणाम घातक होते हैं। उत्तर कोने में मरने पर गांव के बीच से ही पश्चिम दिशा को ले जा सकते हैं।

मचान टूटने से गृह त्यागना

श्राद्धकर्म के समय यदि घर का मचान टूटता है, तो उसी क्षण उस घर को छोड़-कर उत्तर या पूरब दिशा को जाना चाहिए। गृहपति की मृत्यु होने पर उसे घर के मूल द्वार से निकालकर मरघट नहीं ले जा सकते हैं। शव को उत्तर और पश्चिम कोने के घर का टट्टर काटकर बाहर निकाला जाता है।

मार्ग में मृत्यु होने पर

कहीं मार्ग में मृत्यु होने वालों का दाह-संस्कार नहीं किया जाता है। और समाधि भी नहीं दी जाती है, बल्कि मृतक के घर की छत से सात तिनके निकालकर नीति के अनुरूप पूजा करते हैं। तत्पश्चात, शव को स्नान कराकर, सफेद वस्त्रों से लपेटकर उसे गले में रस्सी आदि से बांधकर पेड़ों पर लटकाते हैं। नीति के अनुसार सात दिन बाद उसे पेड़ से उतारकर समाधि देते हैं। सात दिन तक उस शव लटकाये गये वृक्ष के नीचे बत्ती प्रज्वलित की जाती है।

चेतन होकर मृत्यु होना

शव पुनः चेतन हो जाता है, तो उसके अंगों में लपेटे हुए कफन उतार देने चाहिए। फिर, कुछ देर बाद मृत्यु हुई, तो उसी क्षण भिक्षु-संघ को बुलाकर दान-पुण्य करना होता है। उसकी जितनी व्यावहारिक सामग्रियां हैं, उसे दान कर देना पड़ता है। भूल से छूटने पर उसे दूर कहीं फेंकना होता है। उन्हें घर में रखने पर कलंक कभी दूर नहीं होता है।

शव निकालकर मार्ग बन्द करना

गांव के उत्तर-पूरब कोने में किसी की मृत्यु होने पर अन्य गांव वाले उस घर की मूल सीढ़ी से मचान पर नहीं चढ़ सकते हैं। घर का मूल द्वार बन्द किया जाता है। घर का टट्टर काटकर नया द्वार बनाते हैं। जिस स्थान से टट्टर काटकर शव निकाला जायगा, उस मार्ग को शीघ्र ही बन्द किया जाता है। तब जातीय नीति के अनुसार श्राद्ध-कार्य करते हैं। इन्हीं कारणों से ही खामति लोगों के घर उत्तर-दक्षिण दिशा (लम्बाई) से बनाए जाते हैं। घर के दरवाजे भी दक्षिण की ओर ही बनाते हैं। जिस कक्ष में किसी की मृत्यु होती है, उसी कक्ष का टट्टर काटकर शव को निकाला जाता है। फिर, उस टट्टर को तुरन्त ही बन्द करते हैं। श्मशान जाने वाले लोग भी उसी मार्ग से निकलते हैं।

पागल कुत्ते के काटने से मृत्यु

पागल कुत्ते के काटने से मृत्यु होने पर शव का दाह-संस्कार कर सकते हैं, किन्तु श्राद्ध-कर्म नहीं। पुण्य-कर्म के लिए अन्य गांव वाले आर्थिक मदद नहीं कर सकते हैं। एक महीने के बाद कुछ पवित्रता के नियम मनाते हैं।

भिक्षु का देहान्त

बौद्ध विहार के पूरब दिशा की कुटी में अतिथि भिक्षु निर्वाण-प्राप्त नहीं हो सकते

हैं, किन्तु गांव के प्रमुख भिक्षु के लिए यह नियम लागू नहीं है।

अकेले मृत्यु होने पर

किसी आदमी को मरते समय किसी ने भी नहीं देखा हो, तो उस घर को शीघ्र ही छोड़ना पड़ता है। दूसरे घर का निर्माण करने के पश्चात ही मृतक की आत्मा को 'जल-पिण्ड' दे सकते हैं।

मृतक के घर में झगड़ा

शोकाकुल परिवार में लड़ाई-झगड़ा करना निषिद्ध है। जो ऐसा करता है, उसका परिणाम देशवासियों के लिए घातक होता है।

घर में आग लगने से मृत्यु

घर के भीतर ही आग से जलकर किसी की मृत्यु होने पर उसे शीघ्र ही मरघट ले जाना चाहिए। अन्यथा वह घर का प्रेत बनता है और गांव-भर के लोगों को सताता है।

अमावस में मृत्यु

अमावस के दिन मरने वाले को उसी दिन घर से निकालकर श्मशान पहुंचाना पड़ता है। यदि किसी ने इसका पालन नहीं किया, तो उसे सात पीढ़ी तक कष्ट हो सकता है। अमावस के दिन मरने वालों के लिए श्राद्ध-विधि-विधान भी नहीं किया जाता है।

मृतक की व्यावहारिक चीजें राहगीरों को देना

शव का स्थानान्तरण होने पर उस घर को त्यागना परम आवश्यक है। मृतक के कपड़े और व्यावहारिक सामग्रियां राहगीरों को देना चाहिए। यदि कोई दान करना चाहे तो राहगीरों को कर सकते हैं। इस प्रकार का दान भिक्षु-संघ भी ग्रहण नहीं कर सकता है।

साङ्क्येन पर्व में मृत्यु होने पर

'सङ्क्येन'[1] (वैशाखी उत्सव) के समय मृत्यु होने पर उसे घर से निकालकर शीघ्र

1. 'साङ्क्येन' के अवसर पर मृत्यु होने से तीन दिन पर्यंत वृक्ष में शव को लटकाए रखना होता है। उत्सव समाप्त होने पर उसे दफना सकते हैं। ऐसा इसीलिए किया जाता है कि इस अवसर पर नीति के अनुसार जमीन में गड्ढा खोदना मना है। 'साङ्क्येन' उत्सव का विवरण द्वितीय अध्याय में दिया जा चुका है।

ही श्मशान ले जाना पड़ता है। विशेष श्राद्ध-विधि नहीं कर सकते हैं। अन्य गांव वाले भी आर्थिक मदद नहीं कर सकते। सम्बन्धी लोग इच्छा होने पर उसी समय दान कर सकते हैं। घर वाले एकाध दिन आग भी प्रज्वलित नहीं कर सकते हैं। इसका उल्लंघन करने पर जाति-वंश में हानि पहुंचने की संभावना रहती है।

एक दिन में कई एक की मृत्यु

किसी गांव में एक ही दिन के भीतर कई एक की मृत्यु हुई तो सबके बाद मरने वाले को मरघट में दाह-कर्म करना होता है या समाधि देनी होती है। नीतिपूर्वक श्राद्ध भी किया जाता है।

'चुङ्' (ताबूत) में शव डालने की विधि

सम्मानित (भिक्षु/राजा) व्यक्ति के 'चुङ्' को नाना फूल आदि से तीन या चार स्तर से सजाना होता है। उसे 'म्याफङ्' कहते हैं। 'म्याफङ्' बनाने का कार्य घर वाले स्वयं नहीं कर सकते। यदि इसे बनाते समय कहीं गलती हुई, तो गांव वालों को परेशानी होती है, इसलिए विज्ञ, वयोवृद्ध मिलकर यह कार्य करते हैं।

वज्रपात से मृत्यु

वज्रपात से किसी की मृत्यु, जिस स्थान में हुई है, वहीं दान-पुण्य श्राद्धकर्म करना होता है। ऐसे वज्राहत शव को दक्षिण-पूरब दिशा की ओर मुंह करके उसे सीधा दफनाया जाता है। सिर का कुछ हिस्सा बाहर निकला रहता है। गांव के वयोवृद्ध, धार्मिक व्यक्ति मृतक के सिर पर सात टुकड़े कांटेदार फूल रखकर कहते हैं—"इस साल बारिश होना परम आवश्यक है और पृथ्वी में जितने पशु-प्राणी हैं, उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो···!" यदि वयोवृद्ध विज्ञ नहीं रहे, तो अपने सगोत्रीय को ही यह कार्य करना पड़ता है। इस प्रकार मरने वालों के परिवार से भिक्षु-संघ भी दान आदि ग्रहण नहीं कर सकता है। अचेतन अवस्था में व्यक्ति को घर पहुंचाने के पश्चात उसकी मृत्यु होती है, तो गांव के श्मशान घाट में उसे नहीं दफना सकते हैं। ऐसे वज्राहत शव को कहीं दूसरी जगह दफनाया जाता है। जिस कुदाल से कब्र खोदा जाता है, वह खोदने वाले को दे दिया जाता है। मालिक उस कुदाल को वापस अपने घर नहीं ला सकता है।

वृक्ष से गिरकर मृत्यु

वृक्ष से गिरकर मृत्यु होने पर उसके मां-बाप या सम्बन्धी शव को तीन बार लांघते हैं। यदि वे लांघना न चाहें, तो गांव के धार्मिक वयोवृद्धों को लांघने दिया जाता है। यदि अर्द्धमृत व्यक्ति को घर लाया गया, तो उसे घर के भीतर ले जाना

निषिद्ध है। उसे आंगन में रखते हैं। उसकी मृत्यु होने पर शव को नहीं नहलाया जाता है। श्राद्ध या 'स्वम-चिङ्' विधि श्मशान में करनी पड़ती है। उसी दिन उसे दफनाते हैं। उल्लिखित नियमों का उल्लंघन करने पर समाज को कष्ट उठाना पड़ता है।

रस्सी लगाकर आत्महत्या

गले में रस्सी लगाकर आत्महत्या करके मरने वाले को जल-पिण्ड देना वर्जित है। ऐसे मृतक को कफन से लपेटना भी निषिद्ध है। सर्वसाधारण रूप से 'स्वम-चिङ्' विधि करते हैं। इसकी शुद्धि के लिए भिक्षु-संघ भी परित्राण पाठ नहीं कर सकता है। वृक्ष से रस्सी को तीने बार काटकर गिराना होता है। मृतक के सम्बन्धियों को दूर ही रहना होता है, वे उसे छू तक नहीं सकते हैं। वज्रपात होकर मरने वाले की भाँति इसे भी सीधे जमीन में गाड़ते हैं।

बाघ के आक्रमण से मृत्यु

बाघ के आक्रमण से मरे हुए व्यक्ति के शव को दफनाया जाता है। विशेष श्राद्ध-कर्म नहीं कर सकते हैं। जहां मृत्यु हुई है, वहीं दफनाते हैं। श्मशान में 'स्वम-चिङ्' विधि से दान कर सकते हैं। भिक्षु-संघ परित्राण पाठ एवं आशीर्वाद नहीं दे सकता है। किन्तु दक्षिणा ग्रहण कर सकते हैं। शव को विभिन्न घास-फूस से पानी छिड़ककर नहलाया जाता है।

नदी में डूबकर मृत्यु

नदी में डूबकर मरने वाले के शव को पहले हल्दी-पानी से नहलाया जाता है। दाह-संस्कार नहीं कर सकते, बल्कि दफनाते हैं। कल्याण के लिए भिक्षु-संघ परित्राण पाठ नहीं कर सकता है। रस्सी से उस शव के हाथ-पैर नहीं बांध सकते हैं। एक महीना बीतने पर श्राद्धकर्म कर सकते हैं।

श्मशान में मृतक के जी जाने पर

श्मशान में मृतक जी उठता है, तो उसे घर नहीं ला सकते, उधर ही जंगल में झोपड़ी बनाकर रखा जाता है। उसको वापस गांव लाने पर गांव में कलंक होता है। समाज की नीति भंग होने से कठिनाई हो सकती है।

वज्रपात होने पर गृहत्याग

किसी घर या विहार में वज्रपात होने पर उसे त्यागना होता है। विहार में वन्दना-पूजा के लिए भी नहीं जा सकते हैं। घर या विहार में यदि कोई फांसी लगाकर

आत्महत्या करता है, तो उस घर या विहार को त्यागना अति आवश्यक है। एक ही महीने के भीतर, गांव मे तीन व्यक्तियों की मृत्यु हुई हो तो उन्हें चूल्हे का त्रिकोण जैसा कुलक्षण होना माना जाता है। इसीलिए, उन तीनों घरों को छोड़ने का आदेश दिया जाता है।

रोगी को लाते समय मृत्यु

दूसरे गांव से मृत्यु होने के पूर्व घर पहुंचने के पहले रास्ते में रोगी की मृत्यु होने पर उधर से ही श्मशान ले जाना होता है। घर लाना निषिद्ध माना जाता है। श्राद्धकर्म में सोना-चांदी दान करना आवश्यक होता है। गांव से दूर कहीं मृत्यु होने पर शव को पुनः गांव नहीं ला सकते। उसे उधर ही कहीं जंगल में झोपड़ी बनाकर रखना होता है। विशेष कर्म-विधि नहीं की जाती। अन्य गांव वाले श्राद्धकर्म के समय सहायता नहीं कर सकते हैं।

कोढ़ और चर्मरोग से मृत्यु

कोढ़, चर्मरोग आदि से मृत्यु होने वालों को दफनाया जाता है। विशेष श्राद्धकर्म विधि नहीं कर सकते हैं। एक महीने बाद गृह-शुद्धि-विधान कर सकते हैं। दान-पुण्य करना निषिद्ध माना जाता है।

सचित्र फुङ्चेन

सचित्र 'फुङ्चेन' पाण्डुलिपि में निरय (ङालाई) के चित्र काले हैं। देवभूमि और ब्रह्मभूमि के चित्र आकर्षक एवं रंगीन हैं। सभी चित्र खामति शैली के हैं। खामति गांवों के प्रमुख-प्रमुख विहारों में इसकी प्रतियां मिलती हैं। पोथी के चित्र पालि तिपिटक के विमानवत्थु एवं पेतवत्थु नामक ग्रन्थों के आधार पर चित्रित हुए हैं।

बौद्ध परम्परा के अनुसार छह प्रकार की कामावचर भूमि हैं। प्रायः अधिकांश देवगण वहीं उत्पन्न होते हैं। कुछ देवगण माता-पिता के शयन-कक्ष में उत्पन्न होते हैं। 'सुमेरु' (सिनेरु) पर्वत चक्रवाल के मध्य भाग में अवस्थित है। यह सिनेरु सप्त समुद्र तथा सप्त पर्वत से परिवेष्टित है। सुमेरु के पूर्व दिशा में सात हजार योजन दीर्घ और सात हजार योजन चौड़ा विदेह है। यहां के लोग पांच सौ साल लम्बी आयु के होते हैं। दक्षिण दिशा में दस हजार योजन दीर्घ और दस हजार योजन चौड़ा 'चाम्पुतिक्' (जम्बूद्वीप) है। यहां के लोगों की आयु अनिर्दिष्ट है। पश्चिम में सात हजार योजन दीर्घ तथा सात हजार योजन चौड़ा 'अपरगोयान' है। यहां के लोगों की आयु पांच सौ साल की होती है। उत्तर में आठ हजार योजन दीर्घ तथा आठ हजार योजन चौड़ा उत्तरकुरु है। यहां के लोगों की आयु एक हजार वर्ष की होती है। सुमेरु पर्वत की ऊंचाई चौरासी

हजार योजन है। इसके बयालीस हजार योजन ऊंचे युगन्धर पर्वत के मस्तक में 'चातुम्महाराजिका' है। इस युगन्धर पर्वत के शीर्षदेश को लेकर चन्द्र-सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण करते हैं। असुर-भूमि सुमेरु के पाददेश में अवस्थित है। चित्रों के बगल में 'फुङ्चेन' का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है :

चार अरूप ब्रह्मभूमि

1. आकासानंचायतन : अकनिट्ठ सुद्धावास ब्रह्मलोक से, आकासानंचायतन अरूप ब्रह्मभूमि 550, 8000 योजन ऊपर है। अरूप भावना कर इस ब्रह्मलोक में उत्पन्न होते हैं। इन ब्रह्मलोकवासियों की आयु 20,000 कल्प है।

2. विञ्ञाणंचायतन : आकासानंचायतन ब्रह्मभूमि से विञ्ञाणंचायतन अरूप ब्रह्मभूमि 550,8000 योजन ऊपर है। अरूप भावना कर इस ब्रह्मलोक में उत्पन्न होते हैं। इन ब्रह्मलोकवासियों की आयु 40,000 कल्प है।

3. आकिंचञ्ञायतन : विञ्ञाणंचायतन ब्रह्मभूमि से आकिंचञ्ञायतन अरूप ब्रह्मभूमि 550,800 योजन ऊपर है। अरूप भावना कर इस ब्रह्मलोक में उत्पन्न होते हैं। इन ब्रह्मलोकवासियों की आयु 60,000 कल्प है।

4. नेवसञ्ञा नासञ्ञायतन : आचिञ्ञायतन अरूप ब्रह्मभूमि से नेवसञ्ञा नासञ्ञायतन अरूप ब्रह्मभूमि 550,8000 योजन ऊपर है। अरूप भावना कर इस ब्रह्मलोक में उत्पन्न होते हैं। इन ब्रह्मलोकवासियों की आयु 84,000 (चौरासी हजार) कल्प है।

ध्यानभूमि (सुद्धावास ब्रह्मलोक) :

1. अकनिट्ठा : अनागामी सत्वगण इसी अकनिट्ठा नामक पंचम ब्रह्मलोक में उत्पन्न होते हैं। इन ब्रह्मलोकवासियों की आयु 16,000 कल्प है।

2. सुदस्सी : सुदस्सी सुद्धावास ब्रह्मलोक में अनागामी सत्वगण उत्पन्न होते हैं। इन ब्रह्मलोकवासियों की आयु 8,000 कल्प है।

3. सुदस्स : सुदस्स सुद्धावास ब्रह्मलोक में अनागामी सत्वगण उत्पन्न होते हैं। इन सुदस्स ब्रह्मलोकवासियों की आयु 4000 कल्प है।

4. आतप्प : आतप्प सुद्धावास ब्रह्मलोक में अनागामी सत्वगण उत्पन्न होते हैं। आतप्प ब्रह्मलोकवासियों की आयु 2000 कल्प है।

5. अविह : अविह ब्रह्मभूमि में अनागामी सत्वगण जन्म ग्रहण करते हैं। और वे पुनः नीचे न आकर वहीं निर्वाण लाभ करते हैं। अविह के देवताओं की आयु 1000 कल्प है।

ध्यानभूमि (रूपब्रह्म) :

6. असञ्ञसत्त : संज्ञा विराग भावना कर जो असञ्ञसत्त में जन्म ग्रहण करते हैं, उनकी आयु 500 कल्प है।

7. बेहप्फला : जो रूपावचर ध्यान के चतुर्थ ध्यान का लाभ करते हैं, वे इस ब्रह्मभूमि में उत्पन्न होते हैं। बेहप्फला ब्रह्मलोकवासियों की आयु 500 कल्प है।

8. सुभकिण्ह, 9. अप्पभाणसुभ, 10. परित्तसुभ : जो रूपावचर ध्यान में चतुर्थ ध्यान का लाभ करते हैं, वे गुणानुसार इन तीन ब्रह्मभूमियों में उत्पन्न होते हैं। परित्तसुभ ब्रह्मलोकवासियों की आयु सोलह कल्प है। अप्पमाणसुभ ब्रह्मलोक-वासियों की आयु बत्तीस कल्प है और सुभकिण्ह ब्रह्मलोकवासियों की आयु चौंसठ कल्प है।

11. आभस्सर, 12. अप्पमाणाभ, 13. परित्ताभ : जो रूपावचर ध्यान में द्वितीय और तृतीय ध्यान लाभ करते हैं, वे गुणानुसार इन तीन ब्रह्मभूमियों में जा सकते हैं। आभस्सर ब्रह्मलोकवासियों की आयु आठ कल्प है। अप्पमाणाभ ब्रह्मलोकवासियों की आयु चार कल्प है और परित्ताभ ब्रह्मलोकवासियों की आयु दो कल्प है।

14. महाब्रह्म, 15. ब्रह्मपुरोहित, 16. ब्रह्मपारिसज्ज : जो रूपावचर ध्यान में, प्रथम ध्यान लाभ करता है, वह गुणानुसार इन विविध ब्रह्मलोकों में जन्म ग्रहण करता है। त्रिहेतुक पृथक् जन और अष्ट आर्य पुद्गल—इन नौ श्रेणियों के व्यक्ति, त्रिविध ब्रह्मलोक में जन्म ग्रहण करते हैं। महाब्रह्मवासियों की आयु अर्ध-कल्प है। ब्रह्मपारिसज्जवासियों की आयु कल्प का तृतीयांश है।

17. परनिम्मित वसवत्ति : मनुष्यों के सोलह सौ साल में 'परनिम्मितवस-वत्ति' देवताओं की एक दिवा-रात्रि है। इन देवलोकवासियों की गणना में उन लोगों की परमायु सोलह हजार वर्ष है, किन्तु मनुष्य-गणना में नौ सौ इक्कीस हजार कोटि, साठ लाख वर्ष है। वसवत्ति देवपुत्त इस देवलोक के अधिपति हैं। इस देवलोक में द्विहेतुक पृथक्जन, त्रिहेतुक पृथक्जन तथा अष्ट आर्य पुद्गल—इन दस श्रेणियों के व्यक्ति जन्म ग्रहण करते हैं।

18. निम्माणरति : मनुष्यों के आठ सौ साल में निम्माणरति देवताओं की एक दिवारात्रि है। इन देवलोकवासियों की गणना में उन लोगों की आयु आठ हजार वर्ष है, किन्तु मनुष्य-गणना में दो सौ तीस कोटि, चालीस लाख वर्ष है। सुनिम्मित देवपुत्त इस देवलोक के अधिपति हैं। इस देवलोक में द्विहेतुक पृथक्जन त्रिहेतुक पृथक्जन और अष्ट पुद्गल—इन दस श्रेणियों के व्यक्ति जन्म ग्रहण करते हैं।

19. तुसित : मनुष्यों के चार सौ साल में 'तुसित' देवताओं की एक दिवा-रात्रि है। इन देवलोकवासियों की गणना में उन लोगों की आयु चार हजार वर्ष है, किन्तु मनुष्य-गणना में सत्तावन कोटि, साठ लाख वर्ष है। 'सन्तुसित देवपुत्त' इस देवलोक के अधिपति हैं। बोधिसत्व तथा उनके माता-पिता और पुण्यवान महापुरुष इसमें निवास करते हैं। इस देवलोक में द्विहेतुक पृथक्जन, त्रिहेतुक पृथक्जन और अष्ट आर्य पुद्गल—इन दस श्रेणियों के व्यक्ति जन्म ग्रहण करते हैं।

20. यामा : मनुष्यों के दो सौ साल में 'यामा' देवताओं की एक दिवारात्रि है। इन देवलोकवासियों की गणना में उन लोगों की आयु दो साल है, किन्तु मनुष्य गणना में चौदह कोटि, चालीस लाख वर्ष है। सुयाम-देवपुत्त इस देवलोक के अधिपति हैं। इस देवलोक में द्विहेतुक पृथक्जन, त्रिहेतुक पृथक्जन और अष्ट आर्य पुद्गल—इन दस श्रेणियों के व्यक्ति जन्म ग्रहण करते हैं।

21. तावतिंस : मनुष्यों के एक सौ साल में 'तावतिंस' देवताओं की एक दिवारात्रि है। इन देवलोकवासियों की गणना में उन लोगों की आयु एक हजार साल है, किन्तु मनुष्य-गणना में तीन कोटि, साठ लाख वर्ष है। देवराज इंद्र इस देवलोक के अधिपति हैं। इस देवलोक में द्विहेतुक पृथक्जन, त्रिहेतुक पृथक्जन और अष्ट आर्य पुद्गल—इन दस श्रेणियों के व्यक्ति जन्म ग्रहण करते हैं।

22. चातुम्माहाराजिक : मनुष्यों के पाँच सौ वर्ष 'चातुम्महाराजिक' देवताओं की एक दिवारात्रि के बराबर है। इन देवलोकवासियों की गणना में उन लोगों की आयु पांच सौ साल है, किन्तु मनुष्य-गणना में नब्बे लाख साल है। इस देवलोक के अधिपति चार महाराज हैं। इस देवलोक में सुगतिशील अहेतुक पुद्गल, द्विहेतुक पृथक्जन, त्रिहेतुक पृथक्जन और अष्ट आर्य पुद्गल—इन ग्यारह श्रेणियों के व्यक्ति जन्म ग्रहण करते हैं।

अपाय भूमि

जिस स्थान में 'अपगत' हो उसे उपाय कहते हैं। अपाय भूमि चार हैं : 1. तिर्यंक, 2. प्रेत, 3. असुर और 4. निरय।

1. तिर्यंक : जो जीव उच्चता के बजाय चौड़ाई की ओर बढ़ता है, उसे तिर्यंक कहते हैं। बन्दर, बाघ आदि चतुष्पद तथा द्विपद प्राणी तिर्यंक प्राणी के अन्तर्गत हैं। अपद, बहुपद प्राणी भी उसी में आते हैं।

2. प्रेतभूमि : जो मनुष्य लोक में हिंसक, कृपण, स्वयं भी दान नहीं करते और दूसरे को भी कुशल कर्म करने से रोकते हैं, वे ही प्रेतकुल में उत्पन्न होते हैं। ये प्रेत, सहस्र लक्ष वर्ष यहां तक कि एक बुद्धान्तर कल्प पर्यन्त, एक भात का कण तथा एक बूंद जल भी प्राप्त नहीं करते हैं। भूख और प्यास के कारण उनके शरीर

का मांस तथा लोहित सूख जाता है। केवल चर्म, अस्थि तथा स्नायु मात्र रह जाते हैं। कुछ प्रेतों का आकार-प्रकार साठ-सत्तर हाथ तक दीर्घ होता है। सौ साल तक खाने पर भी पेट नहीं भरता है। प्रेतायिन पुत्र-प्रसव कर उसे स्वयं खाती है। फिर भी भूख-प्यास मिटा नहीं सकती है।

3. असुर भूमि : सुमेरु पर्वत के पाददेश में असुर-भवन है। असुर-भवन की लम्बाई और चौड़ाई दस सहस्र योजन है। इन्द्र की उत्पत्ति से पूर्व तावतिंस में असुर लोग निवास करते थे। जब इन्द्र ने तावतिंस में जन्म ग्रहण किया, तब असुरों के साथ देवताओं का संग्राम हुआ। उस संग्राम में पराजित होकर असुर लोग सुमेरु पाददेश में आने के लिए बाध्य हुए। वर्ण-लावण्य में असुर लोग देवता जैसे ही होते हैं, किन्तु ये लोग कुछ हिंसक प्रकृति के होते हैं। परस्पर में मार-काट कर असुरत्व का परिचय देते हैं। इसलिए इन्हें असुर कहा जाता है।

4. निरय भूमि : निरय (नरक) में पापियों के शरीर-प्रमाण तीन मील, कुछ के अर्ध योजन, कुछ के एक योजन तक दीर्घ होते हैं। किन्तु देवदत्त का शरीर एक सौ योजन दीर्घ हुआ है। नारकियों का देह परिपक्व फोड़े जैसा दुःखदायक होता है। उन्हें सामान्य स्पर्श मात्र से महा कष्ट होता है।

संजीव निरय : यह सुमेरु पर्वत से पन्द्रह हजार योजन नीचे है। इस निरय में यमदूत पापियों को खण्ड-विखण्ड कर काटते हैं। नदी-स्रोत की भांति उनके शरीर से रक्त प्रवाहित होता है। मांसपेशियों से निर्गत दावाग्नि से पापियों के क्षत-विक्षत शरीर जलते रहते हैं। शरीर के एक बार जलकर समाप्त होने पर फिर पापी लोग जीवित होते हैं। इसलिए इसे संजीव-निरय कहा जाता है। इस निरय की आयु—षडविध स्वर्ग में प्रथम देवलोक 'चातुम्महाराजिका' देवताओं की आयु सदृश, मनुष्य-गणना में नब्बे लाख वर्ष है। ये नब्बे लाख साल संजीव निरय के एक रात और दिन के बराबर होते हैं। वही तीस रात्रि-दिन एक महीना है, वही दीर्घ काल, 500 वर्ष संजीव निरयवासियों की आयु है। जो क्रोधी, कामुक, कर्कश भाषा-भाषी होते हैं, वही इस निरय में उत्पन्न होते हैं।

कालसुत्त निरय : संजीव निरय से पन्द्रह हजार योजन नीचे कालसुत्त निरय है। बढ़ई जिस प्रकार काले सूत से रेखा खींचकर काठ चीरते हैं, उसी प्रकार यम-दूत पापियों को सुलाकर उन्हें चीरते हैं। इसलिए इस निरय को 'कालसुत्त' निरय कहा जाता है। यहां के नारकियों की आयु द्वितीय देव-लोक 'तावतिंस' देवताओं की आयु की भाँति मनुष्य-गणना में तीन कोटि, साठ लक्ष वर्ष है। यह तीन कोटि, साठ लक्ष वर्ष द्वितीय महानिरय 'कालसुत्त' निरय का एक रात्रि-दिन होता है। इस प्रकार 'कालसुत्त' निरयवासियों की आयु एक हजार वर्ष है। जो माता-पिता, आचार्य, भिक्षु-संघ तथा पूजनीय व्यक्तियों का अगौरव करता है या अपमान करता है, तिर्यंक प्राणियों को यन्त्रणा देता है, वह इस निरय में उत्पन्न होता है।

संघात निरय : 'कालसुत्त' निरय से पन्द्रह हजार योजन नीचे संघात निरय है। इस निरय में पापियों को कमर तक भूमि में गाड़कर दोनों से उत्तप्त लौहमय पर्वत द्वारा पीसा जाता है। पापियों के दो पर्वतों के संघर्षण से तप्त होने के कारण इसे 'संघात निरय' कहा जाता। यहां के नारकियों की आयु तृतीय देवलोक 'यामा' देवताओं की आयु की भांति मनुष्य-गणना में चौदह कोटि, चालीस लक्ष वर्ष है। यह चौदह कोटि, चालीस लक्ष वर्ष तृतीय महानिरय संघात निरय के एक दिन और रात्रि है। संघात-निरयवासियों की आयु दो हजार वर्ष है। ब्याध, कैवर्त, अन्याय रूप से दंड देने वाला, अधार्मिक राजा, दुःशील, घूसखोर, दान-शील में विश्वास न रखने वाले, दुष्कर्म से जीवन-यापन करने वाले लोग इस निरय में उत्पन्न होते हैं।

रोरुव निरय : संघात निरय से पन्द्रह योजन नीचे रोरुव निरय है। इस निरय में पापी लोग अविराम रोते रहते हैं इसलिए इसे 'रोरुव' कहा जाता है। यहां धुआं अति तीव्र है, सर्वप्रथम पापी लोग धुएं की यन्त्रणा में छटपटाते हैं। फिर धुएं से अग्निशिखा निकलती है। उससे पापियों का शरीर जलता रहता है। जो दूसरे को कष्ट पहुँचाते हैं, जीवित प्राणी को जलाते हैं, सुरा, गांजा, अफीम, ताड़ी आदि नशीली चीजों का सेवन करते हैं, उन्हें यह यन्त्रणा भोगनी पड़ती है।

महारोरुव निरय : रोरुव निरय से पन्द्रह हजार योजन नीचे 'महारोरुव' निरय है। रोरुव से यह निरय अधिक यन्त्रणादायक है, यहां धुआं नहीं है। केवल आग की लपटों में जल कर पापी लोग पिण्डाकृति के होते हैं। उठ या बैठ भी नहीं सकते हैं। समस्त निरय अग्निशिखा से परिव्याप्त है। चोर, दूसरे की सम्पत्ति बलपूर्वक लेने वाले, प्रवंचक, सुरापायी लोग इस निरय में कष्ट पाते हैं।

तापन निरय : महारोरुव निरय से पन्द्रह हजार योजन नीचे 'तापन-निरय' है। यह निरय इतना उत्तप्त है कि पापी लोग हिल-डुल भी नहीं सकते हैं। अग्नि-शिखा में जलते रहते हैं।

महातापन निरय : तापन निरय से पन्द्रह हजार योजन नीचे महातापन निरय है। यह तापन निरय से अधिक उत्तप्त है। इस निरय में प्रज्वलित लौहमय पर्वत-श्रेणी से पापियों को नीचे सिर कर नीचे की ओर गिराते रहते हैं। नीचे उत्तप्त वक्र-मुख के लोहे होते हैं। पापी वहीं गिरकर बिद्ध होते रहते हैं। जो त्रिरत्न के प्रति अभक्ति, मिथ्यादृष्टि, कर्मफल में विश्वास नहीं रखते हैं, वे ही इस निरय में कष्ट उठाते हैं।

अवीचि निरय : महातापन निरय से पन्द्रह हजार योजन नीचे शिलामय स्थान में महानिरय अवीचि है। यही अन्तिम निरय है। यहां अविराम पापियों को दुःख भोगना पड़ता है, इसलिए इसे 'अवीचि-निरय' कहा जाता है। पापी अग्निताप सहन न कर पाने से छटपटाते रहते हैं। इसमें पापी अत्यधिक कष्ट पाते हैं।

'अवीचि-निरय' गामियों की आयु एक अन्तर-कल्प है। जो माता-पिता की हत्या करता है, उसे इस 'महा-अवीचि' निरय में कष्ट भोगना पड़ता है।

बौद्ध परम्परानुसार उस्सद निरय : वेतरणी, पच्चनसुनख, सजोत्ति, अंगार-कास, लोहकुम्भी, पहुतसलिला नदी, सेलमयादि, सूनापण, मीलपिण्ड, असुचिरहद, बलिसविज्ञज, अयपब्बत, निरय, अयमुग्गर, सिम्बली, पच्चनक निरय का वर्णन भी है। सभी का वर्णन यहां संभव नहीं है।

इनके अलावा और पहास लोकान्तरिक निरयों का वर्णन भी 'फुङ्चेन' पोथी में है। पालि के तिपिटक, अट्ठकथा, टीका और सालीनियों में इन निरयों तथा देवभूमियों का वर्णन आता है। बौद्ध समाज इन बातों पर अत्यधिक विश्वास करता है। 'फुङ्चेन' में एक सौ अट्ठाईस (पाक् पाई साउपेत्) निरयों का वर्णन है। पोथी में प्रेतों के काफी चित्र हैं। इन पौराणिक कथाओं पर खामति लोग बहुत विश्वास करते हैं।

प्यापुङ्/प्याचात

रंगमंच एवं नाटक के वर्ण्य-विषय

खामति में जन-नाटक को 'प्यापुङ्'/'प्याचात' कहा जाता है। 'प्यापुङ्' का अर्थ है 'कथा का प्रदर्शन' और 'प्याचात' का अर्थ है 'जातक का प्रदर्शन'। खामति नाटकों का प्रदर्शन गांवों में होता है, जहां यातायात की सुविधाएं अत्यन्त सीमित हैं। अतः, रंग-प्रदर्शन यदि रात्रि में भोजन के बाद प्रारंभ होता है, तो उसका रातभर चलते रहना आवश्यक है, ताकि दर्शक समाज—विशेषतः स्त्रियों को मध्यरात्रि में दूर-दूर पैदल न लौटना पड़े। इसलिए खामति नाटककार नाटकों का वर्णन अधिक दीर्घ करते हैं। नाटक यदि केवल संवाद और कथानक पर ही आश्रित रहे, तो दो या तीन घंटों में ही समाप्त हो जाय। अतः, मस्करे और अभिनय का प्राचुर्य छोटे कथानक के दायरे को भी विस्तृत कर देता है एवं दर्शक को सुविधा और तृप्ति दोनों ही उपलब्ध हो जाते हैं।

प्रायः खामति नाटकों की रचना भिक्षु ही करते हैं। साधारणतः उनका अभिनय भी विहार में रहने वाले अन्तेवासियों से ही करवाया जाता है। विहार खामति समाज में केवल पूजन का केन्द्र ही नहीं है, बल्कि सामुदायिक जीवन मनो-रंजन तथा कला सौन्दर्य का भी है। 'प्यापुङ्ों' का प्रदर्शन प्रायः विहारों के आहाते में होता है। बौद्ध विहारों के अलावा, ग्रामीण धार्मिक मेलों और उत्सवों के अव-सर पर प्रायः 'प्यापुङ्' अभिनीत होते हैं। 'पोत्-वा' (त्रैमासिक वर्षावास की समाप्ति), 'प्वय-लेंङ्' (रथोत्सव) आदि उत्सवों में भी नाटक प्रदर्शन किया जाता है। मेलों के अतिरिक्त विवाहोत्सव, पुण्य-तिथि तथा इसी प्रकार के पारिवारिक

प्रयवोजनों के लिए भी 'प्यापुङ्' का प्रदर्शन किया जाता है। किसी को 'प्यापुङ्' दर्शन की इच्छा हुई तो नाटक-मण्डली को अपने घर बुलाते हैं। घर के आंगन या आहाते में 'प्यापुङ्' दिखाते हैं। उस आमंत्रित नाटक-मण्डली को कुछ रुपया भी दिया जाता है। चौखाम गांव में इस प्रकार की नाटक-मण्डली है। वह समय-समय पर नाटकों का प्रदर्शन करती है।

खामति 'प्यापुङ्' के प्रेक्षक प्रायः खुले स्थानों में बैठते हैं, अथवा ऐसे मण्डपों में जो चारों तरफ से खुला रहता है। रंगमंच में प्रकाश के लिए गैस, लेम्प जलाते हैं। कभी-कभी तो लकड़ी जलाकर प्रदर्शित करते हैं। नाटक दर्शकों में प्रायः, स्त्रियां एक तरफ बैठती हैं और पुरुष दूसरी तरफ। नाटक के पात्र अपने अभिनय और वचन (कथन) समाप्त करने पर दर्शकों के बीच कहीं बैठकर वह भी दूसरे अभिनेता का अभिनय देखता रहता है।

नाटक अभिनय से पूर्व त्रिरत्न वन्दना करते हैं और फिर वसुन्धरा देवी को साक्षी कर 'ये-नाम्' (जल उत्सर्ग) कर धर्म नाटक प्रदर्शन के प्रभाव से पुण्य प्राप्त करने की मंगल कामना करते हैं। कहा जाता है कि समय-समय पर गांव में धार्मिक नाटक प्रदर्शित करने पर गांव में महामारी आदि फैलती नहीं है। नाटक-कार को 'चाउ-मो' कहते हैं। 'चाउ-मो' की अनुपस्थिति में 'चाउ-मो-माउ' अथवा 'होक्ये' ही इसका संचालन करता है, अभिनयकर्ता अपना वचन सारा मुखाग्र करता है, पात्र दर्शक के सम्मुख अपना कथन पद्य में कहता है। खामति नाटकों की विषय-वस्तु जातककथाओं से रहती है। कथाएं प्रायः खामति शैली की होती हैं। पात्र देशकाल, कथोपकथन अपने ढंग से वर्णित होता है।

नाटकों में 'कुन-पेक' (विदूषक) भी कभी-कभी दर्शक के मनोरंजन के लिए ऊट-पटांग की बातें कर या अभिनय कर हंसाता है। विदूषक अलंकारों और शब्द-चातुर्य द्वारा अपनी आलोचना को रोचक और अनुरंजित रूप दे सकता है। खामति नाटकों में स्त्री-पात्रों की भूमिका में पुरुष ही उतरते हैं। साधारणतः कंठ-स्वर एवं कम उम्र के युवक को स्त्री-पात्र की भूमिका निभानी होती है। व्यवसाय के रूप में खामतियों में नाटक प्रदर्शित नहीं करते हैं। नाटकों का प्रमुख उद्देश्य तो है, मनोरंजन एवं धर्म। गांव के नवयुवक नाटक प्रदर्शित करने के बड़े उत्सुक होते हैं।

खामति 'ति-प्यापुङ्' (रंगमण्डप) में एक बड़ा नगाड़ा बजाया जाता है और मृदंग और ढोलक भी बजाते हैं। इन वाद्यों के साथ-साथ बड़ा झांझ बजाते हैं, इसे 'पाई-सेङ्' कहा जाता है। नगाड़े और मृदंग की ठनक दर्शकों को एकत्र करने का आमन्त्रण और नाटक प्रदर्शन के प्रारंभ की घोषणा होती है।

खामति रंगमंच में दृश्य परिवर्तन के लिए पर्दे आदि की आवश्यकता नहीं रहती है। नाटक प्रायः मैदान में, विचार के आस-पास ही प्रदर्शित किया जाता है

ढोलक, मृदंग एवं अन्य पुष्कर वाद्य ही पात्रों को एक प्रसंग से दूसरे एक संवाद से दूसरे की ओर मुड़ने का संकेत देता है।

खामतियों के धार्मिक नाटकों में युद्ध का दृश्य बहुत कम दर्शाया जाता है। दुष्टों को दण्ड देने के लिए कुछ है, किन्तु बुद्ध के उपदेश पाने पर दुष्ट भी शान्त प्रवृत्ति के होते हैं। त्रिशरण, पंचशील का श्रवण कर या उसका उच्चारण कर वह त्रिरत्न के प्रति विश्वास करने लगता है।

हरेक पात्र की गति चलने की भंगिमा उसके चरित्र को व्यक्त करते हैं। उनकी हस्तमुद्राओं में कुछ शास्त्रीय करणों के चिह्न भी दीख पड़ते हैं। अभिनय द्वारा भावों की अभिव्यक्ति करते समय अभिनेता अपने अंगों और कतिपय इन्द्रियों के संचालन से विभाव, अनुभाव, संचारी इत्यादि का नियोजन करता है। वाणी और स्वर, मुद्रा तथा अंगप्रक्षेप ये सभी अर्थ विशेष और भाव विशेष को अभिव्यक्त करने के लिए तदनुकूल प्रस्तुत किये जाते हैं, प्रेक्षक के हृदय में जो उद्वेग इसके परिणामस्वरूप उदय होता है, वह भी उसी भाव विशेष का परिचायक होता है।

नाट्य-प्रदर्शन के लिए नाट्य-मण्डप को 'ति-प्यापुङ्' या 'ति-प्याचात' कहते हैं। यह मण्डप विहार के परिवेण के खुले स्थान में अस्थायी होता है। बांस या लकड़ी, खरपतवार से मण्डप बनाते हैं।

खामति नाटकों में पात्र के चरित्र के अनुसार रंगों का विधान, उसकी प्रवृत्तियों के अनुकूल वस्त्रों का आयोजन शास्त्रसम्मत विधि से किया जाता है। आचार्य अभिनय यानी वेशभूषा और अंगराग द्वारा पात्र के चरित्र को प्रकट करना है।

खामति 'प्यापुङ्' के पात्र-पात्रियों की 'खिङ्-प्यापुङ्' (वेशभूषा) यदि यम अथवा किसी राक्षस की हो तो अभिनायक साधारणतः बड़े काय के व्यक्ति को लेते हैं। पात्रों की आन्तरिक विशेषताओं को प्रदर्शित करने के लिए उपयुक्त रंगों के जामे (ढीले वस्त्र) पहनाये जाते हैं, दैत्य के लिए काले और राजाओं, देवताओं और महानायकों (चाउ-आल्वङ्) के लिए कत्थई, उसके ऊपर शीशे के टुकड़ों से अलंकृत कढ़ाई वाली वास्कट पहनी जाती है। आभूषणों में प्रायः मोती और मूंगा के कंठहार और मालाएं, कोहुनी पर भुजाकीर्ति, कलाई पर तोल पवाड़ा, भुजाओं पर सोने की पत्ती, सिर पर मुकुट, कानों में कर्णफूल, कमर से दगले—कढ़ाईदार वस्त्र लटकता रहता है। शिरस्त्राण और मुकुट नाना आकार-प्रकार के होते हैं। सब से ऊंचे मुकुट, 'प्वङ्-सेङ्' कहलाता है। आभामण्डल सहित ये मुकुट 'चाउ-आल्वङ्' (नायक) तथा 'सिक्या' (इन्द्र) जैसे महत पात्रों द्वारा धारण किए जाते हैं। मुख प्रसाधन के लिए रंगों का चुनाव अत्यन्त सावधानी से किया जाता है। यम, राक्षस, दैत्य, भूत-प्रेत जैसे प्रचण्ड या भाव पात्रों के सिर पर 'क्वङ्-हो' या 'क्वक् ना' (मुखौटा) पहनते हैं। ये मुखौटे लकड़ी, बांस, बेंत से निर्मित होते हैं। इनकी

मुखाकृति भयावह होती है। देखते ही प्रतीत होता है कि प्रचण्ड प्राणी है।

अंगराग और वेशभूषा में जो सामग्री इस्तेमाल होती है, वह प्रायः स्थानीय कलाकार और शिल्पी ही प्रस्तुत करते हैं। इस तरह खामति नाट्य प्रदर्शन के बहाने स्थानीय हस्तशिल्पियों को अपनी दक्षता दिखाने का भी अवसर मिलता है। खामति नाट्य-शैलियों में इस तरह के रूढ़िगत प्रसाधन और वेशभूषा का व्यवहार आज भी होता है।

स्त्री-पात्र में मुख्य नायिका को 'नाङ्-क्वय' कहते हैं। 'नाङ्-क्वय' सुन्दर होती है; उसका जन्म राजकुल, देवकुल, या अलौकिक ढंग से होता है। नायिका राक्षस, दैत्य आदि के चंगुल में फंस जाती है, तो 'चाउ-आल्वङ्' (नायक) उसे छुड़ाता है। 'चाउ-आल्वङ्' यदि मुसीबत में पड़ता है, तो इन्द्र आकर उसकी रक्षा करता है, या देवताओं को भेजता है। देवता उसे अमोघ शस्त्र-अस्त्र देकर 'चाउ-आल्वङ्' की मदद करता है, कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि विवश होकर या कृतज्ञता स्वरूप 'चाउ-आल्वङ्' की दैत्य रक्षा करता है अथवा रक्षा का उपाय बताता है या उसे आवश्यक अस्त्र देता है। इन अस्त्रों की शक्ति अमोघ होती है, वह व्यर्थ नहीं जाती है।

खामति नाटक प्रदर्शन में न कोई सीन-सीनरी, न कोई मंच। वाद्यों के नाम पर एक बड़ा मृदंग और बड़े-बड़े झांझ होते हैं, प्रायः 'प्यापुङों' का सूत्रधार नाटककार ही होता है, वह अभिनेताओं को अभिनय करने और वक्तव्य पाठ करने का निर्देश करता है। नाटककार सामाजिक परिस्थिति के आधार पर नाटकों की रचना करता है। अवसर पर पास-पड़ोस के अन्य वासिन्दों का दृश्य भी प्यापुङों में नाटककार समेट लेता है।

प्रायः नाटक धार्मिक ही होते हैं। विषय-वस्तु बौद्ध साहित्य पर आधारित होती है, कारण नाटककार का मुख्य उद्देश्य होता है, इन नाटकों के माध्यम से जन-समाज में धर्म की बातें करना। कुछ 'प्यापुङ्' रामायण तथा महाभारत के आधार पर भी रचे गए हैं। इन 'प्यापुङ्ों' के प्रदर्शन भी समय-समय पर होते रहते हैं। रामायण तथा महाभारत की कथा को बौद्ध करण किया गया है। राम और धर्म-राज युधिष्ठिर को बोधिसत्व के रूप में वर्णित किया जाता है। रामायण पर दो नाटक प्राप्त होते हैं और महाभारत की कथा के आधार पर चार। कुछ चीन-देशीय कथाओं के आधार पर भी 'प्यापुङ्' प्राप्त होते हैं। जैसे 'चाउ-आल्वङ्' 'निञ्चियुन' इस नाटक की कथा लिफु' देश की है। किन्तु सम्पूर्ण कथा बौद्ध पद्धति की है।

खामति नाटककार प्रयोक्ता होता है, अभिनय, नृत्य, वाद्य आदि का जानकार होता है। स्वयं अपने नाटकों को प्रस्तुत करता है। 'प्यापुङ्' नृत्य में पदाचालन से भी अंगभगिमा का अधिक ख्याल रखा जाता है। चाउ-आल्वङ् का नृत्य अधिक

गंभीर होता है। उसके चलने और हाथ हिलाने की भी विशेषता है। इस प्रकार के शिल्पी नाटककार में चाउ होएन खामहो का नाम उल्लेखनीय है।

प्रायः, प्यापुङों की भाषा पद्यमय होती है। अभिनेता सुर से गाकर दर्शक तथा स्रोता का मन मोह लेता है। अभिनेता अपने वक्तव्य को मुखाग्र करता है। ये मुखाग्र किए गए वचन अभिनय करने वाले के जीवन भर उपयोग में आते हैं। वह अकेलापन महसूस करने पर उन्हीं याद किए हुए वक्तव्यों को गाकर आनन्द अनुभव करता है। प्राचीन काल के यात्रा नाटक की भांति 'प्यापुङ्' भी खुले मैदान में अभिनीत होते हैं। रंगमण्डप के मध्य में एक रंगभूमि बनाते हैं, जिसके चारों ओर वृत्ताकार होकर दर्शकगण बैठते हैं।

चौखाम की जन-नाट्यमण्डली ने दर्शकों के मनोरंजन के लिए नाट्याभिनय के समय बीच-बीच में नृत्य प्रस्तुत करने की व्यवस्था की। कुछ नृत्यों के नाम एवं परिचय निम्न प्रकार हैं।

का पाई-फ्रा (बुद्ध वन्दना नृत्य)

इस नृत्य में अपने हाथ एवं पैरों के अभिनय से भगवान बुद्ध की वन्दना की जाती है। इसमें बुद्ध के सिर से उत्पन्न रश्मियों का भाव व्यक्त किया जाता है। धूप-दीप से पूजा कर निर्वाण की कामना की जाती है।

का साङ्आल्वङ् (बोधि कुमार नृत्य)

इस नृत्य में बोधिकुमार यानी प्रव्रज्या-प्रार्थी को स्वागत करने के लिए देव-अप्स-राएं स्वर्ग से आकर नृत्य करती हैं। ये अप्सराएं बोधिकुमार को देखकर आनन्द से नृत्य करती हैं। अप्सराएं कामना करती हैं कि बोधिकुमार अपने प्रव्रजित जीवन को सफल बनाएं।

का नाङ्फि (देव-अप्सरा नृत्य)

इस नृत्य में देव-अप्सराएं 'साङ्आल्वङ्' से कामना करती हैं कि ये भी भगवान बुद्ध जैसे लोकगुरु बनें। बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय के लिए मंगल कार्य करें।

का क्वङ्तो काई (ढोल बजाते हुए मुर्गा नृत्य)

इस नृत्य में दो-चार मुर्गे एक स्थान में मिलते हैं। ये सभी झुण्ड के मालिक होना चाहते हैं, परन्तु इनके बीच लड़ाई होने लगती है। उसी के आधार पर यह नृत्य खामति समाज में प्रचलित हुआ है।

का आप् नाम (स्नान नृत्य)

इस नृत्य में देव-अप्सराएं सरोवर में स्नान करती हुई, हाथ के अभिनय से स्नान

करने के भाव को व्यक्त करती हुंई आनन्द मनाती हैं।

का ले-मान (गांव दर्शन नृत्य)

इस नृत्य में देव-अप्सराएं पृथ्वी के गांवों में भ्रमण करने आती हैं। वे नृत्य करती हुई गांवों की स्थिति का अवलोकन करती हैं। वे समाज के लिए मंगल कामना करती हुई चली जाती हैं।

का फि-फाई (राक्षस नृत्य)

इस नृत्य में दो राक्षस आपस में लड़ते-झगड़ते हुए का दृश्य दर्शाया जाता है। लड़ते हुए दोनों राक्षस क्लान्त होकर गिर जाते हैं। फिर होश में आने पर वे अपने अपने स्थान को चले जाते हैं।

का मेइन (उड़ने का नृत्य)

इस नृत्य में देव-अप्सराएं नाचती-झूमती, उड़ती हुई, पृथ्वी में आती हैं। फिर वे सभी अप्सराएं अपने स्थान को चली जाती हैं।

ग्रामीण जनता में 'प्यापुङों' की जो परम्परा अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है, वह उल्लेखनीय है। 'प्यापुङों' में अंक आदि की व्यवस्था नहीं होती है, 'प्यापुङों' के कथोपकथन को यथासंभव यथार्थ और जनसाधारण का वार्तालाप बनाने की चेष्टा करते हैं। इन 'प्यापुङों' के कथोपकथन न पाण्डित्यपूर्ण हैं, न ही अलंकारों के बोझ से उनको भारी किया जाता है। 'प्यापुङ' के प्रायः पात्र सरल तथा स्पष्ट पद्यमय भाषा में बातचीत करते हैं और उनके संभाषण सजीव, सशक्त और गतिशील होते हैं, शिथिल अथवा भारी नहीं हैं। 'प्यापुङों' में प्रायः अधर्म पर धर्म की विजय दिखलाई जाती है।

हमारी देशी भाषाओं में साहित्यिक नाटक के पूर्व जननाटक शताब्दियों से अभिनीत होते आ रहे हैं। असम में 'अंकीया-भाओना'; बंगाल में 'यात्रा' एवं 'कीर्तनियां-नाटक'; बिहार में 'विदेशिया'; अवधीज, पूर्वी हिन्दी, ब्रज तथा खड़ी बोली में 'रास', 'नौटंकी', 'स्वांग', 'भाड़'; राजस्थानी में 'रास', 'झूमर', 'ढोला-मारू'। गुजराती में 'भवाई'। महाराष्ट्री में 'लड़िते' और 'तमाशा'। दक्षिण में 'भगवतमेल'। मणिपुर में कृष्णकथा के आधार पर 'जोगोई-रास' का अभिनय होता है और खामतियों में 'प्यापुङ' अथवा 'प्याचात' अति लोकप्रिय है। थाईलैण्ड में भी इस प्रकार के धार्मिक नाटक प्रदर्शित करते हैं, उसे 'लिके' कहा जाता है। यहां कुछ लोकप्रिय खामति 'प्यापुङों' की कथावस्तु प्रस्तुत की जा रही है।

चाउ-आलवङ् निव्चियुन :

'मिङ्खे' (चीन देश) का पड़ोसी तुङ्क्येन साम्राज्य और इसी के अन्तर्गत था। 'लिफ़ि' देश। 'लिफ़ु' देश के लोग सम्पन्न थे। वहां एक योजन लम्बा सरोवर था। सरोवर के चारों ओर लोगों की सघन बस्ती थी। एक साल ज्येष्ठ महीने में अतिवृष्टि होने से सारी फसल नष्ट हुई। बाढ़ से गांव डूबने लगे। लोग आश्रयहीन हुए। लिफ़ि देश के सरोवर में नागराजा रहता था, वह सारे लिफ़ि राज्य को सरोवर में समेट लेना चाहता था।

लिफ़ि देश के राजा ने नागराजा से रक्षा पाने हेतु इन्द्र से प्रार्थना की देवलोक में सभा बैठी और लिफ़ि देश की रक्षा के लिए एक धर्म-स्तूप निर्माण का निर्णय लिया और इस कार्य के लिए ऋषि कानयेन को भेजा गया। देवताओं सहित सभी लोगों ने मिलकर स्तूप निर्माण किया। स्तूप के निम्न भाग में नरक एवं अपाय सम्बन्धी चित्र, मध्यभाग में चन्द्र-सूर्य, तारे, नक्षत्र आदि के चित्र और ऊपरी भाग में देवपुरी, तथागत, भिक्षु-संघ के चित्रों से.स्तूप को सजाया गया। लिफ़ि देश के सरोवर तट पर गगनचुम्बी धर्मस्तूप बनकर तैयार हुआ। अब केवल 'थि' (गुंबद) निर्माण का कार्य बाकी था। 'थि' निर्माण की योजना स्वर्ण की थी। लिफ़ि राज्य में इतना स्वर्ण दान करने वाला कोई नहीं था।

ऋषि कानयेन स्वर्ण याचना के लिए चीन देश के पास के एक धार्मिक सौदागर चाउ निव्चियुन के घर पहुंचे। निव्चियुन की पत्नी नाङ्थेउलेन अति सुन्दर एवं गुणवती थी। उसे अभी कोई सन्तान नहीं हुई थी, किन्तु देवलोक से दो देवता उसके गर्भ में पटिसन्धि ग्रहण कर चुके थे। निव्चियुन ने ऋषि कानयेन को स्वर्ण दान देने का वचन दिया, किन्तु निव्चियुन की मां बहुत कंजूस थी। ऋषि कानयेन ने परिस्थिति को समझ गए और फाटक पर—त्रिचीवर, पिण्डपात्र, त्वङ्मोई (लाठी) के साथ एक पत्र लिखकर छोड़ा।

निव्चियुन की मां याथाईथाई ने स्वर्ण देने से इनकार किया, तो वह निकल आया। कानयेन वहां नहीं थे। पत्र के साथ भिक्षु के पच्चय मौजूद थे। निव्चियुन पत्नी एवं मां से विदा लेकर भिक्षु हो गए और वह नाना जगह भ्रमण कर स्वर्ण याचना करने लगे। जाते हुए भिक्षु निव्चियुन तुङ्क्येन नगर के विनवाई सेठ के यहां स्वर्ण याचना के लिए पहुंचे। विनवाई सेठ ने निव्चियुन का स्वागत, वन्दना कर आने का उद्देश्य पूछा। विनवाई ने लिफ़ि देश में धर्मस्तूप के निर्माण हेतु स्वर्ण दान दिया और अपने सेवकों से स्वर्ण को लिफ़ि देश के सरोवर तट तक पहुंचा दिया।

निव्चियुन चाङ्खाम (स्वर्णकार) के पास गया। चाङ्खाम धार्मिक था। उसने 'थि' के लिए स्वर्ण-घण्टी बनाने का भार लिया। दोनों कार्य में जुट गए।

चाङ्खाम की पत्नी सिङ्वाई को स्वर्ण देखकर लोभ हुआ, उसने पति से स्वर्ण छुपाने के लिए कहा, किन्तु वह नहीं माना। सिङ्वाई ने निव्चियुन को विष देकर मारने का निश्चय किया। उसने निव्चियुन के भोजन की थाली में विष दे दिया भोजन के लिए जब दोनों आए तो निव्चियुन के पात्र का आहार काला था, इस लिए चाङ्खाम ने ही उसे खा लिया, तो उसकी उसी क्षण मृत्यु हो गई। उसकी पत्नी सिङ्वाई ने निव्चियुन पर दोष लगाया कि 'मेरे पति को मारकर यह मुझे पत्नी बनाना चाहता है।' लोग जमा हुए, लोगों ने बिना विचारे ही निव्चियुन को मारा-पीटा। वह बेहोश हो गया। निर्णय के लिए विचार-पति 'वाउ' के पास ले गए। 'वाउ' भी सत विचार नहीं कर पा रहा था। निव्चियुन तो भिक्षु है, वह कैसे यह कार्य कर सकता है। होश में आने पर निव्चियुन से विवृति ली गई। वह संभ्रान्त (सौदागर) घराने का आदमी है।

यह खबर ऋषि कानयेन को मिली तो उसने वृद्ध-वैद्य के रूप में आकर चाङ्खाम को बचाया। चाङ्खाम ने सारी बातें बतलाईं। सिङ्वाई को उसी समय फांसी दी गई। फिर दोनों गुरु-शिष्य स्तूप के 'थि' निर्माण के कार्य में जुट गए। 3700 घटिण्यों से सुसज्जित 'थि' निर्माण का कार्य सम्पन्न हुआ। 'थि' को स्तूप में ले गए, ऊंचे स्तूप में 'थि' को चढ़ाना संभव नहीं था। रात को जब निव्चियुन और चाङ्खाम सो गए, तब देवताओं ने आकर 'थि' को स्तूप पर रखा। दोनों को इसका पता ही नहीं चला। सुबह वे 'थि' की खोज करने लगे, हवा से घण्टियों की ध्वनि स्तूप के ऊपर से सुनाई पड़ी, तो दोनों उसे देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए। देखते ही देखते चाङ्खाम तो देवलोक चला गया। वह तावतिंस देवलोक में रहने लगा। निव्चियुन को घर का बन्धन था। उसे घर छोड़े हुए बारह साल बीत चुके थे। वह स्तूप को नमस्कार कर घर की ओर चल पड़ा।

निव्चियुन के घर छोड़ने के बाद उसके परिवार में महाविपत्ति आई—निवचियुन की पत्नी नाङ्थेउलेन ने गर्भ पूर्ण होने पर दो सन्तान को जन्म दिया। पुत्र का नाम चाउकेनको और पुत्री का नाम नाङ्येनचे रखा गया। बच्चे बहुत ही सुन्दर एवं चरित्रवान थे। बच्चों को देखकर वह प्रसन्न रहती थी। एक दिन अपनी सास के कहने पर वह बाजार में गई और पति के मंगलार्थ दानशाला बनाकर धर्म करने लगी। तुङ्क्येन देश का मेउक्योको राजा ने बाजार में नाङ्थेउलेन को देखा, तो अप्सरा जैसी सुन्दर ! राजा उसे देखता ही रह गया। राजा ने नाङ्थेउलेन का बलात्कार करना चाहा, किन्तु चतुर नाङ्थेउलेन उससे छूटकर घर पहुँची। दूसरे दिन वह 'वाउ' (विचार-पति) के पास जाते समय, धूर्त राजा के आदमी उसे पकड़कर ले गए और राजमहल में रखा। फिर सास को भी पकड़कर ले गए और इसकी हत्या कर दी। अब बच्चे ही घर में रह गए थे। उन्हें भी नौकर सताने लगे। उन्हें भोजन नहीं देते थे। वे वन में जाकर फल-फूल खोजकर खाते

थे। धूर्त राजा ने सोचा, 'यदि निव्‌चियुिन के गांववासियों को जीवित रहने दिया जाये तो मेरे ऊपर कभी विपत्ति आ सकती है। अतः, उसे भी नष्ट कर दूंगा।"

उसने रात को जाकर गांव में आग लगा दी। जो समर्थ थे, वे प्राण लेकर दूर देश को चले गए। किन्तु निव्‌चियुिन के बच्चे उस समय गांव में नहीं थे। वे फल-मूल खोजने के लिए बाग में चले गए थे। गांव में आग सुलगते देखकर वे दूर चले गए। लौटते समय उस निर्दयी राजा ने उन्हें पकड़ लिया और नाङ्‌थेउलेन को प्रसन्न रखने के लिए साथ ले गया। बच्चों को पाकर वह प्रसन्न तो थी। किन्तु पतिव्रता नारी, निव्‌चियुिन की प्रतीक्षा में थी। सहायक कोई नहीं था। बच्चों को बड़े होते देखकर राजा डरने लगा। इसलिए उन्हें ले जाकर जंगल में मारना चाहा, किन्तु वे बच निकले। वे मां-बाप से बिछुड़ गए। भीख मांग कर खाते थे और एक गुफा में रहते थे।

इधर जब निव्‌चियुिन अपने गांव पहुंचा तो गांव का नामोनिशान मिट चुका था। कोई खबर नहीं मिली। वह भी परिवार की खोज में घूमते हुए, उसी गुफा में रहने लगा; जहां उसके बच्चों ने आश्रय लिया था। गुफा में वे परिचित हुए और बच्चों ने सारी बातें बतलाईं। निव्‌चियुिन बच्चों को वहीं छोड़कर तुङ् क्येन देश के राजमहल जा पहुंचा और वहां मजदूरों से मिलकर काम करने लगा। दोपहर को निव्‌चियुिन ने बीणा बजाई, गाने की ध्वनि अति मधुर थी। उसने गीत के माध्यम से अपनी जीवन गाथा सुनाई। नाङ्‌थेउलेन चतुर तो थी, वह झट समझ गई कि उसके पति आ गए हैं। नाङ्‌थेउलेन ने अपनी एक दासी को सम्पूर्ण विवरण लिखकर भेजा और धूर्त राजा मेउक्योको को दण्ड दिलाने की व्यवस्था के लिए आग्रह किया। निव्‌चियुिन 'वाउ' के पास पहुंचा। 'वाउ' वही था, जिसने चाङ्-खाम की स्त्री सिङ् वाई के विष के सम्बन्ध में विचार किया था। उसने धार्मिक निव्‌चियुिन की बातों पर बहुत ही गुरुत्व दिया, राजा मेउक्योको को बुलवाया और सप्रमाण दोषी पाकर उसे मृत्यु-दण्ड की सजा दी, 'वाउ' ने निव्‌चियुिन को उराजा के राज्य को सौंपना चाहा, किन्तु उसने लेने से इनकार कर दिया। उसने अपनी मां याथाईथाई का श्राद्ध किया और पत्नी-बच्चों को साथ लेकर लिुफ़ि देश के सरोवर तटीय स्तूप के पास चारों प्राणी पहुंचे और वहां पर्ण-कुटी बनाकर पवित्र मन से चारों रहने लगे। बच्चे एवं पत्नी ने भी विधिवत रूप से प्रव्रज्या ग्रहण की। इस धार्मिक कार्य के प्रभाव से देवराज इन्द्र का आसन गरम हुआ, उन्हें लिवा चलने के लिए विश्वकर्मा आया, उनका शरीर देखते-ही-देखते रुई जैसा हलका हो गया और चारों प्राणी अपने आप उठ गए।

फा चाम्पु माङ् क्येम

तथागत बुद्ध के समय में राजगृह से छः महीने की दूरी पर पिचानालेत नामक

राज्य में फा चाम्पु माङ्क्येम नामक राजा राज्य करता था। जम्बूद्वीप के सभी राजा इसी के अधीन थे। यह राजा हर समय घमण्ड में चूर रहता था। और उसने पड़ोसी राजाओं को अपने वश में कर लिया था। राजा के साथ तीन अमोघ अस्त्र थे : 1. चप्पल—पहनते ही उड़ सकता था, 2. धनुष—अग्नि बाण एवं सर्प बरसाने वाला था और 3. तलवार—जिस पर आक्रमण किया जाए वह विफल नहीं जाता था।

राजा चाम्पु माङ्क्येम इन तीनों अस्त्रों को अपने पास रखता था। एक बार घूमने जाते समय चाम्पु माङ्क्येम ने मगध राज बिम्बिसार (हिङ्पासाला) का आश्चर्यजनक राज्य एवं राजमहल देखा। उसने ईर्ष्या से लात मार कर राजमहल को तोड़ने की चेष्टा की किन्तु उसे स्वयं को चोट पहुंची और उसका अमोघ तलवार भी टूट गया। वह गुस्सा पीकर अपने राज्य लौट गया और नागबाण मारकर बिम्बिसार को वश में करना चाहा। नागबाण में यह शक्ति थी कि जिसको लक्ष्य कर मारा जाए, उसे ही पकड़कर नागबाण ले जा सकता था। नागबाण के शोर-गुल से भयभीत होकर राजा बिम्बिसार भगवान बुद्ध के पास रक्षा के उपाय के लिए वेणुवन विहार जाता है। वह बुद्ध से सारी बातें कहता है।

भगवान बुद्ध ने बिम्बिसार को सान्त्वना दी और अपने ऋद्धिबल से चाम्पु माङ्क्येम के अग्निबाणों को गरुड़ के द्वारा भगा दिया। नागबाण को लौटते देखकर चाम्पु माङ्क्येम और भी क्रोधित हुआ। फिर उसने सहस्र अग्निबाण शत्रु के विरुद्ध भेजा। उन्हें भी भगवान बुद्ध ने अपने ऋद्धिबल से लौटा दिया। फिर चप्पल भेजा, चप्पल भी सफल नहीं रहे।

बुद्ध ने अपनी अभिज्ञा से देखा तो यह राजा शीघ्र ही भिक्षु बनकर अर्हत हो सकता है। अभी यह घमण्ड में है। इसे इन्द्र के द्वारा ही वश में किया जा सकता है। देवराज इन्द्र को भगवान ने एक बौना आदमी बनाकर चाम्पुमाङ्क्येम राजा के यहां भेजा। देवराज इन्द्र ने जब राजा से बात कहनी चाही तो चाम्पुमाङ्क्येम इन्द्र की मजाक उड़ाता है। उसे बौना आदि कहकर डांटता फटकारता है। इन्द्र ने राजा को बाद में वश किया और राजगृह के राजा के साथ मिलने जाने के लिए विवश किया।

राजा एक सप्ताह के भीतर एक श्रामणेर के साथ राजगृह पहुंचता है। राजगृह को भी बुद्ध ने ऋद्धिबल से देवपुरी जैसे सजा कर रखा था। देवपुरी की युवतियां अप्सरा जैसी थीं। युवतियों को देखकर राजा चाम्पुमाङ्क्येम मुग्ध होता है। वह आगे पग बढ़ाना तक भूल जाता है। श्रामणेर राजा को गंवार कहते हुए आगे चलने को कहता है। पिंचानालेत से राजगृह की दूरी छह महीने की थी, किन्तु ऋद्धिबल के कारण शीघ्र ही राजगृह पहुंचते हैं। देवपुरी को देखकर राजा को अपने आप मूर्ख होने का वर्णन, व्यंग्य आदि बीच-बीच में नाटककार ने दर्शक

के मनोरंजन के लिए किया है। राजा को मूर्ख बनाने की बातों को सुनकर दर्शक बिना हंसे नहीं रह सकते हैं।

बुद्ध ने चाम्पुमाङ्क्येम राजा को वश में कर, उसके घमण्ड को दूर करने के लिए उसके साथ महाराज के रूप में वार्तालाप करते हैं। बुद्ध की बातों से प्रभावित होकर—स्वर्ग, नरक, पाप-पुण्य आदि विषयों की जानकारी चाहता है। बुद्ध ने उसे पृथ्वी खोलकर नरकलोक दिखला दिया और उसे देखने पर राजा के माँ-बाप को नरकगामी देखा और वह बहुत ही दुःखित हुआ। फिर राजा स्वर्ग सम्बन्धी बातें जानना चाहता है। बुद्ध ने उसे फिर स्वर्गलोक का भी दर्शन कराया, तो स्वर्ग को देखकर वह उसे पाने की इच्छा करता है। भगवान बुद्ध के कहने पर वह राजा बुद्ध से उपसम्पदा की याचना करता है। बाद में अभ्यास एवं प्रयत्न से वह शील, समाधि तथा प्रज्ञा में प्रतिष्ठित होकर अर्हत होता है। अपने किए हुए घमंड पर पछताता है। भगवान उसे उपदेश देते हैं। भगवान की आज्ञा पाकर भिक्षु (चाम्पु-माङ् क्येम) अपने परिवार के लोगों से मिलता है। अन्त में वह भिक्षु थाईदेश एवं चीन के बीच के किसी विहार में रहने लगता है। वहीं उसकी मृत्यु होती है। ग्रन्थ में ऐसा भी वर्णन है कि उस भिक्षु की मृत्यु के समय भगवान स्वयं वहां पहुंचे थे। तभी से खामति (ताई) लोग बौद्ध मतावलम्बी हैं। चाम्पुमाङ्क्येम को भिक्षु होने पर बाद में लोग बहुत आदर करने लगे थे। जैसे अंगुलिमाला को करते थे। कहा जाता है कि भगवान बुद्ध के ज्ञान प्राप्त करने के दस साल बाद यह घटना घटी थी।

इस नाटक की कथावस्तु पहले से ही खामति में मौजूद है। इस पर एक प्राचीन हस्तलिखित पोथी भी है। इसी कहानी के आधार पर चाउ-होएन खामहो ने नाटक का रूप दिया है। यह नाटक कई बार जन समाज के बीच प्रदर्शित किया गया है। वर्तमान में इसकी कथा अति लोकप्रिय है। नाटककार द्वारा रचित, गीत समय-समय पर आकाशवाणी तेजु से प्रसारित किये जाते हैं।

चाउ आल्वङ् नालाचेता

अति प्राचीन काल में मिथिला के विरोका राजा की रानी फिरिकावुन्ना के गर्भ से बोधिसत्व नालाचेता (नरश्रेष्ठ) राजकुमार का जन्म हुआ। वह कुमार बहुत ही सुन्दर था। एक दिन नालाचेता को किसी सुन्दर कुमारी का चित्र किसी ने उसे भेंट किया। उस चित्र में नाम लिखा हुआ था—'किमिचान्ता' जो देवराज इन्द्र की कन्या थी।

किमिचान्ता का नाम पढ़ते ही राजकुमार नालाचेता पागल जैसा हुआ और वह उसकी खोज में निकला। खोज में समुद्र यात्रा करते हुए जहाज डूब गया। जान-माल की बड़ी क्षति हुई, किन्तु नालाचेता किसी प्रकार बाल-बाल बच गया।

वह तैरते हुए एक राक्षस के राज्य में जा पहुंचा।

उस राक्षस राज्य के दैत्य राजा को रात में स्वप्न दिखाई दिया कि—"उसके, हाथ में एक तारा गिर पड़ा, वह तारा पहले तो ठंडा था, किन्तु बाद में गरम हुआ।" सुबह राक्षस राजा ने अपनी सेनाओं को इसकी कथा सुनाई और निर्णय कर खोजने के लिए दैत्यों को भेज दिया। राक्षस सेनाओं ने नालाचेता राजकुमार को समुद्र तट पर बेहोश पड़ा पाया और उसे उठा लाए। जब कुमार होश में आया, तब राक्षस राजा की राजकुमारी उसके रूप-लावण्य पर मुग्ध हुई और उसे पति वरण करना चाहा। कुमार ने अपनी सारी कहानी सुनाई और कहा—"मैं छह महीने बाद ही तुमसे शादी कर सकता हूं, अन्यथा नहीं।" राक्षस राजकुमारी को यह रिश्ता मंजूर था। इस प्रकार रहते हुए बहुत दिन बीत गए। वह तो था किमिचान्ता की खोज में।

वह खोजते हुए, एक पहाड़ी गुफा के पास जा पहुंचा। गुफा का द्वार बन्द था। विचित्रता यह थी कि—"द्वार के एक तरफ सिंह और दूसरी तरफ बकरा बांधा हुआ था। सिंह को खाने के लिए घास दिया हुआ था और बकरे को मांस।" नालाचेता ने किसी मूर्ख का काम है, सोचकर बकरे को घास दे दिया और सिंह को मांस। इतने में उस चट्टान गुफा के दरवाजे अपने आप खुल गए। कुमार ने देखा कि भीतर एक सुन्दर युवती पलंग पर सोई हुई है। वह उसी ओर बढ़ा और युवती को जगाया, किन्तु वह न जागी। पलंग के नीचे एक छड़ी पायी, तो कुमार ने उसे उठाकर बटन दबाया—इतने में वह युवती जाग गई और कुमार को राक्षस समझने लगी। बाद में युवती ने अपना परिचय दिया।

"वह भी तावलवती देश के किङ् त्रासेठा राजा की पुत्री है। उसकी मां का नाम फानत्रातेवी है और उसका नाम सिलिका है। राजकुमारी सिलिका को राक्षस पकड़ लाया है, वह उससे विवाह करना चाहता है, किन्तु राजकुमारी नहीं मानती है। सिलिका ने सारी बातें बतलाईं और राक्षस से मुक्ति दिलाने की प्रार्थना, राजकुमार नालाचेता से की। नालाचेता ने राक्षस की गुफा में घुसते ही हत्या कर दी और वह राजकुमारी सिलिका को लेकर तावलवती नगर पहुंचा। नालाचेता ने किमिचान्ता के सम्बन्ध में सारी जानकारी राजकुमारी सिलिका से प्राप्त की।

बाद में जब पता चला, तब राक्षसों की सेना के सिपाही छल से नालाचेता को पकड़कर ले गए और उसे एक गहरे गड्ढे में डालकर रख दिया। राजकुमारी सिलिका के अनुरोध पर देवराज इन्द्र ने उस राक्षस को वश में कर नालाचेता के प्राण बचाए और अपनी कन्या किमिचान्ता की शादी उससे करवा दी। राजकुमार नालाचेता को अवतारी पुरुष माना जाता है, उसने बहुतों का हित किया था। जिसके कारण वह भी किमिचान्ता की खोज में सफल रहा।

इस नाटक का नाटककार श्री चाउ होएन खामहो, चौखाम निवासी है। उक्त

नाटक का प्रदर्शन अक्तूबर, 1974 में चौखाम में हुआ था। कहा जाता है कि नाटक देखकर दर्शकों ने आंसू बहाए थे। करुण कहानी और गीतों के वर्णन में अति माधुर्य है। यह नाटक सात घंटे तक प्रदर्शित किया गया।

चाउ आल्वङ् चानाखात

एक निर्धन परिवार में बोधिसत्व 'चाउ आल्वङ् चानाखात' का जन्म हुआ। ये दो भाई थे। गांव के लोग एक दिन मछली पकड़ने गए थे, बोधिसत्व दोनों भाई भी साथ गए। इन्हें मछली नहीं मिली। केवल केंकड़े मिले। उसे ही घर में लाकर भूनकर खा गए। मां-बाप को बिना दिए खाने से बच्चों के प्रति वे क्रोधित हुए और दोनों को घर से निकाल दिया। ये निराश्रय होकर भटकने लगे। बोधिसत्व को भटकते देखकर देवराज इन्द्र ने मृत-संजीवनी की औषध को पहचनवा दिया, उस मृत-संजीवनी को बोधिसत्व ने पहले एक मृत कौवे पर प्रयोग किया। कौवा जीवित हुआ। कौवा बहुत ही कृतज्ञ मानता रहा, किन्तु कुछ दिन के बाद कौवा बोधिसत्व भाइयों को कष्ट देने के बारे में सोचने लगा।

उसी अरण्य में एक दैत्य की स्त्री की मृत्यु हुई थी। स्त्री के श्राद्ध के लिए वह आहार ढूंढता हुआ निकला। कौवे ने उन्हीं बोधिसत्व भाइयों की सूचना दैत्य को दी। दैत्य ने उन्हें मारकर भोज में खाना चाहा, किन्तु बोधिसत्व ने मृत-संजीवनी का प्रयोग कर दैत्य की स्त्री को जीवित कर दिया तो दैत्य और उसकी स्त्री बहुत ही खुश हुए। दैत्य बोधिसत्व भाइयों को काशी राज्य में छोड़ आया। उस समय काशी राजा की राजकुमारी की मृत्यु हुई थी। उसे बोधिसत्व ने जीवित कर दिया। बड़े भाई की शादी उसी राजकुमारी से हुई।

इससे बोधिसत्व की प्रसिद्धि बहुत दूर देशों में फैल गई थी। किसी समुद्र पार के एक देश के राजकुमार की मृत्यु हुई थी। उसे जीवित करने के लिए छोटा भाई चानाखात (बोधिसत्व) चला गया। जीवित करने के बाद उस देश के राजा ने उसकी शादी राजकुमारी से करवा दी। उस नव-दम्पति के सागर पार करते समय बीच समुद्र में तूफान आने से उसकी नौका डूब गई। दोनों एक दूसरे से बिछुड़ गए। तैरते हुए वे विभिन्न देशों में जा पहुंचे।

जिस देश में चानाखात की स्त्री शरणापन्न हुई, उस देश के राजा ने उसके रूप-लावण्य पर मुग्ध होकर उससे विवाह करना चाहा, किन्तु वह पतिव्रता थी। उसे पाने के लिए राजा ने अपनी स्त्री को बेड़े में बांधकर नदी में बहा दिया। वह रानी रोती पछताती हुई बेड़े में जा रही थी। इधर चानाखात को एक योगी से एक दूरबिन और एक जोड़ी चप्पल मिले थे। इस चप्पल की विशेषता यह थी कि—"इसे पहनकर पानी में चल सकता था, और पक्षी की भांति उड़ भी सकता था।" उस रानी की आवाज सुनकर बोधिसत्व उस स्त्री के पास, नदी बीच के बेड़े

में जा पहुंचा। स्त्री (रानी) ने अपना वृत्तान्त सुनाया। वे दोनों पुनः उसी राज्य में आए। उस स्त्री ने बोधिसत्व से विवाह कर लिया। फिर उसे अपनी स्त्री भी मिली। एक दूसरे राजा ने कृतज्ञता स्वरूप अपनी कन्या चानाखात को दी। इस प्रकार चानाखात चार स्त्रियों का पति बना। उसे एक राज्य भी प्राप्त हुआ। खामति गांवों में समय-समय पर अपार जन-समूह के बीच इस नाटक का प्रदर्शन होता रहता है।

चाउ आल्वङ् हयखाउ

प्राचीन काल में बोधिसत्व 'चाउ आल्वङ् हयखाउ' ने वाराणसी के राजा की पटरानी के गर्भ में सफेद-घोंघे का अवतार लेकर जन्म ग्रहण किया। घोंघे को जन्म देने के अपराध में राजा ने रानी को देश निकाले का दण्ड दिया। रानी अपने घोंघे रूपी पुत्र को लेकर एक गांव में, बुढ़िया के घर आश्रय लेकर रहने लगी। घोंघा दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ने लगा। जब बोधिसत्व की मां आहार खोजने के लिए चली जाती थी, तब घोंघे के भीतर से बोधिसत्व निकलकर घर का सारा काम पूरा कर, आवश्यक वस्तु मां के लिए छोड़कर पुनः घोंघे के भीतर प्रवेश कर जाता था। इस प्रकार का कार्य देखकर रानी को आश्चर्य होता था। वह एक दिन बाहर जाने का बहाना कर घर के कोने में छुपकर देखने लगी। कुछ देर बाद बोधिसत्व घोंघे से निकलकर अपना कार्य करने लगा। इतने में रानी ने उस घोंघे के खोल को एक डंडे से मारकर तोड़ दिया। बोधिसत्व पुनः खोल में प्रवेश न कर सका। बोधिसत्व ने अपनी मां से कहा—"माँ, यह बड़ा अनर्थ हुआ! यह घोंघे का खोल हमारा बहुत सहायक होता। इसके भीतर सारी धरती समा सकती है। यदि किसी प्रकार की विपत्ति हो तो इसके सहारे हम रक्षा पा सकते थे!" बोधिसत्व की मां ने अज्ञानता पर दुःख प्रकट किया।

उस प्रभावशाली बोधिसत्व का पता, उस देश के राजा को चला तो उसे नाव पर चढ़ाकर किसी दैत्य के राज्य में भेज दिया। बोधिसत्व राक्षस के चंगुल में फंसता है, किन्तु एक वृद्ध राक्षसी बोधिसत्व की रक्षा करती है और राक्षस सम्बन्धी सारा रहस्यमय भेद खोल देती है। बोधिसत्व एक दिन अवसर पाकर भाग निकलने में सफल होता है। लौटकर वह पुनः अपने राज्य का राजा होता है।

इस नाटक के नाटककार श्री जयन्ता लुथाक हैं। इसका प्रदर्शन कई बार हुआ है। इस कथा से सम्बन्धित पोथियां भी विहारों में प्राप्त होती हैं। खामति समाज में यह कथा अति लोकप्रिय है।
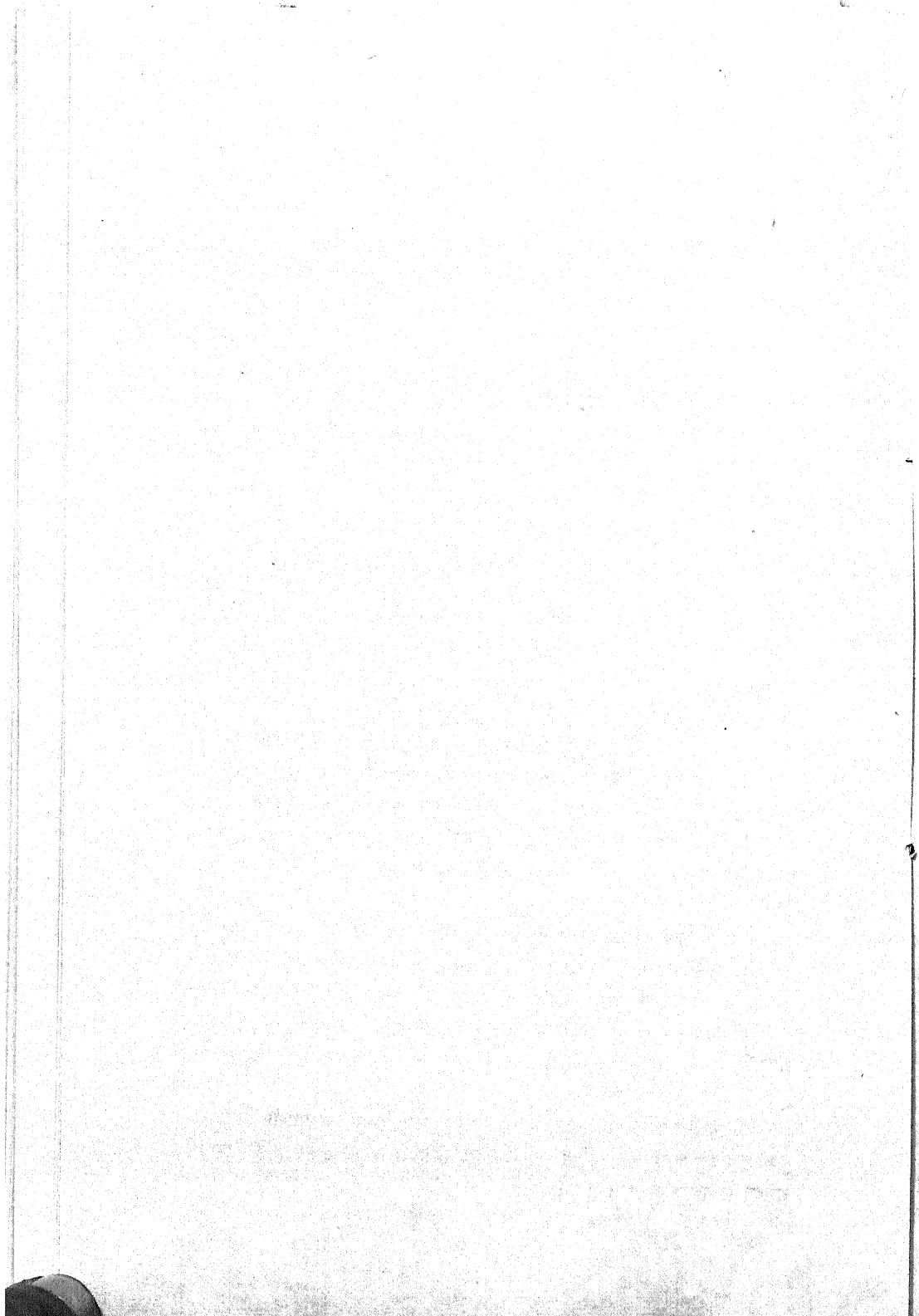
उपसंहार

प्रस्तुत ग्रन्थ के गत पृष्ठों में जिस समाज एवं साहित्य का पर्यालोचन किया गया है, वह भारतीय साहित्य का अभी तक एक उपेक्षित अंग ही रहा है। जिस बौद्ध संस्कृति के प्रभाव—चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया, साईबेरिया (रूस), मध्य-एशिया और अफगानिस्तान की भूमियां अभी नहीं भूली हैं; जिसकी स्मृतियां अभी तक श्रीलंका, बर्मा, थाईलैण्ड, लाओस, कम्बोडिया और वियतनाम के निवासियों के हृदयों में—उनके सारे सामाजिक संस्थान और राजनैतिक विधान में, गुंथी हुई पड़ी हैं, उसे हम भारतवासी, जो उसके वास्तविक प्रतिनिधि हैं, भूल चुके हैं, किन्तु सीमान्त प्रदेश अरुणाचल के खामतियों ने इसे अक्षुण्ण रखा है। भगवान बुद्ध के जिस शासन के माध्यम से हम संसार के सम्पर्क में आए थे; उस परम्परा को खामतियों ने भारतवर्ष के सुदूर पूर्व कोने में जीवित रखा है। खामति लोग भारतीय बौद्ध निधियों के महान संरक्षक हैं। हमारे अधिकारी विद्वानों को उनको देखने का बहुत ही कम अवसर मिला है और लेखन तथा कथन के रूप में वह उनके सामने नहीं ही आया है। उनके बीच की निधियों को किसी ने भी गहराई से अध्ययन करने की चेष्टा नहीं की है। प्राचीन भारतीय साहित्य का अतुलनीय भण्डार अरुणाचल प्रदेश के बौद्ध समाज के खामति गांवों के विहारों में उपेक्षित पड़ा है। इनके प्रकाशन या संग्रह की बात तो दूर रही, उसकी एक साधारण ग्रन्थ-सूची भी प्रस्तुत नहीं की गई है। उस अपार साहित्य-निधि के सम्बन्ध में गत पृष्ठों में कुछ उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के षष्टम् अध्याय में सम्पूर्ण खामति गांवों के विहारों का सर्वेक्षण कर—चौखाम और ममोङ् गांव के विहारों की हस्तलिखित ग्रन्थों की विवरणात्मक सूची दी गई है। ऐसे तो मैंने नौ विहारों के ग्रन्थों की विवरणात्मक ग्रन्थ सूची प्रस्तुत की है। परन्तु विस्तार भय के कारण उस सामग्री को इस ग्रन्थ में नहीं रखा गया है। इस प्रकार के दर्जनों ग्रन्थों की सामग्री पूर्वांचल के बौद्ध गांवों के विहारों में पड़ी हुई हैं। यह अपार साहित्य भण्डार विद्वानों तथा जिज्ञासुओं की प्रतीक्षा में है।

'पिताकात् सुङ्ङ पुङ्' (तिपिटक) साहित्य के अलावा पालि अनुपिटक साहित्य

की प्रमुख-प्रमुख पोथियां भी खामति (ताई) भाषा में अनूदित मिलती हैं। जैसे, 'लिक् चाउफा मेलिङ्' (मिलिन्द पञ्हो पोथी), 'लिक् विसुक्थिमाक्' (विसुद्धि मग्गो-पोथी) आदि। प्राचीन भारतीय साहित्य के प्रमुखतम दो महाकाव्य--'लिक चाउ लामाङ्' (श्री रामायण पोथी) और 'लिक चाउ थाम्मापुक्त्राम्' (श्री महाभारत पोथी) की भी रचना खामति भाषा में हुई। इसी से हम अनुमान लगा सकते हैं कि खामति भाषा साहित्य कितना समृद्ध है। इन महाकाव्यों की विषय-वस्तु सहित मैंने अपने दिल्ली विश्वविद्यालय में पी-एच० डी० के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में परिचय दिया है। यह साहित्य विद्वत् जगत् के सामने नहीं ही आया है।

'थाम्मासात्' (पा० धम्मसत्थ; सं० धर्मशास्त्र) या विधिशास्त्र की तीन प्रमुख-प्रमुख पोथियां खामति भाषा में मिलती हैं—'लिक् माहाब्रह्मा थाम्मासात्', 'लिक् चाउमानुक्मानो-थाम्मासात्' और 'लिक माहासामान्ता थाम्मासात्' उक्त ग्रन्थों की विषयवस्तु का विवरण प्रस्तुत ग्रन्थ में किया जा चुका है। यह अपने आप में बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है। इनके अलावा 'लिक काम्फाचाता' (कल्प का इतिहास पोथी), 'प्यापुङ्/प्याचात्' (नाटक); नीति मूलक कथा साहित्य, 'मान्-तान्' (मन्त्र-तन्त्र); 'ने-या' (औषधि निदान); 'फुन्फे' (पंचांग) आदि विषयों का अपार साहित्य खामति भाषा में उपलब्ध होता है। खामति भाषा में लिखित इतिहास ग्रन्थ भी मिलते हैं, जिसे 'चाते' कहा जाता है। 'चाते' शब्द 'जातक' का अपभ्रंश है। संरक्षण की समुचित व्यवस्था न होने से बहुत-सी ऐतिहासिक पोथियां आज नष्ट हो गई हैं।

ब्रिटिश सरकार के साथ युद्ध में जब खामति लोग परास्त हुए, तब भी बहुत सारी पोथियां नष्ट हो गई थीं, ये लोग लड़ाई में परास्त होते थे, तब इतिहास ग्रंथ, थाम्मासात (धम्मसत्थ) की पोथियां अवश्य ही साथ ले चलते थे। अष्टांगशील-धारी वयोवृद्ध तथा भिक्षु/श्रामणेर धर्म पोथी 'पिताकात् सुङ् पुङ्' (तिपिटक), बुद्ध मूर्तियां आदि साथ लेकर चलते थे। जहां ये लोग गांव बसाते थे, वहां लकड़ी की बल्लियों पर मचान बांधकर विहार बनाते थे। और धर्म पोथी तथा बुद्ध मूर्तियां विहार में रखकर वन्दना/पूजा करने की परम्परा चलती आ रही है। खामतियों में समसामायिक एवं राजनैतिक विवरण लिखने की प्रथा भी रही है। आज भी श्राद्ध के समय मृतक का 'लाङ् निन्' (वृत्तान्त) लिखकर शोक सभा में पाठ कर सुनाया जाता है। इस प्रकार की टिप्पणियां आज भी कहीं-कहीं मिलती हैं। किन्तु इनके बीच आपसी फूट एवं वैरभाव होने से ऐतिहासिक विवरण नष्ट हो जाती हैं।

इधर, सभी ओर के खामति लोहित अंचल की उपजाऊ भूमि में गांव बसाकर निवास करने लगे हैं। इन लोगों में एकता और अखण्डता की भावना बौद्ध धर्म के

कारण हुई है। जहां भी ये लोग गांव बसाते हैं, वहां बौद्ध विहार एवं भिक्षु का होना आवश्यक है। गांव के बच्चे विहार में धर्म शिक्षा के साथ-साथ स्कूल की शिक्षा भी पाते हैं। बौद्ध भिक्षु इनके समाज के मार्गदर्शक होते हैं। किन्तु यह परम्परा भी दिन-ब-दिन क्षीण होती जा रही है। क्रम-बद्ध शिक्षा की व्यवस्था न होने के कारण शिष्यों की संख्या घटती जा रही है। भारतीय आदिम जातियों में खामति लोग बहुत ही उन्नत माने जा सकते हैं; किन्तु इनके बीच अफ़ीम जैसी भयानक मादक-द्रव्य के सेवन की प्रथा ने स्थान बना लिया है, यही इनकी उन्नति में बाधा डालती है।

अरुणाचल प्रदेश में बौद्ध मतावलम्बी लोग दो शाखाओं में विभक्त हैं—1. थेरवाद और 2. महायान, खामति, फाके, आईतन, खामयाङ्, सिङ्फो, दुवनीया, तुरुङ्, लाङ्सा नागा (तिखाक, रन्द्राङ्, तलुम, मसाङ्,लुङ्री आदि) ; चाक्मा, जन-जाति के लोग बर्मी थेरवाद परम्परा को मानते हैं। सभी लोगों की धार्मिक परं-पराएं एक जैसी हैं। किन्तु सभी में कुछ जातीय परम्परागत प्रथाएं, रहन-सहन, खान-पान, पोशाक-परिधान में कुछ भिन्नता है। महायान शाखा के लोग तिब्बती, लामा धर्म परम्परा को मानते हैं। मुख्य रूप से ये लोग अरुणाचल प्रदेश के कामेङ् अंचल में निवास करते हैं। इन्हें मन्पा, दुक्पा, (स्वेरदुक्पेन्), मेम्बा, खाम्बा आदि नाम से जाना जाता है। इन लोगों का प्रमुख केन्द्र तावाङ् है। इन लोगों ने 12वीं शती में बौद्धधर्म स्वीकार किया था और 17वीं शती में भोटिया 'मेरालामा' के प्रभाव से समग्र मन्पा लोगों का क्षेत्र सम्पूर्ण रूप से बौद्ध धर्मावलम्बी हो गया है। इसी समय तावाङ् में प्रसिद्ध बौद्ध विहार (गुम्बा) का निर्माण हुआ। 300 साल पुराना यह विहार इस अंचलीय बौद्ध समाज का स्नायु-केन्द्र है। इस विहार में बहुत सी बौद्ध साहित्य की प्राचीन पाण्डुलिपियां हैं। यह साहित्य तिब्बती परम्परा का है। इन महायान बौद्ध जनजातियों पर शोध कार्य होने पर बहुत सी नई बातों की जानकारी मिल सकती है।

उल्लिखित अल्पसंख्यक थेरवादी लोग मुख्य रूप से अरुणाचल प्रदेश के लोहित और तिराप जिलों में निवास करते हैं। इसके अलावा असम के शिवसागर, जोरहाट, गोलाघाट, लखीमपुर, डिब्रूगढ़ (मारघेरीटा, लेडु, नाहरकटिया) क्षेत्रों के गांवों में निवास करते हैं। सभी थेरवादियों की धार्मिक परम्पराएं एक ही जैसी हैं। खामति, फाके और आईतन लोग तो एक ही परिवार की भाषा (ताईक-श्याम) बोलते हैं। आईतन लोग शिवसागर के गोलाघाट एवं मिकिर पहाड़ क्षेत्र में निवास करते हैं। इनके बरपथार, आहोमनी, दुबरनी आदि नौ गांव हैं। ये लोग बहुत ही पिछड़े हुए हैं। फाके लोग डिब्रूगढ़ जिले के नाहरकटिया और मारघेरीटा में निवास करते हैं। इन लोगों का रहन-सहन, खान-पान, आचार-व्यवहार खामतियों से मिलते-जुलते हैं।●●
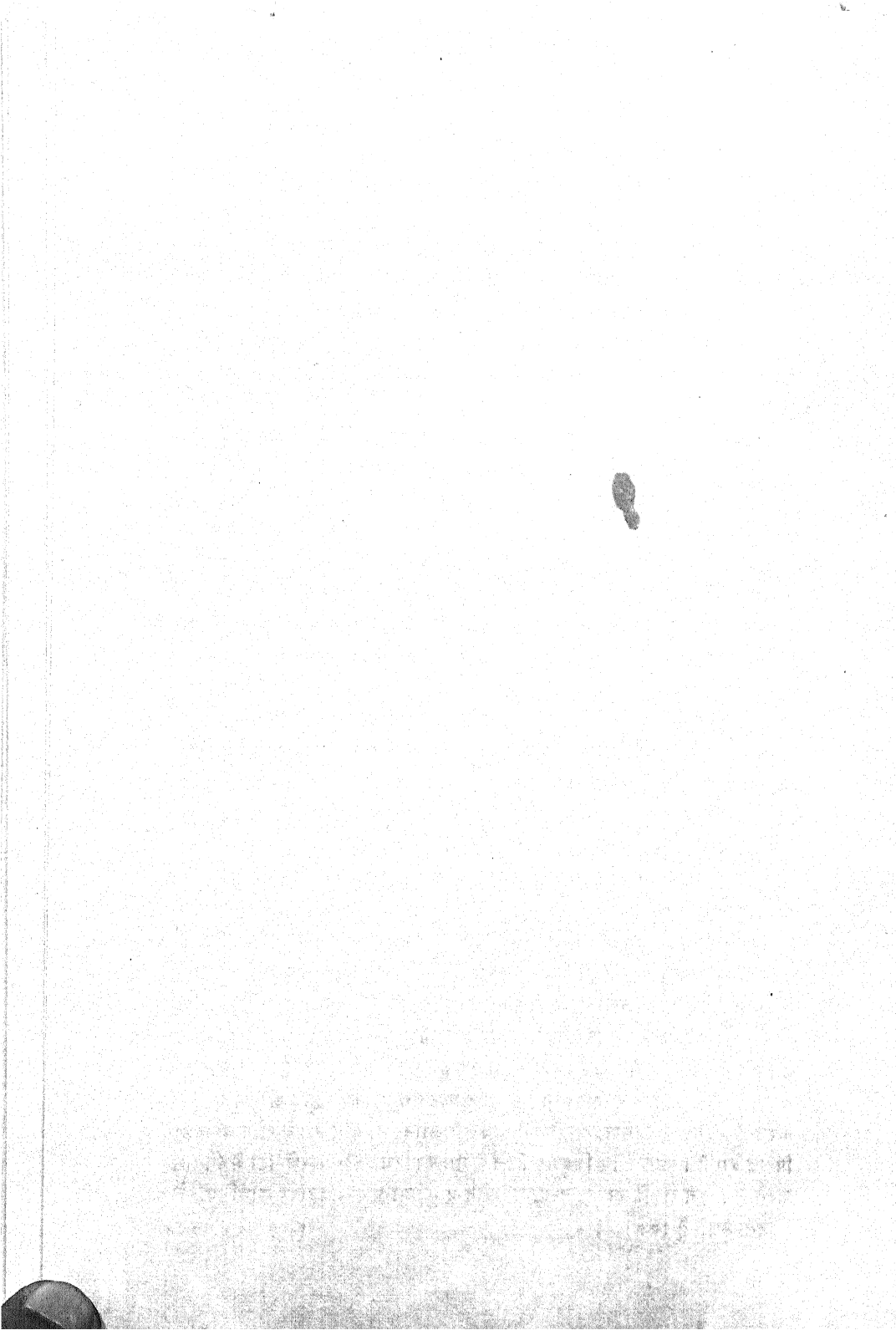
खामति समाज में हिंदी शब्दावली

अ

अक्—उदय
अक्एक्—दिमाग
अक्नाङ्—चेचक
अक्साउ—लड़की का प्रथम बार ऋतुमती होना
अस्—छोटा
अय्—ईख

आ

आई—खांसी
आईखाङ्—गिरगिट
आईनाम्—भाप
आउ—ग्रहण करना
आउचाउ—चाचा, सौतेला बाप
आउमान्—द्वारा
आउमा—लाना
आखिङ्—समय
आङ्—हाथ धोने का पात्र
आङ्का—मंगलवार
आचे—फूफी
आनाईखाउ—ये
आन्काउ—पुराना
आन्काङ्—चौड़ाई
आन्किम्—मजबूत
आन्कित्—बासी
आन्नाई—यह
आनानाङ्—चर्मरोग
आन्लिङ्—पीला
आन्मौं—नया
आन्मान्—असली
आनाह्राउलुङ्—कुष्ठ
आन्सुङ्—ऊंचाई
आन्हेत्—तैयार करना
आमात्—मन्त्री
आमु—पेशा
आमौं—वह
आलौं—जो

इ

इक्—बरछी, भाला
इंकाउ—फिर
इङ्अक्—खकार
इङ्सान्—भूकम्प
इंचाउ—मामा (मां का छोटा भाई)
इंचौं—नहीं
इम्खिम्—तुलसी
इंसाउ—मौसी

उ

उ—रहना, निवास करना

उम्—गोद

ए/ऐ

उअन्/लुक्अन्/एनेङ्—शिशु, बच्चा

एउलेउ—चातक

एक—जूआ

एङ्—घड़ा

एन्—नस

एप्—डिबिया

ऐ/मो—गाना

ओ/औ

ओत्/होम्—ढका

ओन्—नरम

औ—वेदना

क

कः—भी

का—कौवा, नृत्य

काईफू—मुर्गा

काईमे—मुर्गी

काउ—मैं, उल्लू, जूड़ा

काउमाई—मुझे, मुझको

काङ्—हिरण, मध्य, चौड़ा, ठुड्डी, खाली, फाटक

काक्—ताला

काङ्फा—बादल

काङ्हाउ—आकाश

काङ्खिुन्—रात

काङ्वान्—दिन

काङ्लौं—सुबह

कातें—नीचे

कानक—बाहर

कान्लाङ्—बाद में

काने—ऊपर

काप्किलि—कांख

कालियामाचेत्—मध्य या वृद्धावस्था में उपसंपन्न भिक्षु•अपरिशुद्ध

कालिमान्—रात को जाकर प्रेमिका से मिलना, अभिसार

काम्—मुट्ठी

कालाङ्—पीछे

कालियाचेत्—बाल ब्रह्मचारी भिक्षु, परिशुद्ध

कालुङ्—करुड़

कावाउ/नुक्लुऊ—कोयल

किङ्—छोटी शाखाएं, लेटना, हरा

किन्माई—तकली

किन्—खाना, पीना

किङ्हम्—अनानस

किङ्थेक्—उपयुक्त

किचाउ—बड़ा भाई

किम्—सड़सी

कुईकाई—गोह

कुङ्—चरखा

कुङ्काउ—मकड़ा

कुन्थेन्—वन-मानुष

कुप्—बड़ा, टोपा, 'जापि'

कुङ्थाम्—गुफा

कुन्न्वय्—पहाड़ी लोग

कुन्युक्—शत्रु

कुन्मान्—ग्रामीण

केङ्—हरा
केने—क्या
केम्कोन्—चूतड़
केन्हु—कर्ण-फुल
केनों—भीतर
को—डरना
कोई—केला
कोन्—मनुष्य
कोङ्—चरखा
कोन्खाक्—कर्मी
कोन्ताम्/आईताम्—नाटा, बौना
कोन्कोनाई—भीरू
कोन्काम्चा—अभागा
कोन्हान्—वीर
कोन्हन्—अत्याचारी
कोन्काम्यो—भाग्यवान
कोन्ताङ्केचु—उपकारी
कोन्खान्—निकम्मा
कोङ्—धनुष
कोन्पेचि—कृपण
कोन्पोत्/तोपोई—नंगा
कोन्खात्—आलसी
कोन्चाङ्—शिक्षित
कोन्हांन्—साहसी
कोन्साथा—श्रद्धालू
कोन्काम्लङ्—अहंकारी
कोन्फाम्—ठग
कोन्मि/कोन्तान्/कोन्माक्—धनी
कोन्फान्/कोन्याक्—निर्धन
क्यक्सा—लोढ़ा
क्यक्पेन्—शिलापट
क्वङ्/पान्खाउ—थाली
क्वन्होचों—कलेजा
क्वङ्—नगाड़ा
क्वङ्खो—गला
क्वन्फा—पत्थर का पहाड़
क्वङ्लक्—गरदन
क्वङ्मु—स्तूप
क्वि—नमक
क्विवान्—शक्कर
क्यासाप्ते—गुरुवार
क्येङ्—चूल्हा
क्येन्—दाल
क्येम्—गाल

ख

खक्—कमरा
खङ्काउ—मेरा
खङ्मान्—उसका
खङ्पिन्—दूसरे का
खङ्हाउ—हमारा
खङ्हिन्—घरेलू
खङ्खाउ—उनका
खन्—आत्मा
खप्ता—आंख की पलक
खा—फुस, खोजना, नौकर, दास, शाखा
खाई—भैंसा, बेंचना, अंडा,
खाईनाउ—ज्वर
खाईना—झींगुर
खाईलिङ्—इतना
खाईहो—सिर का चक्कर आना
खाउ—सफेद, वे, सींग,
खाउका—मोरी
खाऊत्येक्—लावा (धान का)
खाउप्वङ्—लावा (चावल का)
खाउमिन्—हल्दी

खाउपेक्—धान
खाउफा—मक्का
खाउमाई—उन्हें
खाउमितोम्—चावल के चूर्ण से बनाई रोटी
खाउमेप्—चिउड़ा
खाउमि—रोटी
खाउमुन्—सतुवा
खाउसान्—चावल
खाउसुक—भारत
खाचों—अनुभव करना, सोचना
खात्काउ—जूड़ा में पहनने का आभूषण
खाम् —कुल्हाड़ी
खान्फा—वज्र
खान्लिङ् —उतना
खाप्ङ्—कांचुल
खाम्—नदी पार होना, स्वर्ण, भाषा, बोली
खाम्लिक्—जटिल
खाम्के/खाम्चाउमुन्—उपसम्पदा
खाम्ति—उपत्यका, घाटी
खाम्साङ्—प्रव्रज्या
खालों—कितना
खि—मल, पाखाना
खिङ्—अदरक
खिङ्फाङ्—तराजू
खिन्खोई—लड़की पाने के लिए ससुराल की सेवा करना
खिङ्हुक्—करघा
खुङ् —चालना
खुन्—उठना, चढ़ना
खुन्माई—रात को
खुप्—चिमटा
खुत्—गड्ढा खोदना
खुन्ताङ्—रास्ता
खुन्—रोम
खेप्त्वङ्—मुद्रा, रुपया
खेप्नेङ्—पैसा
खे—जाल
खेउ—नीला, हंसुआ, दांत
खेङ्—सख्त
खेत्—मेंढ़क
खेप्तिन्—जूता, चप्पल
खेम्—सूई
खो—कुदाल, हंसना, पुल
खोक्—ओखल
खोन्—पतलून
खोन्ता—भौंह
खोन्हुईता—आंख की बरौंनी
खोम्—कड़ुआ
खोमि—कलाई
ख्वङ्—डलिया
ख्वङ्तुङ्—पंसेरी
ख्वत्—फेंकना
ख्वन्—हिलना डोलना

ङ

ङक्—टेढ़ा, वक्र होना
ङा—तिल
ङाई—अब
ङाउ—छाया
ङाचाङ्—हाथी दांत
ङिक्—घड़ियाल
ङिन्—चांदी, रुपया
ङिन्ताला—एक रुपया
ङुलिम्—अजगर
ङु—सांप
ङङ्—कमर

ङोथेक्—बैल
ङोमे—गाय

च

चाङ्—हाथी, जनना
चाउचेले—पाठक
चाउपेताङ्—ज्योतिष
चाउफा—राजा
चाउमुन्—भिक्षु
चाउमान्—गांव मुख्य
चाउया—वैद्य
चाउसाङ्—श्रामणेर
चाउसेथे—सेठ
चाउसाला/चाउसिया—धर्म गुरु
चाउहोसेक्—नायक, सेनापति
चाङ्/त्वङ्—जानना
चाङ्में—हथिन
चेउ—शीघ्र
चाने—शनिवार
चिम्—नमकीन
चिक्न्वय—पहाड़ की चोटी
चुन्—सीसा
चुम्म्वङ्—चितकबरा
चेङ् खेङ्—'जबका'
चेप्—दर्द
चोङ्—गैंड़ा
चोम्—प्रसन्न
च्वङ्/क्यङ्—विहार
च्वङ्—छाता
च्वन्—नेवला
च्वन्लिङ्—थोड़ा-सा

त

ताई—मृत
ताईको—मित्र
ताईखाङ्—निकट
ताउ—कछुआ
ताक्—जंगल का जोंक
ताङ्—पीढ़ा, साथ, पकाना
ताङ् चोम्—खुश
ताङ् पेउ—सुखी
ताङ् फाई—गुदा
तान्ख्वन्—ध्वज
ताम्—नीचा
ताम्ङा—मछुआ
ताम्वत्—अन्धा
तालाङ्ना—सोमवार
तालाङ्नोई—रविवार
तिक्—कींचढ़
तिङ्—टीन, बाल्टी, वीणा, सितार
तिचेप्—घाव
तित्—खींचना
तिन्—फाड़ना, पैर
तिनन्—बिछौना, सोने का स्थान
तिम्—भरा
तिन्हाक्—लंगड़ा
तिपेङ्—समतल भूमि
तिलाङ्—आंगन
तिलिक्सान्/नुिव्मिव्—प्राणी, पशु
तिक्निन्—केंचूआ
तु—हम
तुङ् स्त्रम्—पिण्डाचार
तुत्—शिगा
तुन्—पेड़
तुन्अन्—पौधा
तुन्माई—तना
तुमाई—हमको
तेक—जब तक

तेक्—सन्दूक, बक्सा
तेक्नो—अंकूर
तेङ्—खिरा
तेन्—फटा
तेन्लिङ्—बर्रे
तेप्/माक्/फान्—काटना
तेम्तेम्—संपूर्ण
त्येम्—लिखना
तो—भ्रमर, शरीर, अंग, खेलना
तोक् —गिरना, अस्त
तोत्—पादना
तोसा/खाचा—क्रोध
तोलिक्—अक्षर
तोसितिन्—चौपाया
तोह्येलान्—हड्डा
त्वङ्— पेट
त्वङ् नेङ्—तांबा
त्वङ् केचु—कृतघ्न
त्वङ् खेङ्—कांसा
त्वङ् लिुङ्—एक सेर, पीतल
त्वन्—नाड़ी, धमनी
थम्—सुनना
था—रुकना
थाई—हल जोतना, हल
थाउचेक्—लता
थात्—धातु
थान्फाई—अंगार
थाम्—पूछना
थाम्यङ्—खंजर
थुङ्—जेब, थैला, बैग
थुलि—अठन्नी
थेन्—वन
थो—दाल
थोई—उखाड़ना
थोईचौं—सांस
थोङ् तिन्—मोजा
थोनिन्—उड़द

न

ना:—गाढ़ा
ना—चेहरा, खेत
नाई—ओस, पाना
नाईचे—नानी
नाईङिन्—सुनना
नाउ/कात्—ठंडा
नाक्—भारी, काल
नाकान्—सदृश
नाखात्—नक्षत्र
नाङ्—त्वचा, बैठना
नाङ् आन्—जैसा
नाङ् काङ्—मृगचर्म
नाङ्ता—गीध
नाङ्नान्—तैसा
नाङ्फा—रानी
नाङ्सि—बाघ चर्म
नान्—सीधा होना,
नाप्—तलवार
नाप्सिङ्—अंधेरा, चांदनी
नाफाक्—कपाल, निदार
नाम्—कांटा, पानी, अधिक, काला
नाम्आन्किन्—सरसों का तेल
नाम्अय्—गुड़
नाम्खे—नदी
नाम्चेसोम्—दही
नाम्चे—दूध
नाम्ताउ—सूराही, लोटा
नाम्ता—आंसू

नाम्तालाउ—ब्रह्मपुत्र नदी
नामान्—तेल
नाम्नो—बांस के अंकुर से प्रस्तुत खट्टा रस
नाम्न्वङ्—पीव
नाम्फिङ्—मधु
नाम्या—रंग
नाम्लाईयत्—लार
नाम्लाई—थूक
नाम्लुम्—जलवायु
नाम्लोम्—दूध
नाम्ल्वङ्—बाढ़
नाम्हो—डुबाना
नालि—घड़ी
नाव्—सड़ना, तारे
नाव्फाई—धूमकेतु
निउ—अच्छा
निङ्—चाय
निन्—मिट्टी
निन्होक्—वैशाख
निन्चेत्—जेठ
निन्पेत्—आषाढ़
निन्काउ—श्रावण
निन्सिप्—भाद्र
निन्सिप्एत्—आश्विन
निन्सिप्स्वङ्—कार्तिक
निन्चिङ्—अगहन
निन्काम्—पौष
निन्साम्—माघ
निन्सि—फागुन
निन्हा—चैत्र
निप्—जीवित होना, कच्चा
नि— मांस
नु—चूहा
नुक्—हड्डी, चिड़िया
नुक्तु—फख्ता
नुक्युङ्—मोर
नुक्पेत्—बतख
नुक्खान्—हिसाब
नुक्याङ्—बगुला
नुक्सिखाङ्—पसली
नुक्च्वक्—गौरैया
नुक्क्येउ—किलहटा
नुक्काके—कबूतर
नुक्तेत्—तोता
नुङ्—पहनना
नुचिङ् हेन्—छिपकली
नुन्लिउ—रुई
नुम्—स्तन
नुहक्—गिलहरी
नेङ्—लाल
नेत्—धूप
नेन्—चांद
नेया—औषध निदान
नौं—मन, दिल, बांस के अंकुर की सब्जी
नोईनाई—परिश्रमी
नोत्—मूंछ, दाढ़ी
नोहेउ—बांस से बनाई हुई खटाई
न्वङ्—सरोवर
न्वङ्—तालाब
न्वङ् पौं—छोटे भाई की पत्नी
न्वङ् पौं—देवरानी
न्वङ् खोई—बहनोई
न्वङ् साउ—छोटी बहन
न्वङ् चाई—छोटा भाई
न्वङ् माउ—देवर
न्वन्—सोना

न्वय—पहाड़
न्वय्तेमिङ्—हिमालय

प

पचाउ—अपना
पलोमो—प्याज
पलोचिङ्—लह्सुन
पा—मछली, बच्चों की रखवाली करना
पाएन्—सर्प के आकार की मछली
पाखा—दाहिना
पाङ्—दावत,
पाङ् ताई—खरगोश
पाचाङ्—शिशुमार
पाचाय—पुरुष
पाचिहुन्—पदिना
पात्—झाड़ना
पातेसा—कल्पतरु
पान्खा—जांघ
पापुलुम्—दलदल
पामान्—उधर
पाभाई—इधर
पालाक्—चोर
पालौ—किधर
पासाई—बायां
पि—बांसुरी, मोटा, वर्ष
पिक्—पर
पिकि—धनिया
पिङ्—जोंक
पिङ् लेङ्—चमगादड़
पिङ् सोप्—ओष्ठ
पिचाउ—जीजा
पिचे—बड़ी बहन
पिन्मा—पागल
पियिङ्/याचाउहिुन्—पत्नी
पियिङ्—स्त्री
पिलिुङ्—साल
पिसेङ्—पटसन
पिुक्—बलकल
पु—केंकड़ा
पुक्थु—बुधवार
पुखोई—मौसा, फूफा
पुङ् लिुत्/अक्लिुत्/साईहो—ऋतुस्राव
पुचाउ—दादा
पुतु—खुला
पुनाईचे—नाना
पुन्वय्—बिच्छु
पुलि—नाभि
पुसि—विहार में रहने वाला सेवक
पे—जीतना, 'गगना'
पेत्अत्—सारस
पेत्वान्—सप्ताह
पेन्—तखत
पेन्फि—फुंसी
पेया—बकरी
पेयाउ—जय
पो—पिता
पोक्—दीमक
पोचाउ—ससुर
पोन्वङ्—समधी
पोमाई—विधुर
पोमाउ—दूल्हा
पोसाउ—दुल्हन
प्वङ्—खाले
प्वत्—छोटा (टुकड़ा),
प्वय्—हार, खोलना

फ

फङ् नाम्—ज्वार
फङ् निन्—धूल
फा—गड़ासा, कत्ता, दाउ, वस्त्र, चीरना टट्टर, दीवार
फाई—आग, तेजधार,
फाईका—बाज
फाक्—सब्जी
फाकहाक्—कन्दमूल
फाकाङ्—पर्दा
पाक्वप्—तोशक, गद्दी
फाखुन्—कम्बल
फाखाम्—शाम
फाखिमुङ्/फालाम्सु—एंडी चादर
फाङ्—कबर देना
फाङ्नाम्—नदीतट
फाचेत्—अंगोछा, रूमाल
फात्—कसैला, पढ़ना
फाताङ् खिुन्—रात भर
फातिन्—तलवा
फात्वक्—रजाई
फानय्—लुंगी
फानाङ्—बादल की गड़गड़ाहट
फानाई—गुगा
फामाई—चादर
फामि—हथेली
फामेप्—बिजली
फाला—बुद्ध
फाहो—पगड़ी
फिन्—चक्की
फिङ्—मधुमक्खी
फि—"बिन्था", हैजा, मैलेरिया
फिुक्—अरुई
फिया—घास
फुक्—बांधना, चटाई
फुङ्कुई—कपास
फुन्—लकड़ी
फुन्तोक्—वर्षा
फुन्फा—चीरी हुई लकड़ी
फेः—टूटा
फेत्—चरपरा, झूठ बोलना
फेन्—"नेउथुनी"
फेन्लाङ्निन्—पृथ्वी
फेने—कौन
फो/चउहिुन्—पति
फोम्—बोल, केश
फोम्सुन्—वेणी

म

मखाईखोम्—करेला
मङा—कल (बीता हुआ)
मङ्याङ्—श्रामणेर बनकर चीवर छोड़ा हुआ उपासक
मन्हो—तकिया
मनाई—आज
मपाक्मुन्—भुवा
मपाक्खाम्—कोंहड़ा
ममोङ्—आम
मसान्—एक प्रकार का खट्टा फल, असमिया में इसे 'औटेंगा' कहा जाता है
मसेन्—कुरूप
महयकाला—भिण्डी
महोक्—कल (आने वाला)
मा—आना, घोड़ा, कुत्ता,
माई—सूत, हेंगा, यहां, कहां, जलना लकड़ी,

माईओ—नरकट
माईफाई—पतवार
माईयि—'इकरा'
माईसाङ्—बांस
माउ—हल्का
माक्—फल, चोट
माक्ओचा—नाशपती
माक्चा—गोली
माक्मु—सुपारी
माक्नाङ्—'बरठेकेरा'
माक्साङ्—रीठा
माक्सिपे—जामुन
माक्खाम्—आंवला
माक्मान्—'आरुबखड़ा'
माक्मिलिउ—नीबू
माक्मिङ्—नारंगी
माक्चाम्पुसिपे—सफेद जामुन
माक्ना—हर्रा
माक्क्याङ्—इमली
माक्युन्—जंगली नीबू
माक्कालाक्—बेल
माकक्वक्—अमरा
माक्खो—बेर
माक्उन्—नारियल
माक्हाउ—'ठेकेरा'
माक्साङ्फो—पपीता
माङ्—पतला
माङ्/तेन्/ताप्—मारना/पीटना
माचौं-कः—अथवा
माताई—जीवित
मान्—कांच, गांव, वह, दर्पण, वहां
मान्ताप्—मंडप
मान्साङ्फो—शकरकन्द
मान्काला—आलू
मान्माई—उसे
मान्ताका—अमरूद
मानिन्—लोमड़ी
मामु—मुर्गी रोग
मालौं—कब
माहाउ—कुत्ते का भौंकना
मि—भालू
मित्अन्—चाकू
मिन्—चिलर, उड़ना
मिनि—बुरा
मिफित्—मिर्च
मिहिउ—सन्तरे
मिहित्—ओले
मु—हाथ
मुक्—मूर्ख
मुखिुव्—बैंगन
मुङ्—देश
मुङ्काङ्—विश्वब्रह्माण्ड
मुताई—लकवा
मुहि—मौसम
मी—बैंगनी
मु—सुअर
मुक्सा—पाण्डुरोग
मुक्सि—शिकारी
मुङ्खि—गोबरेला
मुङ्खोन्—पिलु
मुङ्साम्सु—रेशम का कीड़ा
मुत्—चींटी, बेंत के अंकुर
मे—माता
मेचाउ—सास
मेङ्—कीड़ा
मेङ्मि—तितली
मेङ्चालाङ्—कनखजूरा
मेङ्खिङ्—जुगनू

मेङ्साप्—तिलचट्टा
मुङ्मुन्—मक्खी
म्येङ्—बांटना
मेत्—वंसी
मेन्—साही, चालाक
मेना—मामी
मेनाङ्—चाची
मेन्वङ्—समधिन
मेप्—चिपटा
मेपा—बड़ी मामी
मेमाई—विधवा
मेलाङ्—कटहल
मेसाउ—सौतेली मां
मोक्—सिरस्त्राण, टोपी
मोका—चन्द्रताप
मोकाई—छोटा कमल
मोकाक्/फेवान्—बर्तन
मोखाङ्—कढ़ाई
मोखाम्—विरह गीत गाना
मोन्—मुर्गा, ऊदबिलाव
मोनिन्—हण्डी
मोसिपिक्—भिक्षु का पिण्डपात्र
मोहोङ्—पुरोहित
मौं—तू, तुम, पत्ता
मौंचाउ—आप
म्वक्—बांस का चोंगा
म्वक्फुन्—बादल घटा
म्वक्मु—कोहरा
म्वक्मोमा—धतूरा
म्वक्काम्को—'नाहर फूल'
म्वक्मा—कमल
म्वक्लिम्—तरकस
म्वक्या—फूल
म्वङ्—छेद करना
म्यङ्/क्वङ्—झुकना
म्वत्वय्होप्—छुईमुई
म्वय्—गुप्तांग के केश

य

यक्—खोंचना
यन्—मांगना
यम्—दुबला
या—दवा, वृद्धा
याई—पिघलना
याउ—लम्बाई,
याचाउ—दादी
याप्—कठिन
याम्—भींगा
याहु—मध्याह्न समय
याहुङ्—चील
युक्—दृष्ट
युङ्—मच्छर
ये—धानागार, डकारना, पछताना
येउ—पेशाब
येपात्—झाड़ू
यौं—फेफड़ा, बड़ा
यौंकाउ—मकड़े का जाल

ल

ला—गधा
लाई—किनारी
लाईपि—कारण
लाउ—चावल से बनाया हुआ मद्य
लाक्माम्—सिपाही
लाङ्—पीठ
लाङ्खा—छत

लाङ्वात्—स्त्री के निम्नांग में लपेटने का चादर
लान्/नाउ—सड़ा
लान्चाई—भतीजा, भांजा
लान्साउ—भतीजी, भांजी
लाप्च्वप्—अंगूठी
लाव्—लौकी
लासि—देर से
लाय्—दोष
लिईङ्—संडास
लिङ्—पीला, बन्दर
लिङ्खा—चरवाहा
लिक्—पोथी
लुिक्—गोमक्खी
लुित्—रक्त, खून
लिन्—जीभ
लुिन्—भोंतरा
लिम्—तीर
लिन्का—गुंगा
लुिम्—ज्यादा
लुउ—भाभी
लुक्—से, प्रति, को, सन्तान, जगना
लुक्चाई—पुत्र
लुक्खोई—दामाद
लुक्पा—पुत्रवधु
लुक्माई—कहां तक, यहां तक
लुक्लिङ्—पोष्य पुत्र
लुक्साउ—पुत्री
लुक्सेक—सेना
लुङ्—सूप
लुङ्चाउ—मामा (मां का बड़ा भाई)
लुङ्ता—साला
लुङ्त—साली
लुथाक्—भिक्षु से गृही बना हुआ उपासक
लुप्—पोंछना
लुम्—हवा, मूलना
लुम्पान्—चक्रवात
लुम्लुङ्—तूफान
लेउमि—अंगुली
लेउलुङ्—अंगूठा
लेक्—लोहा
लेक्हुत्—चुम्बक
लेङ्—रोशनी, गाड़ी, पहिया
लेङ्फाई—रेलगाड़ी
लेङ्मेन्—हवाई जहाज
लेङ्लुम्—मोटर
लेङ्लेउ—साइकिल
ल्येङ्—प्रकाश
लेत्मि—नाखून
लेन्—खेलकूद, दौड़ना
लेत्/नेत्—गरम
लेम्—देखना, अपेक्षा
ल्वङ्ना—कृषिकर्म
ल्वय्—ल्वय्—धीरे-धीरे

व

वा—कहना, वास्सावास
वाई—रखना, बेंत
वाक्/खान्—खरोच
वान्—कटोरा, मीठा, वार, सूर्य
वान्चाई—अपराह्न
वाग्फाई—बत्ती
वान्माई—दिनको
वाम् सेउ—पकड़ना
वि—पंखा, कंघा
वेन्—कूदना, डंठल, चूड़ी
वेन्पेक्—'गामखरू'

धेन्मोन्—गोल
धेन्प्वय्—आभूषण

स

सक्या—शुक्रवार
समम्—तालु
साई—रस्सी, ढकेलना, बालू
साईताप्प्वत्—आंत
साईसिन्—स्त्री के कमर बांधने की रस्सी
साउ—घर का खंभा, खड़े होना,
साक्—मुसल
साकाक्—टिड्डी
साङ्आन—यदि
आङ्आन्क:—यद्यपि
साङ्कापि—कप्पकारक
सङ्कान्कि—संघाटी
साङ्कान्—उत्तरासंग
साङ्क्रो—पहले
साङ्नाईकिया—ऐसा, इसलिए
सान्—कांपना
साना—माफ करना
सानात्—बन्दूक
साम्पेङ्—अन्तरवास
साला—चवनी
सिकामित्—कमीज
सिङ्—सुर
सिचेङ्—चौकोण
सित्—चतुर
सितेन्—शलभ
सिताङ्—चौराह
सिन्—मेखेला, साड़ी
सिपियिङ्—चोली
सिम्फाङ्—खन्ती
सिमेप्—कनपटी
सिव्—बाघ
सिुहाम्—गठिया
सुक्—पका
सुङ्—ऊंचा
सुत्—मच्छरदानी
सुत्वङ्—प्रार्थना करना
सुन्—बाग
सुप्—झोपड़ी,मचान
सुप्पुत्—दरवाजा
सुप्हाई—खेत का मचान
सुमुक्ताला—सागर
सेउ—पकड़ना
सेङ्—आवाज, शब्द
सेङ्ता—आंख की पुतली
स्येङ्—मणि,हीरा, मोती
सेन्/इउ—चिल्लाना
सेन्—सुन्दर
सो—चाबी
सोन्तिन्—एड़ी
सोप् मुंह
सोप्नुक्—चोंच
सोम्—खट्टा
सौं—डालना
स्वक्—कुहनी
स्वन्—सिखना
स्वम्—रोपना

ह

हङ्—पुकारना
हम्—कस्तूरी मृग
हय्—लटकाना, घोंघा

हाई—रोना
हाईयाउ—पराजय
हाउ—जूं, पसीना
हाउकाक्—दाद
हाक्—जड़, उलटी
हाङ्—चित्र, गन्दा, घृणा करना, पूंछ
हाङ्नुक्—घोसला
हाङ्फ़ा—बुद्ध का चित्र
हान्—सिन्दूर
हाप्—बन्द
हाम्—अंडकोश
हि—योनि
हित्—खुजली
हि—नाव
हित्—खटमल
हिन्—पत्थर
हिन/इङ्या/इङ्थङ्—घर
हिफाई—पानी जहाज
हु—कान
हुईता—आंख
हुङ्किन्नाम्—इन्द्रधनुष
हुङ्नुक्—पिंजड़ा
हुनाङ्—नाक
हुनोक्—बहरा
हेउ—फन्दा
हुन—नाक
हेक्—आलमुनियम्
हेक्खेव्—मसूड़ा
हेङ्—सूखा, सूखना
हेत्—बनाना
हेत्कियाङ्—क्यों
हेत्पोक्—कुकुरमुत्ता
हेन्—बिज्जू
हो—सिर
होई—नहर
होईहङ्—स्रोत
होक्कालाई—सीढ़ी
होक्लक्—खोपड़ी
होकाप्—सिर दर्द
होखाउ—घुटना
होखेन्—कन्धा
होचौं—छाती
होतिफाई—अग्नि कुण्ड
होतुम्—कलि
होपिक्—डैंना
हौ—देना

संकेत सारिणी

अनु०	—अनुवाद
अ० पु०	—अन्य पुरुष
ई० स०	—ईसवी सन्
उपा०	—उपासक/उपासिका
उ० पु०	—उत्तम पुरुष
कि० मी०	—किलो मीटर
गृ० सं०	—गृह-संख्या
चौ०	—चौड़ाई
ज० सं०	—जनसंख्या
तति०	—ततियम्पि (तीसरी बार)
दुति०	—दुतियम्पि (दूसरी बार)
पा०	—पालि
पृ०	—पृष्ठ
प्र० कार	—प्रतिलिपिकार
प्र० का०	—प्रतिलिपि काल
प्र० काल :	—प्रतिलिपि काल
पृ० सं०	—पृष्ठ संख्या
प्र० प्रा०	—प्रव्रज्या प्रार्थी
म० पु०	—मध्यम पुरुष
लं०	—लम्बाई
सा० सं०	—'साकालेत संवत' (खामतियों में प्रचलित संवत्)
सं०	—संस्कृत
सें० मी०	—सेंटी-मीटर ।

पारिभाषिक शब्दावली की सूची

अतीत	Past
अध्ययन	Study
अनुपयुक्त	Unsuitable
अभिव्यक्त	Expression
अभिव्यंजना	Expression
अवचेतन	Subconious
अनुयायी	Follower
अनेकता	Diversity
अपरिहार्य	Unavoidable
अभिलेख	Record
अर्थव्यवस्था	Economy
आदिवासी कल्याण	Tribal welfare
आधार	Bases
उप-जाति	Sub-caste
ऐतिहासिक	Historical
कृषि	Agriculture
कलात्मक	Artistic
किंवदन्ती	Hearsay
कानून-व्यवस्था	Law and order
क्षेत्रीय	Regional
खाद्य सामग्री	Food Stuff
गणराज्य	Republic
गतिविधि	Activity
ग्रामोद्योग	Village Industry
जलवायु	Climate
जनसंख्या	Population
तापमान	Temperature

तथा कथित	So-called
नैतिक	Moral
धार्मिक	Religious
नागरिक	Citizen
प्रदेश	Region
परंपरा	Tradition
प्रजातंत्र	Democracy
परिस्थितियां	Circumstances
प्रतीक	Symbol
प्रशासन	Administration
प्राचीन	Ancient
पशुपालन	Animal husbandry
पुरातत्व	Archaeology
प्रतिष्ठान	Establishment
प्राकृतिक	Natural
बहु-विवाद	Polygamy
बोली	Dialect
भाषा	Language
भूकम्प	Earthquake
भौगोलिक	Geographical
मान्यता	Recognition
मंत्रिमंडल	Cabinet
यातायात	Traffic
युद्ध	Battle
राजवंश	Dynasty
राजनीति	Politics
राजनीतिक	Political
राजवंश	Dynasty
लिपि	Script
लोक नृत्य	Folk Dance
ललित कला	Fin Art
लोक संस्कृति	Folk Culture
लोकगीत	Folk Song
व्यवस्था	Arrangement

वातावरण	Atmosphere
वर्तमान	Present
वस्तुकला	Architccture
विकास	Development
विदेशी	Foreigner
शताब्दी	Century
साहित्य	Liberalism
सम्पन्न	Sovereigin
सौन्दर्य	Beauty
संरक्षक	Guardian
संघ	Union
स्वतंत्र	Independent
स्थानीय	Local
राज्य	State
स्नातक	Graduate
स्मारक	Memorial
सभ्य	Culture
संसद	Parliament
समिति	Committiee
शिलालेख	Inscription on stone slate
सामाजिक	Social